लेखक
मौलाना अब्दुल अली फ़ारूक़ी

सम्पादक
मुआविया अब्दुर्रहीम फ़ारूक़ी

प्रकाशक
अब्दुल वहीद फ़ारूक़ी

नाशिर
मकतबा अल-बद्र, काकोरी, लखनऊ
Mobile No. 09839181475

इस्लाम और शिया धर्म एक तुलनात्मक सम्परीक्षा

लेखक मौलाना अब्दुल अली फ़ारूक़ी

Cover Designed by : A.Q. Nadwi # 8853532162

इस्लाम—और —शिया धर्म

एक तुलनात्मक सम्परीक्षा

लेखक

मौलाना अब्दुल अली फ़ारूक़ी

सम्पादक

मुआविया अब्दुर्रहीम

प्रकाशक

अब्दुल वहीद फ़ारूक़ी

नाशिर

मकतबा अल—बद्र, काकोरी, लखनऊ

Mobile No. 09839181475

पहला एडीशन	:	215
नाम पुस्तक	:	**इस्लाम और शिया धर्म एक तुलनात्मक सम्परीक्षा**
नाम लेखक	:	**अब्दुल अली फ़ारूक़ी** *(फ़ज़िल—ए—देवबन्द, एम.ए.)*
नाम मुरत्तिब	:	**मुआविया अब्दुर्रहीम फ़ारूक़ी** Mobile No. 09305809492
नाम प्रकाशक	:	**अब्दुल वहीद फ़ारूक़ी** Mobile No. 08858360334
नाम कम्पोज़र	:	**अब्दुल कुद्दूस नदवी** Mobile No. 8853532162
सफ़हात	:	296
तबाअत	:	नोमानी प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ
क़ीमत	:	200.00

मिलने के पते

मकतबा अल—बद्र, काकोरी, लखनऊ

Mobile No. 09839181475

सहाबा एक्शन कमेटी, पाटा नाला, लखनऊ

Mobile No. 08858360334

फ़हरिस्त

इंतेसाब

उन खुश फहमों के नाम जो
खुद जानते नहीं और
जानने वालों की मानते नहीं?
इस दुआ के साथ
ख़ुदा तुझे किसी तूफ़ां से आशना करदे
कि तेरे बह्र की मौजों में इज़्तेराब नहीं

अब्दुल अली फ़ारूक़ी
दारूल उलूम फ़ारूक़िया
काकोरी, लखनऊ

सम्पादकीय कथन

बात सुन्ने में क्या क़बाहत है
हर सुख़न मुद्दआ नहीं होता

यूँ तो इस्लाम दुश्मनी का सिलसिला पहले ही दिन से जारी है और यह दुश्मनी और बैर मज़ाहिब की ओर से भी हुई और आंदोलन की शक्ल में भी, इजतेमाई (मिलकर) और इंफेरादी (अलग अलग) होकर भी, लेकिन तारीख का एक विद्यार्थी अगर सबसे बड़े और हमेशा के इस्लाम दुश्मन को चुन्ना चाहे तो यह कार्य कोई मुश्किल नहीं कि रब्बुल आलमीन ने खुला हुआ ऐलान किया है कि :

''आप मोमिनीन का सब्से बड़ा दुश्मन यहूदियों को पायेंगे''

अब इस सबसे बड़े और पुराने दुश्मने इस्लाम नें अलग अलग दौर (काल) में इस्लाम दुश्मनी की भिन्न भिन्न पॉलीसियां अपनाईं। शुरू इस्लाम में यहूदियों ने खुले तौर पर मोर्चा बन्दी की और मुसलमानों को इस्लाम से नफरत दिलाने और गैर मुस्लिम को इस्लाम से दूर करने के लिए झूठ और चालबाज़ी का सहारा लेकर खुली आक्रामकता से काम लिया लेकिन जब इस हथकण्डे से काम नहीं चला और इस्लाम का कारवां बढ़ता और चढ़ता रहा तो इस सबसे बड़े और पुराने लेकिन कमज़ोर और बुज़दिल दुश्मन ने जो पॉलीसी अपनाई वह आज तक चली आ रही है और वह ''दरपर्दा साज़िशों की पॉलीसी है'', अगरचे आज यहूदी इस्लाम के खुले दुश्मन हैं। लेकिन इस मज़हबे नाहक (गैर सही मज़हब) ने अपनी दुश्मनी का ज़्यादा मदार दूसरी और आखरी पॉलीसी पर रखा और इसकी अकसर

कामयाबियां इसी की मरहूने मिन्नत हैं।

चुनांचे इन दरपर्दा साज़िशों में से एक बड़ी साज़िश ''शीइयत'' को इस्लाम के भेस में इस्लाम के खैमा में दाखिल करना है कि इस दोस्ती नुमा दुश्मनी से इस्लाम और मुसलमानों को जो नुक़्साल पहुंचाया जा सकता है वह खुली दुश्मनी से नहीं। और आज वह व्यक्ति जो गैरत और हमीयते दीन के साथ साथ दीनी समझ, सलामते फिक्र और तारीख की सिफात से जानकारी रखता है उसके सामने यह बात बिलकुल खुली है कि यहूदियों ने अपना मक़सद पा लिया है। चुनांचे इस्लाम को जितना नुक्सान इस गिरोहे शिया से पहुंचा है इतना यहूद और नसारा दोनों मिलकर न पहुंचा सके, और सच्चाई भी यही है कि यहूदियों और ईसाइयों ने अगरचे मुसलमानों की हुकूमत व सत्ता, माल व दौलत, जाह व इज़्ज़त पर कब्ज़ा किया है और यह तमाम चीज़ें दुनयावी हैं लेकिन इस गिरोह ने इस्लाम और मोहब्बते अलहे बैत के भेस में भोले भाले मुसलमानों के दीन व ईमान पर डाका डाला और यह वह चीज़ है कि इसका सम्बंध दुनिया से भी है और आखिरत से भी, सितम बालाए सितम यह है कि इस गिरोह ने मुसलमानों की एक तादाद को इस तरह ठगा कि उनको ठगे जाने का एहसास तक न रहा।

वाय ना कामी मताअे कारवां जाता रहा।
कारवां के दिल से एहसासे ज़ियां जाता रहा।।

इतने ही पर बस नहीं बल्कि इससे भी ज़्यादा अफ़सोस का मकाम है कि बहुत से उलेमा हैं, बुद्धिजीवी हैं, चिन्तक हैं, समाज सुधारक हैं। गो कि अपने अपने मैदान के माहिर है, मगर मज़हबे शिया की धोखा धड़ी की जानकारी न होने की बिना पर जानकारों की ओर से होने वाली काशिशों में बाधा डालते हैं और उनकी हक़ बयानी को तंग नज़री का नाम देते

हैं।

ऐसे लोगों के लिए इमाम मालिक रह० की यह बात मार्ग दर्शक है :

''इंसान का अपनी ना वाक़िफ़ियत का ऐतराफ बेहतर है, इससे कि वह अपने को वाक़िफ़ (जानकार) कहे हालांकि वह वाक़िफ़ नहीं ''

तिरे जह्ले इल्म से हमनशीं, मेरा इल्मे जह्ल भला रहा।
यह पता तो है कि पता नहीं, यह खबर तो है कि खबर नहीं।।

खुदा गवाह है कि ऐसे कितने ही नावाक़िफ़ लेकिन अपने आपको जानकार बताने वाले हैं जो आरम्भ में इस मज़हबे शिया के फितने को गरोही मत भेद की हद तक गिन्नते और हक़ीक़त बयान करने वालों को कट्टर वादी मानते थे लेकिन जब उनकी आँखों के सामने से पर्दा–ए–गफलत हटा तो अपनी पिछली लन तरानियों (इधर उधर की बातों) पर शर्मिन्दा हुए।

पेशे नज़र किताब ''इस्लाम और शीईयत – एक तुलनात्मक निरीक्षण'' इसी इस्लाही सिलसिले की एक कड़ी है कि जिसके सिलसिले में अपनी अपनी ज़बान व अंदाज़ में इमाम मालिक रह०, इमाम मुहम्मद रह०, इब्ने तैमिया रह०, और दूसरे पूर्वज पेश कदमी कर चुके हैं। इस किताब का मक़सद ना वाक़िफ़ों को वाक़िफ़ कराना, वाक़िफ़कारों को झिंझोड़ना और सुलहे कुल की पॉलीसी अपनाने वालों को मज़हबे शिया का हक़ीक़ी चेहरा दिखा कर उनकी हमीयते दीनी गैरते ईमानी को बेदार करना है कि

शायद कि उतर जाये तिरे दिल में मेरी बात

मालूम हो कि यह किबात मेरे पिता हज़रत मौलाना अब्दुल अली फ़ारूक़ी साहब के उन विषयों का संग्रह है जो आपने मुखतलिफ औक़ात में मज़हबे शिया से मुतअल्लिक

मुखतलिफ अहम विषयों पर अपनी मासिक पत्रिका ''अल–बद्र'' कें लिए लिखे।

फिर इस पर भी ध्यान रहे कि इन मज़ामीन में से एक भी ऐसा नहीं है जो जल्दी में लिख दिया गया हो बल्कि हर मज़मून बहसो तहक़ीक के लम्बे और सब्र आज़मा मराहिल से गुज़रने के बाद लिखा गया है और खास तौर से इस बात का मुसन्निफ (लेखक) ने लेहाज़ रखा है कि शीईयत से सम्बंधित हर मसला उनकी मुसतनद किताबों के हवाले से दर्ज किया जाये और यह बात किसी पढ़े लिखे से छुपी नहीं कि शियई पुस्तकों की दस्तयाबी किस कद्र मुश्किल है?

इस किताब में वह तमाम बहसें (अक़ाएद से मुतअल्लिक़ हों या इबादात व दीगर से) आ गई हैं। जो अहले सुन्नत वल जमाअत और शिया दोनों के नज़दीक अपने अपने नुक़्त–ए–नज़र से अति महत्व पूण हैं लेकिन दोनों के नज़रयात उनके ताल्लुक से बिल्कुल मुखतलिफ हैं और इस इखतेलाफ में सुलह की कोई गुंजाइश नहीं निकलती। इस तरह यह पुस्तक शिया धर्म पर एक मुख्तसर लेकिन जामे तरीन मुरक्का बन जाती है, और इसके पढ़ने के बाद शिईयत की धोखा धड़ी को समझना ही नहीं बल्कि ना समझों को समझाना और इस गंदगी में पड़े हुए भोले भाले मुसलमानों को निकालना आसान हो जाता है।

आरिखर में अल्लाह से दुआ गो हूं कि ऐ अल्लाह! लेखक की कोशियों को कुबूल फरमा और सम्पादक की इस मेहनत को कुबूलियत से सरफराज़ कर। (आमीन)

खाक पाये उलमा–ए–हक

मुआविया अब्दुर रहीम फ़ारूक़ी

२६ ज़िक़ादा १४३४ हि० मुताबिक ६ अक्टूबर २०१३ ई०

मुक़द्मा

बिस्मिल्ला हिर्रहमा निर्रहीम

ज्ञान के कुछ दावेदार और सियासी सुलहे कुल के कुछ रोगी ...... शिया और सुन्नी दोनों को ''इस्लाम के दरख़्त की दो शाखें'' क़रार देते हुए दोनों के दरमयान ''मज़हबी इत्तेहाद'' की बात बहुत ज़ोर व शोर के साथ पेश करते हैं? ऐसे व्यक्ति हुकमे इलाही को कसौटी क़रार देकर कुछ ऐसी मासूमियत और ''दर्दमंदी'' के साथ इस ''मस्लकी इख़्तिलाफ़ात'' को भुला करके ''इत्तेहाद बैनल मुस्लिमीन'' की बात करते हैं जैसे कि ''रफ़्अे निज़ा'' और आपसी लड़ाई झगड़े से बचने के लिए यह भी अनिवार्य हो कि फ़रीक़ैन का ईमान वाला और मुसलमान होना मान लिया जाये? और एक मुसलमान का किसी ग़ैर मुस्लिम के साथ दंगा व फ़साद और लड़ाई झगड़े के बगैर निबाह मुमकिन ही न हो? ऐसे व्यक्ति अपने साफ़ साफ़ शब्दों में ''मुनाफ़िक़ाना दावते इत्तेहाद'' देते हुए इत्तेहाद बैनल मुस्लिमीन के लिए इसी हुकमे इलाही में बयान किया हुआ ''एतिसाम बि हब्लिल्लाह'' की बुनियाद को बिल्कुल भुला देते हैं ..... और वह या तो इस हक़ीक़त को जानते ही नहीं हैं, या फिर जानते हुए भी इससे ''मुर्जिमाना तसाहुल'' बरतते हैं कि शिया व सुन्नी के दरमियान कुरआन व हदीस के लेकर अक़ाएद व कलाम, फ़िक़ा व उसूल, और तारीख़ व रिजाल तक कहीं भी इत्तेहाद नहीं है। फिर क्योंकर इसे ''मस्लकी इख़्तेलाफ'' क़रार देकर दोनों पर इस्लाम का टाइटिल लगाया जा सकता है?

इस पुस्तक ''इस्लाम और शिया धर्म ..... एक तुलनात्मक

सम्परीक्षा'' में शामिल मज़ामीन का ग़ैर जानिब दाराना मुताला करने और इसमें मुखतलिफ़ उनवानात के साथ शामिल मज़ामीन पर यकसूई और बगैर भेद भाव के साथ गौर व फ़िक्र करने से इंशाअल्लाह शिया धर्म की पूरी हक़ीक़त का भी इल्म हो जायेगा?

लेखक को अपने रब्बे करीम की ओर से अता होने वाले बेशुमार इंआमात में से एक इंआम मासिक पत्रिका अल–बद्र के विमोचन की सूरत में प्रकाशित हो रहा है। चूंकि इस पत्रिका का अहम उनवान ''इसलाहे अक़ाएद'' रहा है, इस लिए ३६ वर्ष से अधिक समय में शीईयत, क़ादयानियत और अन्य गुमराह फिरक़ों के खण्डन व पीछा करने में हक़ तआला ने बहुत से मज़ामीन लिखवाये और इन मज़ामीन के प्रकाशित होने से अहले हक़ को लाभ हासिल हुआ। अगर्चे इस दौरान रद्दे शीईयत पर मेरी पुस्तक ''तआरूफ मज़हबे शिया'' के नाम से प्रकाशित हुई जिसके अबतक अनेक एडीशन हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के उर्दू और री यूनियन से अंग्रेज़ी में प्रकाशित होकर मक़बूले आम हुए। फिर इसी सम्बंध में एक पुस्तक कम व बेश दस वर्ष पूर्व ''तारीख़ की मज़लूम शख्सियतें'' के नाम से भी प्रकाशित हुई और इसके भी अब तक कई एडीशन प्रकाशित हो चुके हैं। और अब मज़ीद इस मौजू पर लेखक का कोई मुस्तक़िल तसनीफ का इरादा नहीं था। मगर हक़ तआला जज़ाये खैर अता फरमाये मेरे छोटे पुत्र मौलवी हाफिज़ मुआविया अब्दुर्रहीम फ़ारूकी सल्लमहु को कि उन्होंने अल–बद्र में प्रकाशित मेरे मज़ामीन की ओर तवज्जो मबजूल कराते हुए अपनी इस ख्वाहिश को प्रकट किया कि इनमें बहुत से ऐसे क़ीमती मज़ामीन हैं जिनकी इफादियत व अहमियत किसी तरह कम नही हुई है बल्कि मौजूदा ''दौर पुर फितन'' में इनकी इशाअत की ज़रूरत पहले

से भी ज़्यादा है। और उन्होंने ही यह राय भी दी कि इन मज़ामीन का इंतेखाब करके इन्हें किताबी शकल में प्रकाशित कर देना मुनासिब है क्योंकि किताबों की उम्र पत्रिका से बहुत अधिक होती है, चुनांचे मज़ामीन के इंतेखाब व तरतीब का कार्य मैंने उन्हींके हवाले कर दिया। आं अज़ीज़ सल्लमहु दारूल उलूम नदवतुल उलेमा लखनऊ से सनदे फ़ज़ीलत प्राप्त करने के साथ साथ उलूमे जदीदा से भी मुनासिबत रखते हैं और ब फज़लिहि तआला तदरीसी व तालीमी सफर जारी है।

अज़ीज़े मौसूफ़ ने ''अल–बद्र'' की फायलों से जिन मज़ामीन का इंतेखाब करके मेरे सामने पेश किया उन्हें दोबारा शुरू से पढ़ कर मुझे खुद भी तसल्ली व तशफ़्फ़ी हुई कि इंशाअल्लाह इन मज़ामीन की किताबी शक्ल में इशाअत नफा बख्श भी सातिब होगी और शीईयत के सिलसिले में बहुत से ऐसे मखफी गोशों की नक़ाब कुशाई भी होगी जिन पर कम ही लोगों की निगाह जाती है। खुसूसन ईरान के इंक़लाबी रहनुमा आयतुल्लाह खुमैनी के अफकार व अक़ाएद के सम्बंध में कि जिन्हें एक आविवादित और सुलह पसन्द रहनुमा'' की सूरत में बड़ी चाबुक दस्ती के साथ पेश किया गया और ना वाक़िफ या ''मस्लिहत पसन्द वाक़िफ़ीन'' ने उन्हें इसी हैसियत से तस्लीम करके बतौर ''आइडियल'' कुबूल कर लिया?

इस पुस्तक में कुछ ''मुनाज़राती और जवाबुल जवाब किस्म के मज़ामीन'' भी जान बूझ कर सम्मिलित किये गये हैं, इसी तरह ''शीईयत के सम्बंध में कुछ ना आसूदा लोगों'' के दिलासा और तर्क को भी शामिल कर लिया गया है ..... इस तरह ''आम तसनीफी डगर'' से हट कर और नई तरतीब व इंतेखाब के साथ प्रकाशित होने वाली इस पुस्तक के सम्बंध में लेखक को यह कहने का हक़ दीजिए कि इंशाअल्लाह ज़हन व

दिमाग़ के दरीचे खोल कर मुताला करने वालों के लिए यह किताब पूरी तरह सन्तुष्ट करने वाली साबित होग और हक़ीक़त अफरोज़ भी।

आखिर में अपने रब्बे करीम से सुआ है कि वह इस काविश को कुबूल फरमाकर पुस्तक के लेखक के लिए इसे ज़खीरा–ए–आखिरत बनाये और उम्मते मुस्लिमा को हक़ व बातिल को परख कर क़बूल या रद्द करने की तौफ़ीक़ अता फरमाये। आमीन।

इन सबके बावजूद बहर हाल यह ऐतराफ ज़रूरी है कि

अल्लाह अगर तौफ़ीक़ न दे, इंसान के बस का काम नहीं
फ़ैज़ाने मुहब्ब आम सही, इरफाने मुहब्बत आम नहीं।।

फक़त

अब्दुल अली फ़ारूक़ी
इब्राहीम मंज़िल, पाटा नाला,
लखनऊ
२ ज़िलहिज्जा १४३४ हि०
मुताबिक़ ८ अक्टूबर २०१३ ई०

प्रकाशकीय कथन

''इस्लाम और शिया धर्म .... एक तुलनात्मक सम्परीक्षा'' नामक पुस्तक आपके हाथों में है जो हिन्दी भाषा में प्रकाशित होने वाली एक ऐसी पुस्तक है जिसे पूरी ईमानदारी के साथ शिया धर्म का सच्चा और वास्तविक आईना कहा जा सकता है। क्योंकि इसमें जहां एक ओर शिया धर्म के अक़ीदों, इबादतों, और मज़हबी रसमों के साथ साथ ''धार्मिक चालो'' का खुलासा बयान किया गया है। वहीं इसके लेखक ने कोई बात अपनी तरफ से नहीं लिखी है बल्कि हर लेख के साथ शिया धर्म की ऐसी पुस्तकों के हवाले उनकी अस्ल इबारतों और उनके हिन्दी अनुवाद के साथ इस प्रकार लिखे हैं कि कोई शिया भी इसका इंकार नहीं कर सकता है? लेखक ने अपनी ओर से केवल टिप्पणियां ही की हैं, और यह हर लेखक का अधिकार होता है?

यह पुस्तक अब से लग भग एक वर्ष पूर्व उर्दू भाषा में प्रकाशित हुई थी और इसे इस प्रकार हाथों हाथ लिया गया था कि केवल दो माह बाद से ही इसके दोबारा प्रकाशन की मांग होने लगी थी जो अब पूरी होने वाली है।

इसके हिन्दी अनुवाद की भी उसी समय से बराबर मांग जारी है। हमें खुशी है कि हम अपने मुसलमान भाइयों और अपने पाठकों की इस मांग को पूरा करते हुए उर्दू किताब ''इस्लाम और शीईयत .... एक तक़ाबुली जायज़ा'' का यह हिन्दी अनुवाद ''इस्लाम और शिया धर्म ...... एक तुलनात्मत सम्परीक्षा'' के नाम से पेश कर रहे हैं।

इस किताब के लेखक और मेरे बड़े भाई मौलाना अब्दुल

अली फ़ारूक़ी का नाम सुन्नी और शिया दोनों समुदायों के पाठकगण के लिए जाना पहचाना है। उनकी इस विषय (इस्लाम और शिया धर्म में अन्तर) पर कई एक पुस्तकों के अतिरिक्त, धर्म व समाज के विषयों पर एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित होकर बराबर पढ़ी जा रही हैं। इसके अतिरिक्त उनकी नेतृत्व और स्मपादिकता में उर्दू भाषा में १९७७ ई० से लगातार प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका ''अल–बद्र'' की भी अपनी एक पहचान है जिसके द्वारा धार्मिक और समाजिक इसलाह का बहुत बड़ा और क़ीमती कार्य अंजाम पा रहा है। इस किताब में शामिल ज़्यादा तर लेख वही हैं जो ''अल–बद्र'' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हो चुके हैं और पाठकगण के लगातार इसरार पर ''अल–बद्र'' के सम्पादक मौलाना अब्दुल अली फ़ारूक़ी के एक लायक़ और बुद्धजिवी पुत्र मुआविया अब्दुर्रहीम फ़ारूक़ी ने इन्हें जमा करके ''इस्लाम और शीईयत ...... एक तक़ाबुली जायज़ा'' के नाम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराया है।

खुद किताब के लेखक मौलाना अब्दुल अली फ़ारूक़ी का सम्बंध एक ऐसे परिवार से है और वह एक ऐसे ''शियों के घर के भेदी'' हज़रत मौलाना अब्दुल हलीम फ़ारूक़ी के सबसे बड़े पुत्र हैं जिन्हें ''महमूदाबाद के विजेता'', ''अमीरे कारवां'' और ''क़ायदे तहरीके मद्हे सहाबा'' के लक़बों के साथ याद किया जाता है। जो प्रसिद्ध मासिक पत्रिका ''अल–दाई'' के सम्पाकद, हक़ गो और शोला बयान वक्ता थे। और जिनके नेतृत्व में लखनऊ के सुन्नी मुसलमानों का पहला ''जुलूस मद्हे सहाबा'' १९३६ ई० में निकला था। यही नहीं बल्कि उत्तर प्रदेश के लखनऊ, महमूदाबाद, और हरदोई व बिजनौर से लेकर पंजाब व सिन्ध की मिट्टी आज भी उन्हें सलामी पेश कर रही है।

क्योंकि वहां के बासियों को उनकी अंशक मेहनतों से इस्लाम का सही कलिमा नसीब हुआ और वह शिईयत, क़ादयानियत एवं शिर्क व बिदअत के जरासीम से पाक होकर अपने को सुन्नी मुसलमान कहलाने के लायक़ बन सके।

मेरे कथन का सारांश यह है कि यह किताब ऐसे व्यक्तियों द्वारा लिखी, जमा की हुई और प्रकाशित की जा रही है जिन पर पूरी तरह भरोसा किया जा सकता है। और फिर किताब है भी इतनी प्रभावशाली और दिलचस्प कि एक मर्तबा शुरू कर देने के बाद इसे खत्म किये बिना आप चैन से न सो सकेंगे और सम्पूण लेखों को पढ़ कर आप शिया धर्म के इतने बड़े ज्ञानी बन जायेंगे कि आपको बहकाना और मातम व ताज़िया दारी की डगर पर चलाना सरल न होगा।

अब आप इस पुस्तक को पढ़ें और अपने ईमान व धर्म की सलामती का सामान करें।

आपका अपना

अब्दुल वहीद फ़ारूक़ी

अध्यक्ष

''सहाबा एक्शन कमेटी'', लखनऊ

ईमानियात व कुरआनियात

यानी

इस्लाम के बुनियादी अक़ीदों मसलन तौहीद व तक़दीस बारी तआला, इसमते अंबिया, ख़ात्म नबूवत —— और कुरआन मजीद की हिफ़ाज़त वगैरह के सिलसिले में मज़हबे शिया के जुदागाना अक़ीदों का बयान।

नाक़ाबिले तरदीद दलीलों के साथ

शिया सुन्नी इत्तेहाद कैसे?

इत्तेहाद बहुत अच्छी चीज़ है और कोई इंसान इस बात से इंकार नहीं कर सकता कि दुश्मनी जिस कद्र ज्यादा होती नुक़सान उतना ही बढ़ता ही जाता है, मगर यह ज़रूरी नहीं कि इत्तेहाद मज़हब ही की बुनियाद पर हो, हिन्दुस्तान एक ऐसा मुल्क है जिसमें दर्जनों धर्मों के मानने वाले लोग मौजूद हैं मगर उनमें आपसी इत्तेहाद है फिर महज़ मज़हब ही को इत्तेहाद की बुनियाद करार देना कहां की अक़लमन्दी है? कुछ ना समझ लोग कभी कभी यह सवाल करते हैं कि जब शिया व सुन्नी एक ही मज़हब के दो समुदाय हैं तो फिर उनमें मतभेद क्यों? और इन दोनों समूदाय को अलग अलग करके क्यों पेश किया जाता है? यह सिर्फ ज़बानी बात है वर्ना हक़ीक़त यह है कि बुनियादी तौर पर शिया व सुन्नी इस्लाम के दो फिरक़े हैं ही नहीं, क्योंकि इस्लाम के बुनियादी उसूल और शीईयत के बुनियादी उसूल आपस में क़तई एक दूसरे से भिन्न हैं फिर ज़बरदस्ती इस्लाम का रिश्ता शीईयत से क्यों जोड़ा जाता है। हम पढ़ने वाले को होशियार करने के लिए इस्लाम और शीईयत के मौलिक आधार पेश करके फैसला पढ़ने वाले ही पर छोड़ते हैं कि क्या शीईयत और इस्लाम में कोई ताल मेल है?

(१) **खुदा–ए–जुल जलाल** : इस्लाम का बुनियादी अक़ीदा यह है कि ख़ुदा सर्वपरि है, उसकी ज़ात हर ऐब से पाक है, उसकी निगाह हर चीज़ पर है, उसकी मर्ज़ी के बग़ैर

एक पत्ता भी हिल नहीं सकता, उसकी हकूमत हर तरफ़ है उसके कब्ज़ा–ए–कुदरत से कोई चीज़ बाहर नहीं है, वह जानने वाला है, वह खबर रखने वाला है, वह सुनने वाला है, वह देखने वाला है ——— इसके मुकाबले में शियों का इस सिलसिले में अक़ीदा यह है कि ख़ुदा को "**बदा**" हो जाता है, यानी नऊज़ु बिल्लाह ख़ुदा जाहिल है उसको तमाम बातों का इल्म नहीं होता, और उसको किसी बात का फैसला कर लेने और उसका एलान कर देने के बाद भी अपनी राय बदलना पड़ती है। चुनांचे शियों की बहुत ही अहम किताब "**उसूले काफ़ी**" स. २०४ पर हसन अस्करी की इमामत के संबन्ध में ख़ुदा के बदा का हाल बयान किया गया है कि पहले ख़ुदा ने हसन अस्करी के पिता इमाम तक़ी की ज़बानी जो इमाम मासूम थे उनके बाद अबू जाफ़र मुहम्मद की इमामत का एलान कराया, मगर ख़ुदा को यह ज्ञान न था कि उनकी मृत्यु अपने वालिद अबुल हसन तक़ी की ज़िन्दगी ही में हो जायेगी, चुनांचे यह वाक़िया पेश आया तो फिर ख़ुदा ने इमाम तक़ी के दूसरे बेटे अबू मुहम्मद हसन असकरी को इमाम बनाया। इस तरह ख़ुदा को बदा होना साबित हुआ। इस लिए कि इमाम तक़ी का पहले अपने बेटे मुहम्मद की इमामत का एलान करना इस बात का प्रमाण है कि यह ख़ुदाई हुक्म था क्यों कि शियई अक़ीदे के मुताबिक़ वह इमाम मासूम थे और इमामत का एलान ख़ुदा ही कराता है, और एक इमाम के बाद दूसरे इमाम का एलान ख़ुदा के हुक्म से होता है?

(२) **क़ुरान मजीद** : मुसलमानों का सर्वमम्मति से यह अक़ीदा है कि कुरान मजीद अल्लाह पाक की पाक और पवित्र किताब है, इसमें किसी किसम के शक व संकोच की गुंजाइश नहीं है न ही इसके किसी शब्द और किसी बिन्दु में किसी

क़िसम की फेरबदल हुई है और न हो सकती है, क्योंकि ख़ुदा का वादा है कि हमने ही कुरआन को उतारा है और हम इसकी सुरक्षा करेंगे। इसके मुक़ाबले में शियों का अक़ीदा है कि कुरान मजीद में कमी भी हुई है और ज़्यादती भी हुई है तबदीली भी हुई है और तरतीब में उलट फैर कर दी गई है, गोया नअूज़ुबिल्लाह कुरान बिल्कुल बे भरोसा है और इसमें हर क़िसम की तहरीफ़ (उलट पलट) कर दी गई है चुनांचे शियों की तहरीफ़े कुरान के विषय पर बहुत ही अच्छी किताब ''फस्लुल खिताब'' के स० ३० पर मौजूद है कि 'मोहद्दिस जज़ाइरी ने अंवार में कहा है कि हमारे तमाम असहाब उन रिवायात के सही होने और उसकी तसदीक पर मुत्तफ़िक़ है जो मुस्तफ़ीज़ बल्कि मुतवातिर है और मुकम्मल तौर से दलालत करने वाली हैं, कुरान मजीद के फेरबदल पर कलाम और माद्दा और एराब के एतबार से'' इसके अलावा शियों की दूसरी किताबों में विधिवत उन आयात की निशानदिही की गई है जिनमें उलट पलट हुई है, मसलन सूरः मआरिज पारा नं० २६, में आयत **''स अ ल साइलुन बि अज़ाबिन वाक़िइन लिल काफ़िरीन''** के बाद **''लिविलायति अलीयिन''** था मगर इसको मौजूदा कुरान से मिटा दिया गया है, और **''लिल काफ़िरीन''** के बाद **''ले स लहु दाफ़िउन''** मौजूब है।

(३) **ख़त्में नबूवत :** मुसलमानों का मौलिक अक़ीदा है कि नबूवत हुजूरे अकरम स० पर खत्म हो चुकी है और उनके बाद नबियों की विशेषता वाला कोई भी इंसान दुनिया में नहीं पैदा हुआ और न पैदा होगा, मसलन आपके बाद पैदा होने वाला कोई भी शख़्स मासूम (गुनाहों से पाक साफ़) नहीं होगा, कोई भी व्यक्ति इस शान वाला नहीं हो सकता कि उसकी पैरवी फर्ज़ (उसको मानना ज़रूरी हो) और जिस बात का वह हुक्म दे

उसको करना ज़रूरी हो और जिस बात से वह रोके रूकना ज़रूरी हो।

मगर शिया नबी के नाम से न सही तो इमाम के नाम से एक दो नहीं बल्कि बारह ऐसे लोगों को मानते हैं जो सारी नबियों की विशेषताऐं रखते हैं, उनकी पैरवी भी नबी की तरह फर्ज़ जानते हैं। उनको भी नबी की तरह मासूम करार देते हैं। इनकी नियुक्ति को भी मिनजानिब अल्लाह क़रार देते हैं। इनको नबी की भाँति हराम व हलाल का मालिक मानते हैं। इस बात का सुबूत शिया किताबों से भी मिल सकता है, और शिया खुद भी इसका इंकार नहीं करते हैं चुनांचे अपने को इसी लिए वह इस्ना अशरी (बारह इमामों वाला) कहते हे।

(४) **असहाब व अज़वाज :** मुसलमानों का अक़ीदा है कि सहाबा-ए-किराम अगरचे इंसान थे, और इंसान होने के नाते उनसे भूल चूक भी हो सकती है, मगर चूँकि उन्होंने सीधे (डायरेक्ट) हुजूर अलैहिस्सलाम के साथ रहकर उनसे फैज़ हासिल किया है और बे मिस्ल जां निसारी और शमअे नबूवत पर परवाना वार फिदाकारी का ऐसा सुबूत फ़राहम किया है कि बाद के लोगों में इसकी मिसाल नहीं मिलती, चुनांचे सहाबा-ए-किराम रज़ि० मजमूई तौर पर बाद के तमाम लोगों से अफ़ज़ल है।

यही हाल रसूल की पत्नियों का है कि उनको हुजूर के साथ रहना सहना नसीब हुआ और उन्होंने हर तरह की कुरबानी देकर हुजूर की ख़ुशनूदी (चाहत) हासिल की। रसूल के घर में होने के नाते उनका दर्जा बहुत बलन्द है वह तमाम मुसलमानों की मायें हैं और मां का एहतेराम हर शरीफ़ आदमी करने पर मजबूर है, और उसको अपने लिए बाइसे इ़ज़्ज़त समझता है, इसके मुक़ाबले में शिया हज़रात सिर्फ चन्द

असहाब, और अज़्वाज मेंसे सिर्फ़ हज़रत ख़दीजा रज़ि० के अलावा बाक़ी तमाम असहाब व अज़्वाज को गाली देना और उनकी शान में गुस्ताख़ियों करना और उन पर झूठे और बे बुनियाद इलज़ामात लगाकर उनके पवित्र चरित्र को दाग़दार करके पेश करना मुकम्मल ईमान समझते हैं।

सरसरी तौर पर यह चार इस्लामी उसूल और इनके मुक़ाबले में शीई उसूल पेश कर दिये गये जो शियों और सुन्नियों की मुस्तनद तरीन किताबों से लिये गये हैं। शिया किताबों का सन्युक्त रूप से हवाला भी दे दिया गया है और ज़रूरत पड़ी तो तफ़्सील के साथ इबारत के साथ भी हवाले दिये जा सकते हैं।

इस्लामी अकाइद के ख़िलाफ़ इन शीई अक़ाइद में कौन सा जज़्बा काम कर रहा है और उन उसूलों के किस कद्र दूर रस नताएज निकलते हैं इसकी तफ़्सील इंशा अल्लाह पेश की जायेगी। इस जगह तो एक नज़र में यह दिखाना है कि शीई अक़ाइद और इस्लामी अक़ाइद दो अलग अलग चीज़ें है और इन दोनों में कोई जोड़ नहीं है फिर कैसे यह कहा जाता है कि शिया व सुन्नी इस्लाम ही के दो फ़िरक़े हैं और इन दोनों में मज़हबी इत्तेहाद होना चाहिए? —— हां शिया व सुन्नी इत्तेहाद वक़्त की अहम ज़रूरत है, वह हो भी सकता है, मगर इस तरह जिस तरह तमाम ब्राद्राने वतन से मुसलमानों का या आपस में एक दूसरे का होता है।

शीईयत
इस्लाम के ख़िलाफ़ एक गहरी साज़िश

अल—बद्र के सफहात में इससे पहले कई बार यह बात ना क़ाबिले तरदीद दलाएल के ज़रिये कही जा चुकी है कि शीइयत इस्लाम के ख़िलाफ़ एक साज़िश है इस्लाम के नाम पर जितने गिरोह आज दुनिया में पाये जाते हैं अगर गहराई से पढ़ा जाये तो यह बात बिल्कुल साफ़ तौर से सामने आ जायेगी कि इन फ़िरक़ों का आपसी मतभेद किसी न किसी गलत फहमी की बुनियाद पर है या यूं कहा जा सकता है कि इस्लाम को समझने की सबने कोशिश की है। अब यह अलग बात है कि किसी ग़लत फ़हमी का शिकार होकर सही रास्ते से कोई भटक गया, और उसने इसी गलत फहमी को बुनियाद करार देकर अहले सुन्नत वल जमाअत से एख्तलाफ कर लिया, हम इन समुदाय की उन गलत बुनियादों को सराहना नहीं चाहते न ही इस सिलसिले में हम उनको बेगुनाह मानते हैं बल्कि असल बात यह है कि इस्लाम को समझने की किसी नाकाम कोशिश ने किसी नई चीज़ को जन्म दिया और नया फ़िरक़ा पैदा हो गया और फिर उसने अपने को सच व सही साबित करने पर ताक़त का इस्तेमाल शुरू कर दिया। इसके विपिरीत सिर्फ़ एक शिया फ़िर्क़ा ही ऐसा है जिसने बुनियादी तौर पर इस्लाम के सही उसूलों से इंकार कर के इस्लाम को मिटाना ही अपना शिआर

(हदफ़) समझा इस लिए इस फ़िर्क़ा की पैदाइश किसी ग़लत फ़हमी की बुनियाद पर नहीं हुई बल्कि यह इस्लाम के ख़िलाफ़ एक साज़िशी ज़हन की पैदावार है जिसने शुरू ही से इस मामले पर पूरा ज़ोर ख़र्च किया कि किसी तरह इस्लाम की असली सूरत बिगड़ जाये और इस्लाम के क़्यामत तक बाक़ी रहने की सम्भावनायें कम से कम हो जाये। हमने इससे पहले अपने इस दावे पर इल्मी और नक़ली तर्क पेश करके यह बात साबित की। और आज भी हम पूरी तरह इस पोज़ीशन में हैं कि अपने दावे को दलीलों के ज़रिये साबित कर दें, मगर इस वक़्त इल्मी दलीलों के बजाये हम मंतिक़ी और अक़ली तौर पर अपने दावे का सुबूत पेश करना चाहते है ताकि हर आम व ख़ास बग़ैर किसी फ़िक्र के इस साज़िशी फ़िर्क़े की ज़हनियत को अच्छी तरह समझ ले।

पैगम्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद स० को दुनिया की सबसे बड़ी इंक़लाबी शख़्सियत की हैसियत से उनके दोस्त तो दोस्त ख़राब से ख़राब दुश्मन ने भी तस्लीम किया है। मुशतशरिकीने योरप जिन्होंने आपकी ज़ात कुदसी सिफ़ात पर हर क़िस्म के नारवा (बेजा) हमले किये हैं, मगर उन्होंने भी इस मामले पर अपनी हैरत ज़ाहिर की है कि अरब के एक अनपढ़ शिक्षक ने क्यों कर इतना बड़ा इंक़लाब २३ साल की छोटी सी उम्र में पैदा किया कि कौमों की न सिर्फ तहज़ीब बल्कि उनके अंदाज़े फ़िक्र में कभी न मिटन सकने वाली तबदीलियां पैदा हो गईं।

आज आप अगर किसी बड़े से बड़े तारीख़ दां से पूछे कि दुनिया की तारीख़ के सबसे बड़े इंक़लाब का नाम क्या है? तो हम पूरे भरोसे के साथ यह बात कह सकते हैं कि वह इस बात पर मजबूर है कि इस्लाम का नाम बताये।

पैगम्बरे इस्लाम स० की चमतकारी तालीमात ही का असर

यह था कि उनके हाथों पर इस्लाम कुबूल करके उनके गुलामी में दाख़िल होने वाला व्यक्ति तन मन धन की बाज़ी लगा देने को तैयार हो जाता, यह उनकी पुर कशिश शख़्सियत की तासीर थी कि उनकी गुलामी करने वाले लोग अपनेको दुनिया का सबसे अच्छा इंसाल समझते और फिर दुनिया की कोई भी भड़कीली और चमकीली चीज़ उनका ध्यान अपनी ओर करने में नाकाम रहती।

२३ साल की छोटी सी मुद्दत में किसी इंक़लाब का शुरू होकर मुकम्मल हो जाना दुनिया की तारीख़ का वह हैरान कर देने वाला वाक़िया है जिसे ईमान की दौलत से मुशर्रफ़ लोग तो समझ सकते हैं लेकिन दूसरे लोग इस हक़ीक़त का एतराफ़ करने के बा वजूद हैरान व परेशान हैं।

लेकिन तारीख़े आलम के इस सबसे बड़े इंक़लाब की हक़ीक़त अगर कोई पागल यह बयान करे कि सिर्फ़ चन्द गिने चुने लोगों ने पैगम्बरे इस्लाम की तालीमात को कुबूल करके उनको अपना हादी व रहबर तस्लीम कर लिया था और उनकी मुकम्मल फरमां बरदारी का सुबूत दिया था तो आप उसे क्या कहेंगें? एक तरफ सारी दुनिया के बुद्ध जीवियों की पैग़म्बरे इस्लाम स० के इस अज़ीमुश्शान इंक़लाब के बारे में राय देखिए और दूसरी ओर मज़हबे शिया के इस पागल पन पर नज़र डालिये कि उनके हिसाब से पैग़म्बरे इस्लाम ने जिस वक़्त वफ़ात पाई उनके सिर्फ़ चन्द गिने चुने सच्चे मानने वाले थे वर्ना उनके इर्द गिर्द हज़ारों की तादाद से गुज़र कर लाखों की तादाद में गिने जाने वाले जान निछावर करने वालों का जो जथा था वह सब सिवाय उन चन्द के नऊज़ु बिल्लाह मुनाफ़िक़ थे और ज़ाहिरी तौर पर उनकी बात मानने थे, मगर दिल से उनके और उनके मिशन के मुख़ालिफ़ थे।

आख़िर शिया ऐसा क्यों कहते है, और उनका मक़सद क्या है? इसको समझने के लिए आप यह समझये कि किसी भी शख़्स की ज़िन्दगी के हालात उसकी तालीमात और उसके मक़सदे हयात को समझने और जानने के लिए आपके पास तीन ज़रिये हैं या तो उसके घर वाले या उसके दौर के वह लोग जिनके दरमियान उसने ज़िन्दगी गुज़ारी हों या फिर उसके सिलसिले में लिखी गई सच्ची बातें।

पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत महम्दद स० के मामूलाते ज़िन्दगी, उनके पैग़ाम की हमा ग़ीरियत, उनकी इंक़लाब आफ़रीं तालीमात की सही तस्वीर को जानने के लिए हमारे पास इन तीन ज़रिये के सिवा और कौन सा ज़रिया है? यक़ीनन सिर्फ़ यही तीन ज़रिये हैं जिनकी अहमियत से इंकार नहीं किया जा सकता।

अब आइये देखिये शीइयत ने किस किस तरह इन तीनों ज़रिये को गैर मोतबर और ना काबिले ऐतबार बनाने की कोशिशें की हैं।

(१) सबसे पहला हमला शीया धर्म की तरफ़ से ख़ुद आपकी धर्म पत्नियों पर हुआ और आपकी तमाम पत्नियों को सिवाय हज़रत ख़दीजा रज़ि० के गैर मोतबर करार दे दिया गया। उम्महातुल मोमिनीन की शान में ऐसे गुस्ताख़ाना हमले किये गये कि ख़ुदा की पनाह! नबी की पवित्र बीवियों और पूरी दुनिया के मुसलमानों की काबिले एहतेराम माताओं की तरफ़ दुनिया की कौन सी बुराई नहीं थोपी गई, उनकी निजी ज़िन्दगियों पर हमले किये गये, वह भौण्डी बातें जिनको दुनिया का मामूली इंसान अपनी बीवी के लिए सुन कर ताब न ला सके उनको खुल्लम खुल्ला निहायत ही बे शर्मी के साथ नबी की बीवियों के साथ जोड़ कर, नबी की गैरत को चैलेंज किया गया। और ज़ाहिर है कि इन तमाम बातों का मक़्सद सिर्फ़ यह

है कि रसूलुल्लाह स० की बीवियों को गैर मोतबर क़रार दे दिया जाये ताकि उम्मत को नबी की जो बातें उनके ज़रिये पहुंची हैं सब नाकाबिले ऐतबार हो जायें। रह गया ख़दीजा रज़ि० का मामला तो वह नबी–ए–करीम की ज़िन्दगी में ही वफ़ात पा गईं। इस तरह नबी–ए–मोहतरम के घर से किसी भरोसेमन्द बात के उम्मत तक पहुंचने का दरवाज़ा बन्द कर दिया गया।

(२) दूसरा हमला आपके साथियों पर किया गया कि वह सब सिवाय चन्द के भरोसे के लायक़ नहीं हैं, असहाबे रसूल जिनके साथ नबी ने ज़िन्दगी गुज़ारी और जो उनके इंकलाब आफ़रीं पैग़ाम का अमली नमूना थे, उनको न सिर्फ़ बद किरदार बल्कि ईमान से खारिज करार दे दिया। उनकी बे मिसाल कुरबानियों को नज़र अंदाज़ करते हुए उन्हें दुनिया के तमाम गुनाहों का भोगी माना। दुनिया जानती है कि आदमी को अपने हमजिन्सों से रग़बत यानी चाहत होती है किसी शख़्स के किरदार और उसके रात दिन के व्यस्तता के सिलसिले में सही वाक़फ़ियत हासिल करने के लिए उसके साथ उठने बैठने वालों और उसकी सरगमियों में शरीक लोगों के अख़लाक़ की जानकारी भी एक मोअस्सिर ज़रिया है इस तरह नबी–ए–मोहतरम के तमाम काबिले एतमाद साथियों के किरदार को दाग़दार करके यह कोशिश की गई कि इस ज़रिये से भी आपकी पाक और पवित्र ज़िन्दगी की कोई उज्जवल छाया सामने न आ सके।

(३) अब बचा तीसरा ज़रिया यानी नबी–ए–मोहतरम स० के सिलसिले में लिखी हुई मोतबर बातें, तो अब दुनिया की सबसे ज़्यादा मोतबर बात वह हो सकती है जिसे खुद ख़ुदावन्द कुद्दूस बयान करें और वह लिखी हुई सूरत में हमारे पास

मौजूद हो, तमाम मुसलमानों का सर्वसम्मति अक़ीदे के मुताबिक कुरआन मजीद खुदावन्द कुद्दूस का कलाम है, और इसका एक एक शब्द खुदा ही का फ़रमान है, जिसमें जगह जगह नबी स० की विशेषताऐं और आपकी पवित्र व पाक तालीमात और आपके मुबारक मिशन का तज़किरया मौजूद है शियई नुक्त–ए–नज़र से नबी की ज़िन्दगी को जानने का यह ज़रिया भी गैर मोतबर है। क्योंकि कुरआन मजीद अपनी असल शकल में हमारे सामने नहीं है इसमें जगह जगह तबदीली हो गई है। कुरआन मजीद में दूसरों का कलाम शामिल हो गया है। इसमें से खुदा का कलाम कम कर दिया गया है। इसके शब्द बदल दिये गये हैं और जगह जगह अक्षरों में तबदीलियों कर दी गई हैं।

अब देखने वाले! खुद गौर फरमायें कि नबी मोहतमर स० की ज़िन्दगी के हालात और आपके रूहानी मिशन और इंकलाबी तालीमात का इल्म हासिल करने का हमारे पास कौन सा मोतबर ज़रिया है? जो नबी नऊज़ुबिल्लाह खुद अपने घर की इस्लाह न कर सका? और जिसकी बीवियां लमबी मुद्दत तक उसके साथ ज़िन्दगी गुज़ारने और रात दिन में साथ रहने के बा वजूद गलत अखलाक़ वाली हूं जिस नबी के साथ उठने बैठने और रात दिन सफर व हज़र में शरीके कार रहने वाले नऊज़ुबिल्लाह झूठे खुद गर्ज़ यहां तक कि दौलते ईमान से महरूम रह कर मुनाफ़िक़ हों, उस नबी की शख़सियत की क्या तस्वीर उभर कर दुनिया के सामने आती है? मशहूर रिवायात के मुताबिक़ जिस वक्त रसूले खुदा स० की वफ़ात हुई उस वक़्त आपकी गुलामी में दाख़िल होकर इस्लाम का एलान करने वालों की तादार एक लाख चौबीस हज़ार थी, अब अगर छः सात गिने चुने आदमियों को उनमें से वाकई मुसलमान क़रार देकर

बाक़ी तमाम लोगों को मुनाफ़िक़, बे अमल, और बद किरदार करार दे दिया जाये तो क्या नबी का मिशन कामयाब कहा जायेगा? दुनिया के सबसे बड़े इंक़लाब के नतीजे में सिर्फ़ चन्द आदमियों की इस्लाह हुइ? २३ साला महनत का नतीजा सिर्फ़ चन्द अफ़राद? किस क़द्र हैरतनाक है यह अकीदा! और कितना ज़बरदस्त इलज़ाम है यह नबी अंतिम स० की व्यक्तित्व पर! हक़ीक़त यह है कि शियों को इस्लाम से दुश्मनी है, और वह नबी–ए–मोहतरत स० के मिशन को नाकाम करार देने के ख़्वाहिश मन्द हैं। इसी लिए उन्हों ने वह तदबीर इख़्तयार की जिससे दुनिया की सबसे भरोसेमन्द और सबसे अज़ीम हस्ती की तसवीर निहायत ही भोण्डे अन्दाज़ में सामने आती है।

इन दलाएल की रौशनी में हम पूर भरम के साथ कह रहे हैं कि शीईयत इस्लाम के खिलाफ एक गहरी साज़िश है जिसका मक़सद सिर्फ़ यह है कि इस्लामी तालीमात और पैग़म्बरे इस्लाम स० की पाक और पवित्र जिन्दगी की कोई खुली हुई तस्वीर दुनिया के सामने न आ सके और चूंकि यह साज़िश इस्लाम ही के नाम पर रची गई है इस लिए ज़ाहरी तौर पर इस्लाम और पैगम्बरे इस्लाम से अपने सम्बन्ध का इज़हार करके अपने को मोमिन और सच्चा मुस्लिम कहलाने की कोशिश की जाती है, मगर

ब हर रंगे कि ख़्वाही जामा मी पोश।
मन अंदाज़े क़दत रा मी शनासम।।

☆☆☆

फूट ब नाम एकता

अल–बद्र के एक पाठक ने दिल्ली से प्रकाशित होने वाली एक साप्ताहिक पत्रिका १. ता ७ अप्रैल १९८८ के अंक की एक कटिंग भेज करके सुझाव पूर्ण अंदाज़ में लिखा कि इस लेख पर अपनी टिप्पणी ज़रूर प्राकशित करे।

जिस लेख पर टिप्पड़ी के लिए कहा गया है वह देश के एक विवादित व्यक्ति और अपने को मुसलमानों में ऐकता के प्रचारक के रूप में प्रस्तुत करने वाले प्रिन्स अंजुम कद्र का है जो इस साप्ताहिक पत्रिका में "इख़्तलाफ़ में तबाही इत्तेहाद में कामयाबी" की जली सुर्ख़ी के साथ प्रकाशित हुआ है।

अंजुम कद्र सा० एक शिया नवाब ज़ादे हैं और उनको इस बात का पागल पन की हद तक शौक़ है कि उन्हें हिन्दुस्तानी मुसलमानों का एक अविवादित लीडर मान लिया जाये इस लिए वह अपने धन व दौलत के सहारे भिन्न भिन्न पेपरों में ऐसे विषय में लेख प्रकाशित करवाते रहते हैं जिसका विषय तो "इत्तेहाद" होता है लेकिन लेख के अन्दर जो कुछ होता है उसे नफरत के अलावा कोई दूसरा नाम नहीं दिया जा सकता, यही वजह है कि अंजुम कद्र सा० अखबारों में तो प्रकाशित हो जाते हैं लेकिन अपने लेखों की वजह से वह अपने मक़सद से दिन ब दिन दूर होते चले जा रहे हैं। और वास्तव में मुसलमान तो क्या शियों के भी लीडर नहीं बन सके। अपनी नाकामी पर झंझलाकर वह कभी शियों को कोसते हैं तो कभी

सुन्नियों को और कभी दोनों को।

बात अगर यहीं तक रहती तो उसे इज़्ज़त की चाहत कह कर नज़र अंदाज़ किया जा सकता था मगर बुरा हो शौक़ दिखावे का कि अपनी तरफ़ तवज्जुह करवाने के लिए झूठ, और हर इधर उधर की बात कह कर यह विश्वास कर लेते हैं कि

बद नाम जो होंगे तो क्या नाम न होगा?

यही वजह है कि कोई संजीदा और विद्वान व्यक्ति अंजुम कद्र के लेखकों के उत्तर में कुछ लिख कर अपना समय नष्ट करना पसन्द नहीं करता चाहे वह "मुलायम शिया" बन कर "इत्तेहाद" की बात करें चाहे कट्टर शिया बन कर अलग हो जाने की धमकी दे। लेकिन इसे मेरी मजबूरी कहिये या गैर संजीदा हरकत की पहली मर्तबा अंजुम कद्र साहब के किसी वार्तालाप को विषय बनाना पड़ रहा है और वह भी इस लिए कि अंजुम कद्र ने लिखा है कि

"लेखक का मौजूदा मकसद उन अकाएद से इख़तेलाफ़ करना या मुनाज़रा करना नहीं है बल्कि मुसलमानों को सिर्फ इतना मुतवज्जह करना ज़रूरी है कि इन नज़रयात के नतीजे में निम्न प्रश्न फौरन खड़े हो जाते हैं।

और फिर लेखक ने अपनी दिमाग़ी उपज के द्वारा १६ प्रश्न कर डाले। मैं चाहता हूं कि पाठक अंजुम कद्र साहब के दागे हुए प्रश्नों को ज़रूर सुन लें ताकि उन्हें लेखक की सच्चाई, दयानत दारी, इतिहास से ज्ञान, मज़हबी जानकारी और सबसे बढ़कर इत्तेहाद बैनल मुस्लिमीन से दिलचस्पी का हाल मालूम हो जाये।

पाठकों की जानकारी के लिए अंजुम कद्र के प्रश्नों और उनके उत्तरों पर टिप्पणी यह है :

(१) इमाम अबू हनीफा रह. के गुरू हज़रत इमाम जाफ़र

सादिक़ रह. जिनकी फ़िक़्हे के मानने वाले शिया कहलाते हैं क्या काफ़िर थे?

जी नहीं! इमाम जाफ़र सादिक़ रह. तो सच्चे पक्के मुसलमान थे लेकिन उनकी शख़्सियत को शियों ने बहुत बिगाड़ डाला यहां तक कि उनका तआरूफ़ एक नये दीन के बनाने वाले की हैसियत से कराया जिसमें ज़िना का हलाल, झूठ को असल दीन और मज़हब को छुपाना दीन की ज़रूरत माना जबकि हमारा यह यक़ीन है कि इमाम अबू हनीफा रह. के गुरू इमामन जाफ़र सादिक़ रह. कतई तौर पर इन शियई इल्ज़ामात से मुक्त हैं और वह उसी दीन के मानने वाले थे जो पैगम्बर–ए–इस्लाम खुलफा–ए–राशिदीन और दूसरे रसूल स० के साथियों से नक़ल होता चला आ रहा है।

(२) खुलफ़ा–ए–राशिदा[१] और दूसरे खुलफ़ा–ए–इस्लाम जिन्होंने रसूल स० के मज़ार के कमरे में करके फिर उस पर गुंबन्दे खज़रा तामीर करके और बाद वाले सब खुलफ़ा ने यह ''सबसे बड़ा बुत'' बाक़ी रखकर क्या शिर्क किया और इस तरह इस्लाम से क्या सब खुलफ़ा–ए–इस्लाम निकल गये?

मज़ारे अक़्दस और गुंबदे ख़ज़रा को सनमे अकबर जैसे बेहूदा नाम से याद करने की हिम्मत अंजुम कद्र जैसे व्यक्ति ही कर सकते हैं कोई मुसलमान नहीं। इस लिए इस सवाल का जवाब देने की ज़िम्मेदारी सनमे अकबर कहने वालों पर है।

(३) उम्मल मोमिनीन आ़इशा रज़ि. ने हुज़ूर स० की मौत पर रोना धोना किया अपना गरीबान फाड़ा और अपने मुंह पर तमाचे मार कर मातम किया और फिर बाद में मज़ारे अक़दस पर बराबर जाती थीं चादर चढ़ाती थीं, क्या वह भी मुशरिक और गैर मुस्लिम थीं?

---

(१) नक़ल मुताबिक़ अस्ल है

हम खूब जानते हैं कि अंजुम कद्र साहब ने प्रश्न की आड़ में रसूल की धर्म पत्नी और उम्मुल मोमिनीन की ज़ात पर बे बुनियाद और झूठे इलज़ामात लगा कर अपने जले दिल के फफूले फोड़े हैं और एक सड़े हुए राफज़ी की तरह तबर्रा बाज़ी की है, वास्तव में उम्मुल मोमिनीन आइशा रज़ि० का गरीबान फाड़ना, मुंह पर तमाचे मारना और मज़ारे अकदस पर चादर चढ़ाना न कहीं से साबित है न ही इन जैसी पाक और नेक किरदार से यह शियई रस्में मेल खाते हैं।

(४) खुद रसूले खुदा जो कब्र हज़रत खदीजा रज़ि० पर जाकर उन्हें याद करते थे क्या नऊज़ु बिल्लाह वह भी मुशरिक और इस्लाम से निकले हुए थे? यह किसका फ़तवा है कि क़ब्र पर जाने और अपनी मरी हुई बीवी को याद करने से मुसलमान इस्लाम से निकल जाता है और मुशरिक हो जाता है कि जनाब वाला ने (मआज़ल्लाह) ''अल्लाह हिफ़ाज़त फ़रमाये'' कह कर ही सही रसूले खुदा स० के लिए भी कुफ्र व शिर्क के दरवाज़े खोल देने की ना पाक कोशिश की?

हाय रे दिखलावे का शौक

(५) हज़रत शैख़ अब्दुल कादिर जीलानी रह., ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती रह., हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह., हाजी वारिस अली शाह रह. और अन्य औलियाऐ केराम क्या क़ब्र का एहतराम करने और ताज़िया रखने की बुनियाद पर मुशरिक और गैर मुस्लिम थे?

क़ब्र की इज़्ज़त और ताज़िया रखना दोनो अलग अलग वस्तुओं को एक में रख कर यह प्रश्न करना कि क्या इन दोनों कार्यों से कोई व्यक्ति काफिर हो जाता है? यह झूठ और बेकार की बातें हैं और यह प्रश्न ऐसा ही है जैसे कोई व्यक्ति यूं प्रश्न करे कि क्या दूध और शराब पीना हराम है बिल्कुल इसी तरह

क़ब्र का एहतराम ठीक और ताज़िया रखना हराम है, फिर दोनों को मिलाकर प्रश्न करने का क्या कारण? हां यूं प्रश्न किया जाता कि क़ब्र को पूजना और ताज़िया रखना हराम हैं या हलाल? और इन दोनों कार्यों के करने वाले मुश्रिक हैं या नहीं? तो प्रश्न ठीक होता मगर नवाब साहब की तो नियत ही कुछ और है इस लिए वह पवित्र लोगों का नाम लेकर सादे क़िस्म के व्यक्तियों को धोखा देने चाहते हैं। रह गया इन बुजुर्गों के सिलसिले में यह प्रश्न कि क्या ताज़िा दारी के कारण यह लोग मुश्रिक और गैर मुस्लिम थे? तो पहले यह साबित कीजिए कि ख़ुदा न ख़्वास्ता यह लोग ताज़ियादार थे तब तो प्रश्न सही होगा, बुजुर्गों के विरूद्ध यह झूठा प्रोपेगन्डा कि वह ताज़िया दार थे उनकी इज़्ज़त पर बट्टा लगाने से ज़्यादा कोई हेसियत नहीं रखता पहले ताज़िया दारी की हकीकत का तो पता लगाइये कि यह मुशरिकाना कार्य किसी बुजुर्ग की नहीं कल्कि एक शिया शासक तैमर लंग की उपज है, बुजुर्गों ने तो हमेशा इसका विरोध किया है अब तक तो सिर्फ हाजी वारिस अली शाह के बारे में यह प्रोपेगन्डा था कि वह ताज़िया रखने वाले थे मगर अंजुम कद्र साहब की हिम्मत को दाद देना चाहिये कि उन्होंने तमाम बुर्ज़ुगाने दीन को ताज़िया रखने वाला माना हां बात सत्य यह है कि बड़ा आदमी छोटा मोटा झूठ किया बोले उसे अपनी शान के हिसाब से झूठ भी बोलना होता है।

(६) हिन्दुस्तान के महान शासक अकबर और जहांगीर जो न केवल हज़रत सलीम चिशती और ख्वाजा अजमेरी के मज़ार पर जाते थे और वहां खिचड़े के लिए दो डेग भी लगवा गये। क्या वे मुश्रिक और गैरमुस्लिम थे?

अच्छा होता हिन्दुस्तान के सम्राटों के साथ नवाबीन–ए–अवध को भी शरीक कर लिया होता और फिर यूं

प्रश्न करते क्या दीन–ए–इलाही यानी अकबरी दीन की ईजाद करने, कुरआन के इलहामी किताब मानने से इंकार करने, इस्लामी शिआर का मज़ाक उड़ाने, इस्लामी इबादात मसलन नमाज़, रोज़ा के साथ खिलवाड़ करने, नाचने गाने की मजलिसें, शराब व कबाब में बदमस्त होने सेंकड़ों नारियों की इज्ज़त लूटने, पुरूष होकर महिला वाला पहनावा कान में बुंदे और नाक में नथनी पहनने के कारण यह लोग कुछ गुनहगार हुए? मुश्रिक और ग़ैर मुस्लिम होना तो दूर की बात है कहीं सत्ता के मालिक भी गुनहगार हुआ करते हैं यह दीन की पाबन्दियां तो प्रजा के लिए होती हैं ना! है ना यही बात नवाब साहब??

(७) ताज महल एक काफ़िर की याद में एक मुश्रिक ने बनवा कर और इसमें एक छोटा बुत बिठा कर उसे भी मंदिर बना दिया।

पहली बात तो यह है कि वह छोटी मूर्ति ताज महल में है ही नहीं। दूसरी बात यह है कि ताज महल की ज़ियारत अंजुम कद्र साहब ही ''काबा–ए–हिन्द'' समझ कर करते होंगे, और वहां जाकर मन्नतें व मुरादें मांगते होंगे वर्ना देशी विदेशी पर्यटक तो उसे एक तमशा का स्थान समझ कर देखने जाते हैं उन्हें न किसी काफ़िर से दिलचस्पी होती है न ही उससे गरज़ कि वह मोहब्बत को प्रकट करना है वह तो फन्ने तामीर के एक शाहकार को देखने जाते हैं जिसमें कोई धार्मिक जज़्बा काम नहीं देता। लेकिन अब उसे क्या किया जाये कि जैसे पीलिया के बीमार को हर चीज़ पीली नज़र आती है इसी तरह अंजुम क़द्र साहब को हर चीज़ में शियत नज़र आ रही है।

(८) पाकिस्तानी सुप्रीमो ज़ुलफ़िक़ार अली भूट्टू, ज. यहया खां, ज. मूसा, ज. सिकन्द्र मिर्ज़ा या ख़ुद पाकिस्तान के संसथापक मुहम्मद अली जिनाह शिया होने के कारण क्या यह

सब काफिर थे?

अगर यह लोग सच्चे इसना अशरी शिया थे और उनकी वहीं अकाएद थे जिनकी वजह से शियों को काफिर कहा गया तो हक़ीक़त में यह लोग भी काफ़िर थे और उनके काफ़िर होने से इस्लाम और मुसलमानों का कुछ भी नुक़्सान नहीं है।

(६) उर्दू ज़बान के सबसे अच्छे कवियों की एक पूरी लाइन सोदा, मीर, ग़ालिब, अनीस, हाली, यहां तक कि जोश मलिहाबादी सबके सब क्या काफ़िर थे? और हज़रत अमीर ख़ुसरू, ज़ोक, मुहम्मद अली जोहर, से लेकर अल्लामा इक़बाल तक एक दूसरी लाइन उर्दू के कवियों की क्या यह सबके सब मुश्रिक और इस्लाम से बाहर थे क्या उर्दू का एक भी महान कवि मुसलमान न था? कुफ्र और शिर्क का यह फ़तवा तो जनाब ही बयान कर रहे हैं इसके उत्तर की ज़िम्मेदारी भी आप ही के ऊपर है वैसे हक़ीक़त तो यह है कि इन कवियों में से कुछ सच्चे पक्के मुसलमान और कुछ खुले हुए बेदीन थे अलबत्ता कुछ की हालत मशकूक है जिसका फ़ैसला करना उनके सही अकीदे के इलम के बाद ही हो सकता है क्योंकि ईमान और कुफ्र और तौहीद व शिर्क का फैसला शाइरी की बुनियाद पर नहीं अक़ाएद की बुनियाद पर होता है। अगर कोई मुश्रिक अच्छा कवि हो तो उसे ज़बरदस्ती मुसलमान बनाने की कोई ज़रूरत नहीं है न ही उसकी शायरी को अंजुम क़द्र साहब के ईमानी सर्टीफकेट की ज़रूरत है।

रह गया यह प्रश्न कि क्या उर्दू का एक भी महान कवि मुसलमान नहीं था? तो इसके उत्तर में आपकी दी हुई फ़ेहरिस्त में से भी नाम पेश किये जा सकते हैं इसके अलावा भी और भी सैंकड़ो नाम हैं उदाहरण के तौर पर मोमिन खां मोमिन, फ़ानी, सीमाब, अल्लामा एक़बाल, एक़बाल सोहेल, हफ़ीज़ जालंधरी,

असगर गोण्डवी, जिगर मुरादाबादी वगैरह।

(१०) ख़ुलफ़ा–ए–इस्लाम ने मक्का मदीना और हरमैन शरीफ़ेन (मक्का मदीना के बाद और ''हरमैन शरीफ़ैन'' से अंजुम क़द्र साहब ने मालूम नहीं क्या मुराद लिया है? खुदा ख़ैर करे) में शिया सुन्नी ''काफ़िरों और शिर्क करने वाले'' को जाने और हज करने की इजाज़त १४०० साल से दे दे कर क्या महान गुनाह किये (जब कि काफ़िर और मुर्शिकीन का वहां दाख़िल होना वर्जित है)

कोई भी काफिर और मुर्शिक अपने वास्तविक अक़ीदे को ज़ाहिर न करके अपने को मुसलमान ज़ाहिर करके और अपना नाम मुसलमानों जैसा रख ले तो यह किसे पता चलेगा कि यह हक़ीक़त में मुसलमान नहीं है और उसे हरमेन शरीफ़ेन में दाख़िल होने से क्यों कर रोका जा सकता है? हां यह ज़रूर हुआ है कि धोखा देकर जाने वालों मेंसे जिन व्यक्तियों के इस्लाम से दुश्मनी और काफिराना अक़ीदे प्रकट हुए उनको गिरफ़्तार किया गया, वापस भी किया गया और दाख़िल होने से रोका भी गया। वैसे तो धोखे धड़ी का दर्वाज़ा इसके बाद भी खुला रहता है।

(११) हज़रत इमाम हुसैन और हज़रत अली रज़ि० के रौज़े क्या काफ़िरों के कब्ज़े में हैं जो विश्व के मुश्रिकों का भी जमघट हैं?

इस प्रश्न से कौन सा तीर मार लिया जायगा? पहला स्टेप तो यह है कि खुद शिया पुस्तकों ही से यह साबित है कि हज़रत अली रज़ि० का जिस्म एक ऊँटनी लेकर दो पहाड़ों के बीच खो गई और यह पता ही नहीं चला कि आपका शव कहां गया? इस तरह आपके नाम का बना हुआ यह फ़र्जी रौज़ा क़रार पाया फिर अगर यह मान भी लिया जाये कि दोनों रौज़े

अस्ली हैं लेकिन उनके मुजाविर काफ़िर हैं तो कौन सी क़्यामत टूट पड़ेगी? इस क़िसम के कई उदाहरण हमारे देश में ही मौजूद हैं।

ज़ाहिर है कि इससे कब्र वाले की अज़मत पर कुछ असर नहीं पड़ता ठीक उसी तरह जैसे अगर कुरआन मजीद का कोई नुस्ख़ा किसी ग़ैर मुस्लिम के पास मौजूद हो तो वह भी उसी प्रकार मोहतरम है जिस तरह मुसलमानों के पास मौजूद कुरआन का नुस्ख़ा।

(१२) दिल्ली की सफ़्दर जंग की मस्जिद, हैदराबाद की मक्का मस्जिद, कलकत्ता की टीपू सुलतान मस्जिद, आगरा की जामा मस्जिद, और अवध की बाबरी मस्जिद चूंकि शियों ने बनवाई क्या उनसे मोतअल्लिक़ सब तहरीकें अब बन्द कर देना चाहिए?

मस्जिदें जब तामीर के बाद अल्लाह की इबादत के लिए वक्फ़ करके आम मुसलमानों के हवाले करके उनकी इबादत के लिए खोल दी गईं तो उनका हुक्म मस्जिद का हो जाता है। और फिर क़यामत तक उनकी हैसियत तबदील करने का किसी को कोई हक नहीं होता चाहे उनको बनाने वाला कोई भी हो। अब अगर उनकी हैसियत बदलने की कोशिश हो तो इसका रोकना मुसलमानों की ज़िम्मेदारी है। इस लिए मुसलमान मस्जिदों को हासिल करने के लिए तहरीकें चला रहे हैं।

रह गया आपके प्रश्न का मामला तो वह आपके उन दिली जज़बात का इज़हार है जिनको आप पहले ही ज़ाहिर कर चुके हैं। और सिर्फ़ प्रश्न ही नहीं बल्कि आप खुले आम धमकी दे चुके हैं कि शिया इस तहरीक से अलग हो जायेंगे हालांकि शियों का इस तहरीक में शामिल होना दुनिया को मालूम है और आपकी गीदड़ भपकी का अंजाम भी।

(१३) क्या हिन्दुस्तान की सभी मस्जिदें शिया सुन्नी और सूफ़ियों ने नहीं बनवाई थीं जिको अब काफिर और मुर्शिक कहा जा रहा है, क्या असली मुसलमान १८५७ ई० के बाद हिन्दुस्तान में अब नमूदार हुए हैं।?

अब और जब क्या? इस्लाम और कुफ्र की हदबन्दी पलहे दिन से ही है जिन उसूलों की बुनियाद पर आज किसी के मुस्लिम, काफ़िर, मुर्शिक या मुनाफ़िक़ होने का फ़ैसला होगा उनही उसूलों की बुनियाद पर एक हज़ार वर्ष या उससे पहले के लोगों का भी फैसला होगा। क्या आपके ख़याल में हज़रत ख़्वाजा अजमेरी रह०, हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया रह०, हज़रत साबिर कलयरी रह०, हज़रत ख़्वाजा बख़्तियार काकी रह०, हज़रत मुजददिद अल्फे सानी रह०, हज़रत ख्वाजा मुहम्मद मासूम रह०, हज़रत शाह वलीयुल्लाह रह० और उनका ख़ानदान, हज़रत सय्यद अहमद शहीद रह०, और अन्य महान औलिया अल्लाह और उनके सच्चे पैरूकार १८५७ से पहले हिन्दुस्तान में पैदा होने वाले मुसलमान न थे?

(१४) ईरान, इराक़ और लेबनान जो अधिक शिया समूदाये के देश हैं क्या कुफ़रिस्तान हैं, और अधिक सुन्नी समूदाय वाले देश जैसे तुर्किस्तान, लेबिया, शाम या मिस्र वगैरह जहां सय्यदा ज़ैनब पुत्री अली रज़ि० का मज़ार है क्या गैर मुस्लिम देश हैं?

अरे होशियार और अक़लमन्द जनाब! किसी देश की दस्तूरी हैसियत का फ़ैसला वहां के आईन की बुनियाद पर होता है। आबादी की बुनियाद या मज़ारों की मौजूदगी पर नहीं! इस्लामी देश वही कहलाने का हक़दार है जहां कुरआन को मुकम्मल तौर पर आईन का दर्जा हासिल हो और खुदा और उसके रसूल स० के फ़रमान की हकूमत हो और उस बुनियाद पर आपके याद दिलाये हुए किसी भी देश को इस्लामी देश

नहीं कहा जा सकता भले ही वहां के बादशाह मुसलमान हों या मुसिलामनों की अधिक आबादी हो या शिया हो या अहम इस्लामी व्यक्तियों के मज़ारात हों।

(१५) जामिया अज़हर मिस्र में फ़िक़ा–ए–जाफ़रिया का एक अगल विभाग और मुस्लिम विश्व विद्यालय अलीगढ़ के ''विभाग दीनियात शिया'' में क्या कुफ़्र की शिक्षा दी जाती है?

जी हां! वहां शीईयत की शिक्षा दी जाती है जिसका इस्लाम से बुनियादी एख़तलाफ़ ज़ाहिर है। आपके बहुत से बड़े और छोटे खुले आम एलान कर चुके हैं कि इस्लाम और चीज़ है शीईयत और चीज़?

(१६) मुस्लिम लीग, मजलिस इत्तहादुल मुस्लिमीन, नेशनल कान्फरेन्स, मुस्लिम मुत्तहिदा महाज़, मुस्लिम पर्सनल्ला कांफ्रेन्स बोर्ड,[१] मुस्लिम मजलिसे मुशाविरत, रियासतों के वक़्फ़ बोर्ड, औक़ाफ़ के मुतवल्लियान, और सेन्ट्रल वक़्फ़ काउंसिल में क्या काफ़िर और मुर्शिकीन की भर मार है?

जी हां है तो! और इसका नतीजा भी आपके सामने है।

उपर्यूक्त १६ प्रश्न खड़े करने के बाद अंजुम कद्र साहब टिप्पणी फ़रमाते हैं कि

''इस तरह बहुतसे बेकार नतीजे उस सलीबी सहयूनी तख़ारीबी चक्कर से निकलते हैं जिसके इर्द गिर्द वहाबी बरेलवियों को मुशरिक बरेलवी शियों को और वहाबियों को काफ़िर और अब वहाबी भी शियों को काफ़िर कह रहे हैं और शिया कियी कलाम गो को काफ़िर न कहते हुए सोच रहे हैं कि

''बुत हमको कहें काफ़िर अल्लाह की मर्ज़ी है''

समझ में नहीं आता कि अंजुम क़द्र के कथनानुसार एक

(१) नक़ल मुताबिक़ अस्ल है

ओर शिया तो किसी कलिमा पढ़ने वाले को काफ़िर नहीं कहते चाहे वह क़ादयानी हों या मुनाफ़िक़ीन, दूसरी ओर यह भी सोच रहे हैं कि

''बुत हमको कहें काफ़िर अल्लाह की मर्ज़ी है''

''तो आख़िर किसे बुत बना रहे हैं?''

आगे चलकर इन मज़मून के लेखक की यह टिप्पणी किस कद्र ताज्जुब खेज़ है कि

''हिन्दुस्तान में और बैरूने हिन्द भी मुसलमान होने के लिए हमेशा से कलिमा तैय्यिबा का पढ़ना काफ़ी है इसमें ज़रूरियाते दीन का ''मुग्घम'' (खुदा जाने यह किस लुगत का लफ़्ज़ है और इसके क्या माना हैं अल्लाह रे दानिशवरी) फक़रा फर्ज़ बनाकर जोड़ना इफ़तेराक़ बैनल मुस्लिमीन[१] फैलाना है।''

मालूम नहीं कि इस दावे के साथ जनाब वाला जंगे सिफ़्फ़ीन जंग जमल और सबसे बढ़ कर जंग कर्बला की वजह जवाज़ किया बतायेंगे? क्या अब यह भी दावा करने की जुरात की जायेगी कि हज़रत अली रज़ि० और हज़रत हुसैन रज़ि० के दुश्मन कलिमा तय्यिबा को नहीं पढ़ा करते थे?

हम अगर अर्ज़ करेंगे तो शिकायत होगी।

(१) इफ़्तिराक़ के साथ ''फैलाने'' की भी खूब रही, और इस दानिशवरी की उम्मीद किसी ''खयाली प्रिन्स'' ही से की भी जा सकती है?

शियई अक़ाएद और इस्लाम

इस्लाम का कलिमा पढ़ने वाले और पेग़म्बरे इस्लाम स० की इस हदीस के अनुसार :

عن معاوية قام فينا رسول الله صلى الله عليه وسلم فقال ان من كان من اهل الكتاب افترقوا علىٰ ثنتين و سبعين ملة و ان هذه الامة ستفترق علىٰ ثلاث و سبعين فرقة ثنتان و سبعون فى النار وواحدة فى الجنة و هى الجماعة۔

तर्जुमा : मुआविया रज़ी० से रिवायत है कि रसूलुल्लाह स० हमारे बीच खुतबा देने के लिए खड़े हुए और फ़रमाया कि तुमसे पहले जो लोग अहले किताब मेंसे थे वह ७२ गिरोहों में बट गये और अंक़रीब यह उम्मत ७३ गिरोहों में बट जायेगी। ७२ नर्क में जायेंगे और एक गिरोह स्वर्ग में जायेगा और वह ''अल जमाअत'' है। (अबू दाऊद शरीफ़)

आज अनेक गिरोह में लोग बटे हुए हैं। हुजूर स० का कहना सच्चा है जो पूरा होकर रहेगा। कयामत से पहले इस्लामी कलिमा पढ़ने वालों का ७३ फ़िरक़ों में बट जाना ज़रूरी है। और उनमेंसे एक ही जन्नती होगा बाकी जहन्नमी होंगे। ज़ाहिर है कि हर गिरोह अपने आपको जन्नती समझ रहा है और दूसरों को जहन्नमी, जो मौजूदा गिरोह हैं उनकी भी यही रविश है और जो आइंदा पैदा होंगे उनकी भी यही रविश

रहेगी।

यूँ तो यह गिरोह वास्तव में भी अलग हैं और अकीदे के हिसाब से भी अलग हैं मगर बुनियादी तौर पर बाज़ अकीदे ऐसे हैं जिनमें सब एक हैं और सब ही का यह मानना है कि इनके अकीदों को न मानने वाला कोई भी गिरोह इस्लाम में दाख़िल नहीं हो सकता उदाहरण के तौर पर (१) खुदा पर ईमान और यह यक़ीन कि उसकी ज़ात में कोई ऐब नहीं उससे किसी गलती का इमकान नहीं है उसकी कुदरत से कोई वस्तु बाहर नहीं। उसका ज्ञान पूरी दुनिया पर हावी है। यह बुनियादी अक़ीदा जिसको न सिर्फ़ तमाम इस्लाम के मानने वाले बल्कि तमाम धर्म वाले मानते हैं और ख़ुदा को Suprime Power (बहुत ताक़तवर) सबही मानते हैं मगर एक गिरोह शिया ऐसा है जो ख़ुदा को बेऐब नहीं मानता और ख़ुदा के सिलसिले में बदा (भूल) को मानता है इस तरह यह गिरोह दुनिया के तमाम धर्मो में सबसे अलग है और ख़ुदा में कमी को मानता है। इसी तरह (२) हुजूर स० के सिलसिले में तमाम इस्लाम का कलिमा पढ़ने वाले इस बात पर एकजुट हैं कि आप न केवल ख़ुदा के नबी व रसूल हैं बल्कि नबियों के सरदार और रसूलों के इमाम हैं और आप पर नबूवत का सिलसिला ख़त्म हो गया। अब आपके बाद कोई नबी आने वाला नहीं है गोया वह सिफ़ात व कमालात जो नबियों के साथ ख़ास हैं (जैसे कि मासूम होना वगैरह) अब किसी दूसरे में नहीं पाये जा सकते क्योंकि इस नूरानी सिलसिले की आखरी ज़ंजीर हजूर स० की ज़ात है। मगर इस सिलसिले में शिया और क़ादयानी दो गिरोह ऐसे हैं जो इख़्तेलाफ़ करते हैं और तमाम इस्लाम के मानने वालों के मुत्तफ़क़ अक़ीदे ख़त्मे नबूवत का इंकार करते हैं मगर हंसने की बात यह है कि दोनों ही ख़त्मे नबूवत का इंकार करने के

बावजूद इस हठ पर क़ायम हैं कि वह हुज़ूर स० को आखरी नबी मानते हैं हालांकि कादयानी मिर्ज़ा गुलाम अहमद कादयानी को हुजूर स० के बाद नबी मानते हैं और शिया १२ इमामों को नबियों की तमाम सिफाते खास्सा को रखने वाला मानकर उनकी अताअत लाज़िम समझते हुए उनको मासूम और उनकी पैरवी मानना ज़रूरी समझते हैं। इसी तरह (३) तमाम इस्लाम का कलिमा पढ़ने वाले कुराअन मजीद को खुदा की आखिरी इलहामी पुस्तक मानते हुए उसे बिल्कुल सच व सही समझते हैं और सब ही व्यक्ति अपने आपको कुरआनी ज़िन्दगी के ताबेदार समझे जाने को मुतालबा करते हैं दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सारे इस्लामी गिरोह इस बात पर एकजुट हैं कि कुरआन मजीद वही किताबे हिदायत है जो हुजूर स० पर अल्लाह के द्वारा उतारी गई है और उसके किसी शब्द में कोई तबदीली हुई है न ही हो सकती है क्योंकि उसकी हिफाज़त की जिम्मेदारी खुद खुदा ने यह कह कर ले ली है कि "हमने ही कुरआन को उतारा है और हम ही इसकी हिफ़ाज़त करेंगे)। कोई भी व्यक्ति इसके अलावा दूसरा अक़ीदा कुरआन के सिलसिले में रख कर कोई भी अपने आपको मुसलमान कहलाने का हक़दार नहीं हो सकता मगर एक गिरोह शिया है जो कुरआन मजीद को ऐतबार के लाएक़ न मान कर उसमें फेर बदल हो जाने को कहता है और उसका यह कहना है कि हमारे सामने वह कुरआन नहीं है जो हुजूर स० पर उतरा था बल्कि इसमें अनेक स्थानों में शब्द और अर्थ में तबदीली की जा चुकी है अनेक सूरतें और आयतें इसमें से गायब कर दी गई हैं जिसके कारण कुरआन एतबार के क़ाबिल नहीं रहा जब कि दूसरे तमाम गिरोहों का कहना है कि कुरआन मजीद में कोई तबदीली न शब्द के ऐतबार से और न ही अर्थ के ऐतबार से

हुई है।

यह तो ईमानियात के मुतअल्लिक़ शिया और अन्य इस्लाम के मानने वालों के दरमयान अक़ीदों के एख़्तेलाफ़ की बातें थीं। इसके अलावा अख़लाक़ियात से मुतअल्लिक़ कुछ ऐसी हक़ीक़तें हैं कि जिनसे न केवल दुनिया के तमाम धर्म वाले बल्कि बुद्धिमान मनुष्यों का भी इत्तेफ़ाक़ है केवल शिया ही ऐसे हक़ीक़तों का इंकार करके दुनिया भर के तमाम इंसानों के मुक़ाबले में एक नई शिक्षा पेश करते हैं उदाहरण के तौर पर

(१) झूट एक ऐसी बुराई है जिसका बुरा होना इतना ज़ाहिर है जितना सूर्य का निकलना। सब धर्मों ने इस बुराई से बचने की हिदायत की है इसके अलावा किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति से आपने झूठ की प्रशंसा करते हुए नहीं सुना होगा। झूठ को हुनर बताने का काम केवल शिया धर्म में ही किया गया है और झूठ को धर्म करार देते हुए उसे तक़िय्या का नाम दिया गया है और इस पर इतना बल दिया गया है कि शिया धर्म का ६/१० भाग तक़िय्या ही में छुपा हुआ है।

इसी तरह (२) मुतआ़ नाम से इस धर्म में जो इबादत है वह भी इंसानियत की पेशानी पर कलंक का टीका है मुतआ का ख़ुलासा यह है कि समय बांध करके कुछ रूपये पर एक लड़की और एक लड़का एक दूसरे से सम्बंध कायम कर लें और आपस में पति पत्नी के रूप में एक समय तक रहें। समय समाप्त हुआ रिश्ता समाप्त हो गया। पाठक सोचें कि यह क्या चीज़ है? एक ओर सब धर्म और सच्चे व्यक्ति बुराई को रोकने की शिक्षा देते हैं और दूसरी ओर वही चीज़ें शियों की ओर से बड़े ज़ोर व शोर के साथ धर्म का एक पार्ट बनाकर पेश की जा रही है। और इस पर पाबन्दी लगाने वालों पर अनेक तरह के इलज़ामात दिये जा रहे हैं। और उनको इस्लाम दुश्मन और

मुनाफिक मनवाने की कोशिश की जा रही है। इंसानी ज़िन्दगी की इस ट्रेजडी पर मनुष्य जिस कद्र भी आंसू बहाये कम है।

उपर्युक्त शिक्षा शिया धर्म की पांच मौलिक शिक्षाऐं उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है जिनसे हमारे पाठक अंदाज़ा लगा लेंगे कि शिया धर्म का इस्लाम धर्म से कोई ताल्लुक नहीं बल्कि यह इस्लाम के विरूद्ध एक साज़िश है जिसने इस्लाम का नाम लेकर उसे बदनाम करने में कोई कमी नहीं छोड़ी है।

अब आइये हम अपने पांचों दावों का सुबूत शिया धर्म की उन सही पुस्तकों से दें जिनका कोई शिया इंकार नहीं कर सकता और उन पुस्तकों के एक एक शब्द पर ईमान रखना उसके लिए ज़रूरी है।

(१) **बदा :** शियों का अक़ीदा है कि ख़ुदा को बदा होता है यानी नऊज़ु बिल्लाह ख़ुदा जाहिल है उसको सब बातों की जानकारी नहीं होती है और उसको फ़ैसला कर लेने और उसका एलान कर देने के बाद भी अपनी राय बदलना पड़ती है। चुनांचे शियों की बहुत ही सम्मानित पुस्तक उसूले काफ़ी पृष्ठ सं० ४४ पर हसन अस्करी की इमामत के सम्बंध में ख़ुदा के बदा का हाल इस तरह है :

عن ابی الهاشم الجعفری قال کنت عند ابی الحسن
علیه السلام بعد ما مضیٰ ابنه ابو جعفر و انی لافکر فی
نفسی ارید ان اقول کأنهما اعنی ابا جعفر و ابا محمد
فی هذا الوقت کابی الحسن موسیٰ و اسماعیل و ان
قصتهما کقصتهما اذ کان ابو محمد المرجا بعد ابی
جعفر فاقبل علی ابو الحسن علیه السلام قبل ان انطق
فقال نعم یا ابا الهاشم بدأ الله فی ابی محمد بعد ابی
جعفر مالم تکن تعرف له کما بدأ له فی موسیٰ بعد ما
مضیٰ اسماعیل ما کشف به عن حاله۔

तर्जुमा : अबुल हाशिम जाफ़री से रिवायत है वह कहते हैं कि अबुल हसन अ० के पास मैं मौजूद था जबकि उनके पुत्र अबू जाफ़र की वफ़ात हो चुकी थी और में अपने हृदय में सोच रहा था और यह कहना चाहता था कि इन दोनों यानी अबू जाफर और अबू मुहम्मद का इस समय वही हाल हुआ जो अबुल हसन मूसा और इस्माईल का हुआ था उन दोनों का वाकिआ इनहीं दोनों के वाकिये की तरह है क्योंकि अबू मुहम्मद की इमामत भी अबू जाफ़र के मृत्यु के बाद हुई, तो मेरी ओर अबुल हसन ने चेहरा किया इस्से पहले कि मैं कुछ कहूं फिर कहा ऐ अबुल हाशिम अल्लाह को अबू जाफ़र के मृत्यु हो जाने के बाद अबू मुहम्मद के सिलसिले में बदा हुआ जो बात मालूम न थी उसे मालूम हो गई जैसा कि मूसा के सिलसिले में इस्माईल की मृत्यु हो जाने के बाद बदा हुआ था जिसने अस्ल हकीकत ज़ाहिर कर दी।''

इस रिवायत के वाक़िये को सही समझने के लिए यह बात याद रखनी होगी कि शिया हुजूर स० के बाद बारह इमामों को भी अंबिया की सिफात वाला बता कर उनको मानना ज़रूरी समझते हैं और उनका यह भी अक़ीदा है कि जिस तरह नबूवत अल्लाह की ओर से दी जाती है उसी तरह इमामत भी अल्लाह की ओर से दी जाती है चुनांचे शियों के कहने के मुताबिक़ हुजूर स० ने हज़रत अली रज़ि० को बारह मोहर बन्द लिफ़ाफ़े दिये थे जिसमें तमाम इमामों के नाम और उनकी तफसीलात लिखी थीं। इस लिफ़ाफ़े को हुजूर अलैहिस्सलाम की ख़िदमत में अल्लाह की ओर से जिब्रईल अमीन लेकर आये थे। गोया

इमामत के सिलसिले में ख़ुदा ने अपने फ़ैसले का एलान हुज़ूर अलैहिस्सलाम के इस दुनिया से चले जाने से पूर्व ही कर दिया था।

ऊपर बताई गई बातों को समझये जिसका ब्योरा इस तरह है कि रावी बयान करता है कि मैं अबुल हसन यानी इमाम तक़ी अलैहिस्सलाम के निकट बैठा था और उनके पुत्र अबू जाफ़र यानी मुहम्मद की मृत्य हो गई थी जिनके बारे में उनके पिता पूर्व ही ख़बर दे चुके थे कि वह मरे बाद इमाम होंगे। यही ख़ुदा का फ़ैसला है मगर ख़ुदा को यह मालूम न था कि मुहम्मद की अपने पिता इमाम तक़ी के सामने ही मृत्यु हो जायेगी इसी लिए उसने उनकी इमामत को फ़र्ज़ क़रार दिया था। मगर जब उनकी मृत्य हो गई तो नऊज़ु बिल्लाह ख़ुदा को अपनी जिहालत का इल्म हुआ और उसने अबू जाफ़र मुहम्मद के स्थान पर अबू मुहम्मद हसन अस्करी को इमाम बना दिया इस तरह का वाकिया इससे पूर्व इमाम जाफ़र सादिक़ के दो पुत्रों के सिलसिले में पेश आ चुका है कि पहले ख़ुदा ने उनके पुत्र इस्माईल को उनके बाद इमामत के लिए चुना और इसका ऐलान भी कर दिया उसके बाद मूसा काज़िम को इमाम जाफ़र सादिक़ ने ख़ुदा के हुक्म से अपना अपने बाद के लिए इमाम चुना। इस तरह पहले ख़ुदा ने इस्माईल को इमामत के लिए चुना था मगर जब उसको बदा हुआ तो उसने अपना फ़ैसला बदल लिया और मूसा काजिम को इमाम बनाया।

एक हंसी की बात इस जगह यह बताना है कि शिया हज़रात ख़ुद भी इस बात को मानते हैं कि बदा एक ऐसा अक़ीदा है जो ख़ुदा के लिए ठीक नहीं चुनांचे शियों के एक महत्वपूर्ण आलिम विद्धान मौलवी दिलदार अली लिखते है।

اعلم ان البدا لا ينبغی ان يقول به احد لانه يلزم منه ان

يتصف البارى تعالىٰ بالجهل كما لا يخفى۔ (اساس الاصول، صفحه ٢١٩)

तर्जुमा : जान लो कि बेशक बदा ऐसी चीज नहीं कि जिसका कोई मानने वाला हो क्योंकि इससे बारी तआला के लिए न जानना लाज़िम आता है जैसा कि छुपा हुआ नहीं है।

लेकिन इसके बावजूद उनका अकीदा है कि :

عن مالك الجهنی قال سمعت ابا عبدالله يقول لو علم الناس ما فی القول بالبدأ من الاجر ما افتروا عن الكلام منه (اصول كافی، صفحه ٨٤)

तर्जुमा : मालिक जुहनी से रिवायत है वह कहते हैं कि मैंने अबू अब्दुल्लाह (इमाम जाफर) से सुना वह कहते थे कि अगर लोगों को मालूम हो जाये कि बदा के मानने में कितना सवाब है तो कभी इसके मानने से न रूकें। (उसूले काफ़ी पृष्ठ ८४)

पाठकों को यह जानकारी हो गई कि बदा के शिया मानने वाले हैं और इसको सवाब का कार्य समझते हैं इसके अलावा बदा से ख़ुदा की जिहालत लाज़िम आती है जैसा कि ख़ुद शीई आलिम ने माना है इसके बावजूद शियों के हिसाब से ख़ुदा को बदा होता है और इसका अक़ीदा रखना सवाब का कार्य है।

(२) **ख़त्मे नबूवत से इंकार** : शिया ख़त्मे नबूवत का इस प्रकार इंकार करते हैं कि १२ इमामों को नबियों ही की तरह गुनाहों से निर्दोष और, हलाल व हराम कस ऐख़तियार देने वाला क़रार देते हैं। बल्कि यूं कहा जा सकता है कि शिया हुज़ूर अलैहिस्सलाम के बाद किसी के लिए नबी का शब्द तो प्रयोग नहीं करते मगर नबियों के तमाम अधिकारों और उनकी तमाम इम्तियाज़ी सिफ़ात और ख़ुसूसियात इमामों के लिए भी

साबित करते हैं इस प्रकार अमली तौर पर ख़त्मे नबूवत का इंकार लाज़िम आया चुनांचे शियों की पवित्र पुस्तक उसूले काफ़ी, पृष्ठ स० ११७ पर इमाम जाफ़र सादिक़ की रिवायत इस प्रकार है ।

ما جاء به علی اٰخذ به و ما نهیٰ عنه انتهی عنه جری له من الفضل ما جریٰ لمحمد و لمحمد الفضل علیٰ جمیع ما خلق الله عزوجل و المعتقب علیه فی شیء من احکامه کالمعتقب علی الله و علی رسوله والراد علیه فی صغیرة او کبیرة علی حد الشرك بالله۔ کان امیرالمومنین باب الله الذی لا یوتیٰ الا منه و سبیله الذی من سلك بغیره یهلك و کذالك یجری الائمة الهدیٰ واحد بعد واحد۔

तर्जुमा : जो कुछ अली ने करने का हुकम दिया उसी को मैं पकड़ता हूं और जिस चीज़ से उन्होंने रोक दिया है उससे रूक जाता हूं। अली को वही मकाम हासिल है जो मुहम्मद स० को हासिल है और मुहम्मद स० का अल्लाह की तमाम मख़लूक़ पर फ़ज़ीलत हासिल है और अली पर अहकाम में से किसी जीज़ के सिलसिले में टिप्पणी करने वाला खुदा और रसूल पर टिप्पणी करने वाले के जैसा है और किसी छोटी या बड़ी चीज़ या वस्तु के सिलसिले में उनकी बात को नकारने वाला शिर्क बिल्लाह तक पहुंच जाता है और अमीरूल मोमिनीन एक ऐसा दर्वाज़ा हैं कि कोई व्यक्ति खुदा तक उनकी सहायता लिए बिना पहुंच नहीं सकता और वह एक ऐसा मार्ग है कि इस मार्ग से हट कर चलने वाला नष्ट हो जायेगा और यही फ़ज़ीलत

तमाम इमामों को हासिल है।

इसी तरह उसूले काफ़ी के पृष्ट २७८ पर इमामों के सिलसिले में लिखा है :

هم یحلون ما یشاؤن و یحرمون ما یشاؤن و لن یشاؤا الا ان یشاء الله تبارك و تعالیٰ

तर्जुमा : वह जिस वस्तु को चाहते हैं हलाल करते और जिसको चाहते हैं हराम करते और वह किसी चीज़ को नहीं चाहते मगर उस्को अल्लाह भी चाहता है।

इन दोनों रिवायतों से प्रकट हो गया कि इमाम न केवल नबी बल्कि नबियों के सरदार हज़रत मुहम्मद स० के जैसे स्थान के मालिक हैं उनके बताये हुए अहकाम में शक और शुबा करने वाला व्यक्ति खुदा और रसूल के अहकाम में शक करने वाला गिना जायेगा। उनकी किसी बात का इंकार करना शिर्क है उनको हलाल और हराम का अधिकार प्राप्त है।

पाठकों क्या यह खत्मे नबूवत का इंकार नहीं है? और क्या इनहीं अक़ीदों के साथ उपने को हुजूर स० का मानने वाला करार दिया जा सकता है? जब हुजूर स० के बाद एक दो नहीं बल्कि १२ महान व्यक्तियाँ भी उनहीं जैसी हैं तो हुजूर स० की क्या ज़रूरत रह गई? और आपकी फज़ीलत की वजह क्या है?

(३) **तहरीफ़े कुरआन (कुरआन में हेरा फेरी)** : शियों का एक अक़ीदा तमाम इस्लामी कलिमा पढ़ने वालों के विरूद्ध यह भी है कि कुराअन मजीद में हेरा फेरी हुई है। शिया कुरआन मजीद में पांच प्रकार की हेरा फेरी होने को मानते हैं (क) यह कि कुरआन मजीद में जगह जगह शब्दों को बदल दिया गया (ख) यह कि जगह जगह आयतें और सूरतें निकाल

दी गईं (ग) यह कि जगह जगह पर शब्दों को दूसरे शब्दों से बदल दिया गया। (घ) जगह जगह लोगों ने अपने शब्दों को मिला दिया। (ड) कुरआन मजीद की तरतीब बदल दी गई। इन पाँचों प्रकार की हेरा फेरी का एतराफ़ शियों की पवित्र पुस्ताकों में मौजूद है हम यहां कुछ उदाहरण दे रहे हैं। शियों की पवित्र पुस्तक फ़सलुल ख़िताब पृष्ठ स० ३० में है :

قال السيد محدث الجزائرى فى الانوار ما معناه ان الاصحاب قد اطبقوا على صحة الأخبار المستفيضة بل المتواترة الدالة بصريحها على وقوع التحريف فى القرآن كلاماً و مادتا و اعراباً و التصديق بها

तर्जुमा : सय्यद मुहद्दिस जज़ायरी ने अंवार में कहा है जिसका अर्थ यह है कि हमारे तमाम साथी एकजुट हैं इन रवायतों के सच होने पर और उनकी तस्दीक़ पर जो मुस्तफ़ीज़ बल्कि मुतवाति हैं और साफ साफ दलालत करने वाली हैं तहरीफे कुरआन पर कलाम और माद्दा और ऐराब के एतबार से।

इस कथन से यह मालूम हुआ कि तमाम शिया कुरआन में हेरा फेरी को मानते हैं और इसमें किसी किस्म का इंकार नहीं करते। इसी तरह तफ़सीरे साफ़ी में इमाम बाकर की जुबानी कुरआन में कमी बेशी को बयान किया गया है चुनांचे उन्होंने कहा :

لو لا انه زيد فى القرآن و نقص ما اخفى حقنا على ذى حجىٰ

तर्जुमा : अगर कुरआन मजीद में कमी और ज़्यादती न हुई होती तो किसी बुद्धिमान पर हमारा हक छिपा न रहता।

अब कुरआन में तहरीफ़ यानी बदले जाने का नमूना देखिए। उसूले काफ़ी में एक पूर्ण पाठ है **''बाबुन फ़ीहि नकतुन व नतफुन मिनत्तंज़ीलि फिल विलायति''** के उनवान से है इसी बाब में एक रिवायत है :

عن محمد بن سليمان عن ابى عبدالله عليه السلام فى قوله سأل سائل بعذاب واقع للكافرين لولاية على ليس له دافع ثم قال هكذا والله نزل بها جبريل علىٰ محمد صلى الله عليه و اله

तर्जुमा : मुहम्मद बिन सुलेमान इमाम अब्दुल्लाह जाफर सादिक अलैहिस्सलाम से अल्लाह के कौल स अ ल साइलुन को इस तरह बयान करते हैं **स अ ल साइलुन बि अज़ाबिन वाकिअिन लिल काफ़िरी न लि विलायति अलीयिन लैस लहू दाफ़िउन** फिर कहा कि खुदा की क़सम इस आयत को इसी प्रकार जिब्रईल अमीन ने मुहम्मद स० पर उतारा।

गोया कि मौजूदा कुरआन मजीद सें लिविलायति अली का शब्द ग़ायब कर दिया गया है।

इसी तरह अलग अलग रिवायात हैं जिन से कुरआन मजीद में कमी और ज़्यादती सातिब होती है। इस संदर्भ में मेरा मज़मून अल बद्र जुलाई १९७७ के अंक में प्रकाशित हो चुका है और आने वाले दिनों में भी इंशाअल्लाह ज़रूर लिखूंगा। यहां पर मैं इतना ही अधिक समझ रहा हूं।

इन बातों से यह बात सामने आती है कि शिया कुरआन मजीद को मुकम्मल नहीं समझते हैं बल्कि इसमें तहरीफ़ यानी तबदीली को मानते हैं जिसकी वजह से कुरआन मजीद एतबार के क़ाबिल नहीं रहा। نعوذ بالله من هذه الضلالة الفاحشة۔

(४) **तक़िय्या :** शिया धर्म में तक़िय्या यानी झूठ बोलना अधिक से अधिक सवाब का कार्य है और बगैर तक़िय्या के शिया धर्म मुकम्मल नहीं हो सकता चुनांचे उसूले काफ़ी पृष्ठ सं० ४८१ में है :

عن ابی عمیر الاعجمی قال قال ابوعبدالله علیه السلام یا ابا عمیر ان تسعة اعشار الدین فی التقیة و لا دین لمن لا تقیة له و التقیة فی کل شیء الا فی النبیذ و المسح علی الخفین۔

तर्जुमा : इब्न अबी उमेर अजमी से रिवायत है कि उन्होंने कहा कि मुझसे इमाम जाफ़र सादिक़ ने कहा कि धर्म के दस में से नो भाग तक़िय्ये में हैं और जो तक़िय्या न करे उसका दीन धर्म से कोई ताल्लुक़ नहीं है और तक़िय्या नबीज़ और मौज़ों पर मसह के अलावा हर चीज़ में है।

इस रिवायत से पाठकों को यह अंदाज़ा हो गया होगा कि शिया धर्म में तक़िय्या की किस कद्र अहमियत है कि दीन के ९/१० भाग तक़िय्या ही है और उस व्यक्ति का दीन धर्म से कोई ताल्लुक़ नहीं जो तक़िय्या न करे। अब बात यह रह जाती है कि तक़िय्या झूठ ही है या किसी दूसरी चीज़ को कहते हैं इसकी वज़ाहत के लिए उसूले काफ़ी पृष्ठ स० ४८३ की यह रिवायत पढ़िये :

عن ابی بصیر قال قال ابوعبدالله علیه السلام التقیة من دین الله قلت من دین الله قال ای و الله من دین الله و لقد قال یوسف ایتها العیر انکم لسارقون و الله ما کانوا سرقوا شیئاً و لقد قال ابراهیم انی سقیم و الله ما کان سقیماً

तर्जुमा : अबू बसीर से रिवायत है कि इमाम जाफ़र

सादिक़ ने कहा कि तक़िय्या अल्लाह के धर्म में से है मैंने कहा कि अल्लाह के धर्म में से है? इमाम ने कहा हां खुदा की क़सम अल्लाह के धर्म में से है और बिला शुबा यूसुफ़ अलैहिस्सलाम ने कहा था ऐ काफले वालो! तुम चोर हो हालांकि ख़ुदा की क़सम उन्होंने कुछ भी नहीं चुराया था और इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने कहा था कि मैं बीमार हूं हालांकि वह ख़ुदा की क़सम बीमार नहीं थे।

इस रिवायत से यह बात सामने आ गई कि तक़िय्या झूठ ही का दूसरा नाम है क्योंकि जब तकिय्या यानी झूठ को बयान करने वाले ने ख़ुदाई धर्म में दाख़िल करने में अपने शक को ज़ाहिर किया तो इमाम ने इसका उदाहरण नबियों के कार्य से दिया कि देखो यूसुफ़ अ० ने काफ़ले वालों को चोर कहा था और इब्राहीम अ० ने अपनेको बीमार जाहिर किया था हालांकि न काफेले वालों ने चोरी की थी और न ही इब्राहीम अ० बीमार थे। मालूम हुआ कि इन दोनों ने तकिय्या किया था इसी तहर हम भी तक़िय्या कर सकते हैं।

देखा आपने ने हिम्मत? इसी को कहते हैं चोरी ऊपर से सीना ज़ोरी कि ख़ुद ही झूठ नहीं बोलते बल्कि नऊज़ुबिल्लाह नबियों को भी झूठा साबित करने पर तुले हुए हैं।

(५) **मुतआ** : शिया धर्म में इसकी भी इजाज़त है कि महिला और पुरूष ख़ुश दिली और रज़ामंदी के साथ कुछ समय के लिए निकाह कर लें इसमें कोई हरज नहीं उस समय के अन्दर अन्दर वह दोना पति पत्नी रहेंगे। समय का कोई बंधन भी नहीं मसलन अगर कोई व्यक्ति चाहे तो एक घण्टा के लिए भी मुतआ कर सकता है इस पर कोई ग्वाही की ज़रूरत नहीं है। इस हराम कार्य की शिया धर्म में न केव इजाज़त है बल्कि

यहां तक फ़ज़ीलत और अहमियत है कि मुतआ करने वाले महिला और पुरूष को उनकी हर हर हरकत पर सवाब मिलता है। मुतआ के बाद पाकी हासिल करने के लिए नहाये तो उस गुस्ल के पानी के हर हर बूंद से फ़रिश्ते पैदा होते हैं जो क़यामत तक यह सवाब के कार्य के करने वालों के लिए दुआ करते हैं यहां तक कि एक बार मुतआ करने से इमाम हुसैन रज़ि० का दो बार करने से इमाम हसन रज़ि० का तीन बार मुतआ करने से हज़रत अली रज़ि० का और चार बार मुतआ करने से हुजूर स० का स्थान मिलता है।

मुतआ की एक बहुत ही गंदी क़िस्म ''**मुताऐ दौरिया**'' भी है जिसकी सूरत यह है कि एक महिला के साथ अनेक पुरूष एक ही समय हमबिस्तर हों। इसके लिए काज़ी नूरूल्लाह शोस्त्री अपनी पुस्तक '''**मसाइबुन नवासिब**'' में लिखत हैं :

ما نسبه الى اصحابنا من انهم جوزوا ان يتمتع الرجال المتعدددون ليلة واحدة من امرأة سواء كانت من ذوات الاقراء ام لا فمما خان فى بعض قيوده و ذالك لأن الأصحاب قد خصوا ذالك بالآئسة لا بما يعم بالآئسة و غيرها من ذوات الاقراء

तर्जुमा : यह जो हमारे साथियों की ओर मंसूस किया गया है कि वह इस बात को सही कहते हैं कि अनेक व्यक्ति एक रात्रि में एक महिला से मुतआ कर सकते हैं चाहे उस महिला को हैज़ यानी माहवारी आता हो या नहीं इसमें खयानत की वजहसे कुछ बंधनों को हटा दिया गया है क्यांकि हमारे साथियों ने मुतआ दौरिया उस महिला के साथ खास किया है जिसको हैज़ न आता हो, न यह कि जिसके साथ चाहे यह मुतआ करे चाहे

उसे हैज़ आता हो या न आता हो।

पाठको! सोचये कि शियों के शहीद सालिस और इमामे ज़मां ने मुतआ दौरिया का इंकार नहीं किया है बस उनको इस कद्र एतराज़ है कि हमारे धर्म में मुतआ दौरिया यह केवल उसी महिला से हो सकता है जिसको हैज़ न आता हो और कहने वाले ने यह कैद यानी दफा हटा दी वर्ना मुतआ दौरिया तो एक नेक और अच्छा कार्य है ही।

उर्पयुक्त यह पांचों अक़ीदे शियों के सिर्फ इस लिए बयान किये गये कि पाठकों को यह मालूम हो जाये कि अहले सुन्नत और शिया के दरमयान मालूमली एख़तेलाफ़ नहीं है कि उसे दूर करके सबको मुसलमान आंका जाये बल्कि शीईयत इस्लाम के विरूद्ध एक साज़िश है जिसने इस्लामी चोग़ा ओढ़ कर इस्लाम को हमेशा नुक़्सान पहुंचाने की कोशिश की और आज भी अंजान मुसलमान शियों को मुसलमानों ही का एक गिरोह समझते हैं। आप ख़ुद ही फैसला कीजिए कि ख़ुदा को नऊजुबिल्लाह जाहिल कहने वाला खत्मे नबुव्वत का इंकार करने वाला और कुरआन में तबदीली को सही कहने वाला और फिर झूठ और ज़िना (मुतआ) जैसी बेहूदा चीज़ों को इबादत में गिनने वाला भी क्या मुसलमान हो सकता है।

कुरआन और शियों का अक़ीदा तहरीफ़े कुरआन

शियों ने अपने अक़ीदा तहरीफ़े कुरआन को यूं तो सदा छिपाया, उनके अधिकतम लोग तो इसका ज्ञान भी नहीं रखते हैं कि वह फेर बदल वाले कुअरान के मानने वाले हैं लेकिन उनके धर्मगुरू जानते हुए भी अपने इस अक़ीदे का इंकार करते रहे हैं और जब उनके सामने कभी उनके धर्म की ऐसी रिवायतें पेश की गईं जिनसे तहरीफ़े कुरआन का ज्ञान प्राप्त होता है तो उन्होंने उत्तर में अहले सुन्नत वल जमाअत की नस्ख़े तिलावत या नस्ख़े हुकम वाली रिवायात पेश करके यह कह दिया कि जो उत्तर तुम्हारा था वह हमारा।

इस स्थान पर हम इस बहस को ज़्यादा न छेड़ते हुए केवल इसी पर काफ़ी समझते हैं कि तहरीफ़ और नस्ख़ दोनो को एक प्रकार की वस्तु क़रार दे देना या तो जिहालत के कारण हो सकता है या जान बूझ कर धोखा देना हो सकता है।

इसकी तफ़सील यह है कि नस्ख का ताल्लुक़ ख़ुद ख़ुदा से है कि जब तक उन्होंने चाहा किसी आयत को बाक़ी रखा और जब चाहा हुकम दे दिया कि इसकी तिलावत अब ख़त्म कर दी गइ्र है अलबत्ता इसका हुकम बाक़ी रहेगा और जब चाहा तिलावत और हुकम दोनों को मंसूख़ कर दिया। कुरआन उतारने वाले को कुरआन में हर तरह की तबदीली करने का

इख़्तियार होना फ़ितरी है जिस तहर किसी भी प्रवक्ता को अपनी बात को बदलने का हक हासिल होता है। इसी तरमीम और तबदील का नाम नस्ख़ है। और यह नस्ख़ का कार्य क़तई तौर पर अंतिम नबी हुजूर स० की जिन्दगी में ही मुकम्मल हो गया। हुजूर स० के बताने ही से मालूम हुआ कि यह कुरआन है फिर हुजूर स० के बताने ही से यह मालूम हो गया कि अब इतना हिस्सा यानी भाग मंसूख़ हो गया। हुजूर अ० के बाद अहले सुन्नत व जमाअत के अक़ीदे के अनुसार हक़ीक़ी तौर पर किसी भी बड़े से बड़े व्यक्ति को यह अधिकार नहीं कि कुरआन के किसी शब्द या किसी बिंदी को किसी तबदीली या तरमीम या ख़त्म की बात ज़बान पर लाये। यह तो हुई नस्ख़ की हक़ीक़त।

इसके मुक़ाबले में तहरीफ़ है जिसका ताल्लुक़ मुकम्मल तौर से बन्दों से है कि मनुष्य कुरआन में अपनी पसन्द और मर्ज़ी के मुताबिक़ तबदीलियां कर दें और हस्बे ज़रूरत कमी और ज़्यादती कर दे।

अहले सुन्नत वल जमाअत का अक़ीदा यह है कि कुरआन में तहरीफ़ की कोई गुंजाइश नहीं है। तहरीफ़ करना भी चाहे तो नहीं कर सकता क्योंकि खुदा ने ख़ुद इसकी हिफ़ाज़त की जिम्मेदारी यह कह कर ली है :

﴿انا نحن نزلنا الذكر و انا له لحافظون﴾

तर्जुमा : बेशक हम ही ने कुरआन को उतारा है और हम ही इसकी हिफ़ाज़त के जिम्मेदार हैं।

इंसानों की काट छाँट का कुरआन पर न कोई असर पड़ सकता और नहीं इस प्रकार की इस की कोई कोशिश कामयाब हो सकती है। ख़ुदा ने ख़ुद कहा है :

﴿انه لكتاب عزيز لا ياتيه الباطل من بين يديه و لا من

خلفه تنزيل من حكيم حميد۔

तर्जुमा : बेशक यह एक बुलन्द मर्तबा वाली किताब है। बातिल न उसके सामने से पास आ सकता है न पीछे से यह हिकमत वाली लायक़े तारीफ़ ज़ात की ओर से उतारा हुआ है। (कुरआन)

अहले सुन्नत वल जमाअत के इस अक़ीदे के मुक़ाबले में शियों का यह अक़ीदा है कि कुरआन में तहरीफ न सिर्फ हो सकती है बल्कि हो भी चुकी। यह तहरीफ़ इस बड़े पैमाने पर और इस तरह मंसूबा बंद अंदाज़ में हुई कि पूरा कुरआन मजीद नअूज़ुबिल्लाह ख़ुर्द बुर्द हो कर रह गया और अब कुरआन के किसी भी भाग को पूरे यकीन के साथ कुरआन नहीं कहा जा सकता।

यह अलग बात रही कि शिया इस तहरीफ़ के लिए अपने ख़्याली अक़ीदे के मुताबिक़ खुलफ़ा–ए–सलासा (हज़रत अबू बक्र रज़ि०, हज़रत उमर रज़ि०, हज़रत उस्मान रज़ि०) को जिम्मेदार करार देते हैं लेकिन यहां तो केवल इसको बताना है कि शियों के अकीदे के मुताबिक़ कुरआन मजीद में तबदीली हुई है और मौजूदा कुरआन एतबार करने के काबिल नहीं है।

यह तो हुआ शियों का वह अक़ीदा जिसका सुबूत उस धर्म की पवित्र पुस्तकों से दिया जा सकता है और अब तक अनेक शिया धर्म गुरूओं ने इसका इकरार किया है और न सिर्फ़ इकरार बल्कि इस इकरार की दलील और उसके साथ साथ यहां तक कहा कि यह कुरआन तो कुछ अरब के जाहिलों का जमा किया हुआ है।

लेकिन इधर कुछ वर्षों से शिया धर्मगुरूओं की पालीसी में तबदीली नजर आ रही है और वह नस्ख़ की रिवायात तहरीफ़ की दलील पेश करने के बजाए तहरीफ ही का इंकार करने

लगे और यह बात मनवाने की कोशिश कर रहे हैं कि कुरआन में तबदीली का शियों पर गोया बोहतान बांधा जाता है वर्ना हक़ीक़त यह है कि शिया भी अहले सुन्नत व जमाअत ही की तरह मौजूदा कुरआन को मुकम्मल और ख़ुदा की अंतिम पुस्तक मानते हैं और इसी का अकीदा भी रखते हैं।

इस संदर्भ की एक और कोशिश माज़ी क़रीब में दिल्ली में सम्पन्न होने वाली कुरआन कांफ्रेन्स में डा० बदरूल हसन आबदी की जानिब से हुई है जहां उन्होंने कुरआन मजीद पर अपना निबन्ध पेश करते हुए बड़ी धूम धाम और बहुत ही ज़ोर से ऐलान किया था कि शियों पर तहरीफ़े कुरआन का अकीदा रखने का इल्ज़ाम गलत है। यह शिया दुश्मनों का प्रोपेगण्डा है हक़ीक़त यह है कि शिया कुरआन को वही पुस्तक मानते हैं जो मुहम्मद स० पर उतरी।

और अब इसी संदर्भ की एक और कोशिश एक शिया धर्मगुरू की ओर से सामने आई है कि शीई आर्गन मासिक प्रत्रिका अल वाइज़ लखनऊ के स० ६ से एक मज़मून कुरआन और हमारा अक़ीदा'' के नाम से शुरू हुआ है मज़मून के लेखक मदरसतुल वाइज़ीन के प्रिन्सपल मौलाना स० वसी मुहम्मद साहब हैं। मज़ूमन के आख़िर में जो लिखा हुआ है उससे अंदाज़ा होता है कि ''शाख़साना–ए–तहरीफ़'' के नाम से मज़मून निगार साहब की कोई मुस्तकिल पुस्तक है।

इस लेख का खुलासा यही होता है कि शिया कुरआन में किसी किस्म की तहरीफ़ को मानने वाले नहीं हैं जैसा कि खुलासा–ए–बहस के तौर पर मज़मून निगार साहब का इस मज़मून की आख़री सतरों में बयान है कि

''इमामिया हज़रात के धर्म के इमाम जो दुआओं में एक शब्द के अपनी तरफ से बढ़ाने पर राज़ी नहीं हैं वह किसी एक

शब्द के लिए भी नमाज़ों में आयात के घटाव बढ़ाव पर कैसे राज़ी हो सकते थे। यह और बात है कि कुछ लेखकों ने जो कभी कभार तहरीफ़ को लिखा है मगर इसका कोई कारण होगा।

और आगे चल कर मज़मून निगार ने इन रिवायात की हैसियत का विस्तार करते हुए लिखा है

''पहले के धर्मगुरूओं ने इन रिवायात को उसूले दिरायत पर परखने के बाद मौजू (जाली) क़रार दिया है''।

जहां तक हमारा मामला है तो हमारी दिली ख़्वाहिश यह है कि मोमिनीन बिल कुरआन की तादाद ज़्यादा से ज़्यादा हो जाये लेकिन चूंकि शियों के बयानात में बहुत ज़्यादा टकराव हो गया है इस लिए निम्न मामलों का विस्तार ज़रूर कर दिया जाये तो हमको यह यकीन करने में किसी तरह की परेशानी नहीं होगी कि मौजूदा शियों का कुरआन पर ईमान है और वह तहरीफ़े कुरआन को नहीं मानते हैं और इस सिलसिले में मज़मून निगार साहब की वकालत भी काबिले एतबार होगी वर्ना नहीं।

(१) उसूले काफ़ी जो आपके धर्म की बहुत ही पवित्र पुस्तक है और जिसके लेखक मुहम्मद बिन याकूब कलीनी केवल एक वास्ते से आपके ११वीं इमाम मासून हसन असकरी के चेले हैं।

जिस पुस्तक की यह हैसियत और अहमियत है कि उसके लेखक ने इसको सफ़ीरों के द्वारा इमाम गायब के पास गार सुर्रा मन रआ में इस कारण भेजा कि वह उसके देखने के बाद अपनी राय दें तो इमाम गायब ने न केवल इस पुस्तक को सही माना बल्कि कहा :

هذا كاف لشيعتنا (यह पुस्तक हमारे शियों के लिए

काफ़ी है) और इसी लिए इस पुस्तक का नाम काफ़ी रखा गया।

इस पुस्तक के अन्दर एक पाठ इस तरह (बाब इस बयान में कि पूरा कुरआन इमामों के अलावा किसी ने भी जमा नहीं किया) और इस बाब के ज़ैल में इस किसम की रिवायतें पेश की गई हैं कि पूरा कुरआन इमामों से अलावा न किसी ने जमा किया और न ही किसी के पास मौजूद है।

यह बात हमारी और आपकी दोनों की मानी हुई बात है कि मौजूदा कुरआन जो हमारे सीनों और सफ़ीनों में मौजूद है वह इमामों का जमा किया हुआ नहीं है फिर क्या यह पूरा कुरआन है? अगर है तो उसूले काफी जैसी मोतबर पवित्र पुस्तक के इस पाठ और उसके ज़ैल में दी गई रिवायात का क्या होगा क्या यह सब मौजू हैं, और याकूब कलीनी का बाब बांधना कैसा होगा, अगर आप यह कहें कि हां यह इमामों का जमा किया हुआ कुरआन नहीं है इस लिए मुकम्मल और क़ाबिले ऐतबार नहीं है तो फिर आप तहरीफ़ के मानने वाले हुए? इसी पुस्तक काफ़ी में एक बाब **''बाबुन फ़ीहि नुकतन व नतफुन मिनत तंज़ीलि फ़िल विलायति''** (बाब इस बयान में कि इमामत के मुताल्लिक़ कुरआन मजीद में काट छांट कर दी गई)

बाब के उनवान को देखिऐ कि क्या कुरआन मजीद में काट छांट का वही मानने वाला हो सकता है जो कुरआन को मुकम्मल और क़ाबिले एतमाद समझता हो?

ऐसा नहीं कि केवल बाब कायम करने पर इकतेफ़ा किया गया हो और इस में रिवायात दूसरे अर्थों का भी पेश की गई हों कि किसी क़िसम की तावील की गुंजाइश हो बल्कि इस बाब के ज़ैल में इसी किसम की रिवायतें भी पेश की गई है जिनसे यह पता चलता है कि उस कुरआन में जो हुजूर स० पर

अल्लाह की ओर से उतरा था और मौजूदा करआन में बहुत अन्तर है इसी लिए नमूने के लिए इस बाब की केवल दो रिवायतें लिखी जा रहीं हैं :

عن ابی بصیر عن ابی عبداللہ علیہ السلام فی قول اللہ عزوجل و من یطع اللہ و رسولہ فی ولایۃ علی فقد فاز فوزاً عظیما۔ ھکذا نزلت۔

तर्जुमा : अबू बसीर इमाम जाफ़र सादिक़ से रिवायत करते हैं कि अल्लाह का कौल **(व मयं युतिइल्ला हा व रसू लहु फ़ी विलायति अली फ कद फा ज़ फ़ौज़न अज़ीमा)** इस तरह उतरा था।

जबकि मौजूदा कुरआन में फी विलायति अली के शब्द नहीं हैं।

अब आप ही बताइये कि आप क्या कहते हैं साहिबे काफ़ी ने तो साफ़ तहरीफ़ की बात कही है क्या आपको उनकी राय से इत्तेफ़ाक़ है?

इसी पुस्तक काफ़ी के इस बाब की एक और रिवायत जो मज़कूरा बाला रिवायत से भी ज़्यादा साफ और लाभदायक है पढ़िये :

قول اللہ عزوجل کبر علی المشرکین بولایۃ علی ما تدعوھم الیہ یا محمد من ولایۃ علی۔ ھکذا فی الکتاب مخطوطۃ۔

तर्जुमा : अल्लाह का कौल **(कबु र अलल मुशरिकी न बि विलायति अली मा तदऊहुम इलैह या मुहम्मद मिन विलायति अली)** इसी तरह कुरआन में लिखा हुआ है।

मौजूदा कुरआन मजीद में लकीर वाले शब्द नहीं हैं यानी आयते कुरआनी सिर्फ इस तरह है **कबु र अलल मुशरिकी न मा तदऊहुम इलैह** जबकि ऊपर वाली रिवायत से जो शियों के इमाम मासून रज़ा से मंकूल है यह है कि यह शब्द न सिर्फ़ उतरे बल्कि कुरआन में लिखे हुए मौजूद भी हैं।

अब आप ही बताइये कि वह कुरआन कौन सा है जिसमें इस आयत के अन्दर लकीर खींचे हुए शब्द भी मौजूद हों क्या वह जो आपके इमामों के पास एक एक करके रहा, बहर हाल कोई भी हो वह यह कुरआन तो नहीं है जो हमारे पास मौजूद है और सारी दुनिया के मुसलमान उसे अपने सीनों से लगाये हुए हैं। फिर यह भी बता दीजिये कि जब इस कुरआन में यह शब्द नहीं हैं तो क्या इसमें तबदीली नहीं हुई या यह कि उसूले काफ़ी का यह पूरा बाब और इस बाब के अन्तरगत लिखी हुई तमाम बातें बेकार हैं।

(३) आपने बड़ी आसानी से कह दिया है कि यह और बात है कि कुछ दूसरे लेखकों ने जो बहुत कम हैं कुछ तबदील की हुई रिवायात लिख दी हैं। मगर इसमें कोई कारण तो होगा ही?

फिर आगे चल कर इन कुछ रिवायतों को भी आपने यह लिखकर बेकार क़रार दे दिया कि

''पहले के धर्मगुरूओं ने इन रिवायात को उसूले दिरायत पर परखने के बाद मौजू कहा है''।

यह आपका बयान है जो हम को सही और स्टीक नहीं लगता क्योंकि न तो तबदीली पर दलालत करने वाली बाज़ रिवायात हैं बल्कि उनकी बहुत बड़ी संख्या यही नहीं बल्कि खुद आपके धर्मगुरूओं के बयान के मुताबिक तबदीली पर दलालत करने वाली रिवायत हद्दे तवातुर तक पहुंची हुई हैं। और उनकी तादाद इमामत की रिवायतों की तादाद से कम नहीं है। बाज़ रिवायात कह कर गुज़रने से काम नहीं बनेगा।

दूसरी बात यह है कि पूर्व के धर्मगुरूओं ने रिवायाते तहरीफ़ को मौजू कहा है यह भी ठीक नहीं है क्योंकि हम यह देखते हैं कि धर्मगुरूओं ने इससे दलील लिया है और उनके मानने पर ज़ोर दिया है और शक करने वालों पर नकीर की है। अब हमारे दोनों दावों की दलीलें पढ़ये :

कुरआन की तबदीली पर दलालत करने वाली रिवायत किस तादाद में और किस हैसियत की हैं इसको विस्तार से जानने के लिए उसी पुस्तक ''फस्लुल खिताब'' को खालिए जिस पुस्तक के बारे में आपने लिखा है कि :

अल्लामा नूरी के चेले हुज्जतुल इस्लाम बुजुर्ग तेहरानी ने लिखा है कि फ़सलुल ख़िताब के बारे में गुरू से बार बार सुना है कि इस पुस्तक में जो मतालिब बयान हुए हैं वह मेरा अपना अकीदा नहीं हैं मैंने यह पुस्तक बहस और बात चीत के लिए लिखी है।''

यह आपने अल्लामा नूरी के एक चेले का बिना दलील कथन लिखा है। अब आप खुद अल्लामा नूरी की पुस्तक फसलुल खिताब प्रकाशित ईरान का स० २११ खोलिए और उनका यह बयान पढ़ये :

الاخبار الكثيرة المعتبرة الصريحة فی وقوع السقط و دخول النقصان فی الموجود من القرآن زيادة علی ما مر فی ضمن الادلة السابقة و انه اقل من تمام ما نزل اعجازا علی قلب سيد الانس والجان من غير اختصاصها بآية او سورة و هی متفرقة فی الكتاب المتفرقة التی عليها المعول عند الاصحاب جمعت ما عثرت عليها فی هذا الباب۔

तर्जुमा : बहुत सी ऐसी रिवायतें हैं जो मौजूदा

कुरआन में कमी होने और नुक़्सान के आने पर विस्तार के साथ दलालत करती हैं इन रिवायात के अलावा जो पहले दलीलों के लिए बयान हो चुकीं। यह रिवायात इस बात पर भी दलालत करती है कि यह मौजूदा कुरआन उस कुरआन से कम है जो हुजूर स० के दिल पर उतरा था और यह कमी किसी आयत या किसी सूरत के साथ ख़ास नहीं है और यह हदीसें उन अन्य अलग अलग पुस्तकों में फैली हुई हैं जिन पर हमारे धर्मगुरूओं का ऐतमाद और उनकी ओर रूजू है। मैंने इस बाब की बिखरी हुई हदीसों को जमा कर दिया है।

देखिए किस विस्तार के साथ अल्लामा नूरी कह रहे हैं कि मौजूदा कुरआन को नाकिस कहने वाली रिवायात बहुत हैं और वह हमारे धर्म की काबिले एतमाद और अच्छी पुस्तकों में बिखरी हुई है। उनहीं बिखरी हुई रिवायात को मैंने जमा कर दिया है। इस बयान से क्या मालूम होता है? यह कि तबदीली पर दलालत करने वाली चंद रिवायात हैं या बहुत? और अल्लाम नूरी ने इन रिवायात को क्यों जमा किया? क्या वाकई बहस के लिए?

इसी पुस्तक फ़स्लुल ख़िताब का स० २२७ खोलिए और मोहद्दिस जज़ायरी का यह बयान पढ़ये और फिर बताइये कि कुरआन की तबदीली पर दलालत करने वाली रिवायात थोड़ी हैं या मामला कुछ और है? और इन रिवायात को कैसे कैसे विद्वान धर्मगुरूओं की हिमायत हासिल है?

قال السيد نعمت الله الجزائری فی بعض مؤلفاته كما حكی عنه ان الاخبار الدالة علی ذالك تزيد علی الفی حديث و ادعیٰ استفاضتها جماعة كالمفيد و

المحقق الداماد والعلامة المجلسی و غیرهم بل الشیخ ایضاً صرح فی تبیان بکثرتها بل ادعیٰ تواترها جماعة یاتی ذکرهم۔

तर्जुमा : सय्यद नियमतुल्लाह जज़ायरी ने अपनी कुछ पुस्तकों में लिखा है जैसा कि उनसे मंकूल है कि जो हदीसें तहरीफ़ पर दलालत करने वाली हैं उनकी तादाद २००० से ज़्यादा है और एक गुट ने उनके मुस्तफ़ीज़ होने का दावा किया है। जैसे मुफीद, मोहक़्क़िक़ दामाद और अल्लामा मजलिसी वगैरहुम बल्कि शैख़ ने तिबयान में विस्तार से लिखा है कि यह रिवायात बहुत हैं बल्कि एक गुट ने तो इन रिवायात के मुतवातिर होने का दावा किया है जिनका ज़िक्र बाद में आयेगा।

अब इसी पुस्तक का स० ३० खोलिए और देखिये कि जिन रिवायात के बारे में आपका कहना है कि पूर्व के धर्मगुरूओं ने इन रिवायात को उसूले दिरायत पर परखने के पश्चात मौज़ू क़रार दिया है। इन रिवायात के सिलसिले में मोहद्दिस जज़ायरी क्या कहते हैं? और फिर फ़ैसला कीजिए कि कौन ज़्यादा अच्छा और मानने के क़ाबिल है आप या मोहद्दिस जज़ायरी?

قال السید المحدث الجزائری فی الانوار ما معناه ان الاصحاب قد اطبقوا علیٰ صحة الاخبار المستفیضة بل المتواترة الدالة بصریحها علی وقوع التحریف کلاما و مادتاً و اعراباً و التصدیق بها۔

तर्जुमा : मोहद्दिस जज़ायरी ने अनवार में कहा है जिसका अर्थ यह है कि असहाबे इमामिया ने इन रिवायाते मुस्तफ़ीज़ा बल्कि मुतवातिरा के सही होने

पर इत्तेफ़ाक़ किया है जो मुकम्मल तौर पर कुरआन की तबदीली पर दलालत करने वाली हैं बात के एतबार से भी माद्दे के एतबार से भी और ऐराब के ऐतबार से भी। (तीनों क़िस्म की तबदीली) और इत्तेफ़ाक़ किया है इन रिवायतों की सच्चाई पर।

यह तीन रिवायतें हमारे दोनों दावों की दलील के लिए काफ़ी हैं पहला यह कि लेखक साहब का तहरीफ़ की रिवायात की तादाद कम करके बयान करना ठीक नहीं है बल्कि शिया धर्म में ऐसी रिवायतें जो तहरीफ़ पर दलालत करती हों उनकी तादाद २००० से भी ज़्यादा है और यह रिवायतें मस्लऐ इमामत की रिवायातों से कम नहीं हैं। दूसरा यह कि लेखक साहब का यह कहना कि पूर्व के धर्मगुरूओं ने इन रिवायात को मौज़ू कहा है यह भी गलत है। बल्कि सही यह है कि आपके पहले के धर्मगुरूओं ने इन रिवायात को मुस्तफ़ीज़ बल्कि मुतवातिर कहा है और उनकी सच्चाई पर इत्तेफ़ाक़ किया है।

(४) आपने इस बात पर पूरा ज़ोर दिया कि शिया तहरीफ़े कुरआन के मानने वाले नहीं हैं और मौजूदा कुरआन को मुकम्मल और अंतिम मानते हैं। अगर हक़ीक़त में आपका यह अक़ीदा है तो आप बताइये कि

जिन लोगों का अक़ीदा इसके ख़िलाफ़ साबित हो जाये यानी जिनके बारे में यह मालूम हो जाये कि यह तहरीफ़े कुरआन के मानने वाले हैं उनकी तकफ़ीर में और इस्लाम से निकला हुआ क़रार देने में आपको कोई परेशानी तो नहीं होगी?

(५) हमने आपके सामने आपकी अच्छी और मुस्तनद मज़हबी पुस्तकों से आपके मासूम इमामों की ऐसे अनेक रिवायतें पेश कीं जिनसे मालूम होता है कि आपके इमाम तहरीफ़े

कुरआन के मानने वाले थे आप अपनी ही मज़हबी पुस्तकों से ऐसी कुछ रिवायतें अपने मासूम इमामों की पेश कर दीजिए जो इसके ख़िलाफ़ हों और जिनसे यह साबित हो जाये कि आपके इमाम मौजूदा कुरआन को बिल्कुल सही और बिना तबदीली के सच मानते हैं जो हुजूर स० पर उतरा था और जिसकी हिफाज़त की ज़िम्मेदारी ख़ुदा ने खुद ली है।

(६) यह बात आपके धर्म में से है जिसके ख़िलाफ़ कोई एक रिवायत भी नहीं पेश की जा सकती कि यह मौजूदा कुरआन तीनों खलीफों का जमा किया हुआ है और तीनों ख़लीफ़ों के सिलसिलें में आपका जो अक़ीदा है वह खुद आपको भी मालूम होगा? —— फिर भला इन लोगों का जमा किये हुऐ कुरआन में तहरीफ न होने पर आपको कैसे ऐतबार आया जबकि इस सिलसिले में आपके मासूम इमामों की कोई तस्दीक भी नहीं है?

उर्पयुक्त कथन का विस्तार कर दिया जाऐ तो अहले सुन्नत के किसी व्यक्ति को यह मानने से इंकार न होगा कि शियों का मौजूदा कुरआन पर ईमान है और वह उसे गैर मुर्रिफ मानते हैं वर्ना ब सूरते दिगर .... ?

सम्पादक अल बद्र का एक मज़मून अल बद्र के अंक नवमबर १९८३ में प्रकाशित हुआ था जो असल में शिया पत्रिका अल वाइज़ के सितमबर १९८३ के अंक में प्रकाशित शिया धर्मगुरू मौलाना वसी मुहम्मद साहब के मज़मून **''कुरआन और हमारा अक़ीदा''** के जवाब की हैसियत रखता था। मौलाना का अपने मज़मून में यह कहना था कि मौजूदा कुरआन पर शियों का ईमान है और वह उसे मुकम्मल मानते और समझते हैं और इसी पर अकीदा है। साथ ही अपनी पुस्तकों में मौजूद तहरीफ़े

कुरआन की रिवायात के सिलसिले में उन्होंने लिखा था कि :

यह और बात है कि कुछ लिखने वाले है जिन्होंने यह लिखा है मगर इसमें कोइ कारण होगा।

मौलाना ने यह भी दावा किया था कि पहले के धर्मगुरूओं ने इन रिवायात को उसूल पर परखने के बाद मौजू कहा है।

मैंने अपने मज़मून में इन दोनों दावों को गलत साबित करते हुए शिया पुस्तकों और शिया धर्मगुरूओं की बातों से यह बात पेश किया था कि यह कुरआन की तबदीली के सिलसिले में अन्य मोअल्लिफ़ीन जो बहुत कम हैं के कुछ रिवायात को नक़ल कर देने का मामला नहीं है बल्कि शिया धर्मगुरूओं के कथानुसार ऐसी रिवायत की तादाद २००० से ज़्यादा है और उनकी हैसियत इमामत के मसले की रिवायतों से किसी तरह कम नहीं है और अगर इतनी बड़ी तादाद में मौजूद रिवायात को रद्द किया जा सकता है तो फिर इमामत के मसले का सुबूत भी रिवायात से नहीं हो सकता जो शिया धर्म के बुनियादी अक़ीदे में से है।

लेहाज़ा २००० से ज़्यादा तादात में मौजूद रिवायात को ''बाज़ रिवायात'' और उनके नक़ल करने वाले को कम मानना और पूर्व के धर्मगुरूओं का इन सारी रिवायतों को मौजू करार देने का दावा करना बिल्कुल गलत है।

चूंकि मौलाना वसी मुहम्मद साहब ने शियों के ईमान बिल कुरआन का दावा करते हुए यह बताने की कोशिश की थी कि यह शिया विरोधियों शिया का झूठ है कि शियों का ईमान मौजूदा कुरआन पर नहीं है इस लिए मैंने अपने मज़मून में मोतबर शिया पुस्तकों से यह साबित किया था कि यह झूठ नहीं बल्कि शियों का अकीदा है जिसका खुद शिया धर्मगुरूओं ने भी माना है और इस पर गर्व भी किया है।

चाहिये तो यह था कि मौलाना वसी मुहम्मद साहब ख़ुद इन बिन्दुओं का विस्तार यानी वज़ाहत करते क्योंकि उन्हीं के दावे पर टिप्पणी हुई थी। मगर **''अल–वाइज़''** के दिसमबर १९८३ के अंक में इसी उनवान के साथ एक मज़मून सम्पाकद **''अल–वाईज''** स० मुहम्मद जाबिर जौरासी वाइज़ साहब का प्रकाशित हुआ है ऐसा लगता है कि ''मुल्ला दो प्याज़ा'' को आगे बढ़ाने की मस्लिहत मसले की संजीदगी को कम करना है चुनांचे मौलाना ने बड़ी खूबसूरती के साथ गाव गुप करके हमारे किये हुए प्रश्नों के उत्तर देने से पूर्व तमहीद में महिलाओं की तरह कोसा है। अगर मौलाना वसी मुहम्मद साहब के नाम से यह मज़मून प्रकाशित हुआ होता तो हम उन से इस शरारत के सिलसिले में कुछ कहते भी लेकिन इन बेचारे वाईज़ साहब को तो हम बेबस समझते हैं बल्कि इस पर शुक्र अदा करते हैं कि उन्होंने ''इफ़तराक़ बैनल मुस्लिमीन के बहाने ढूण्डने वाले'' अब्दुल वहाब के चेलों'' और अब्दुल शकूर काकोरवी के लाडलों'' जैसी ज़बान दराज़ियों ही पर इकतफ़ा किया है वर्ना वह और ज़्यादा बे तकल्लुफ़ी पर उतर आते और अपनी रिवायती तबर्राई ज़बान इस्तेमाल करने लगते तो भी हम उनका क्या कर लेते?

तमहीद के बाद मज़मून निगार साहब ने उल्टे सम्पादक ''अल–बद्र'' से ७ प्रश्न करते हुए उसे ख़बर दी कि इन प्रश्नों का विस्तार से उत्तर दीजिए। हम इस विषय पर बा कायदा बहस के लिए तैय्यार हैं।

सुबहानल्लाह! सुबहानल्ला!

इस पे मचले हैं कि हम दर्दे जिगर देखें

ऐ जनाब! आपने अपने मासूम इमामों, अपनी मोतबर पुस्तकों, अपने मुहद्दिसीन और अपने मुस्तनद धर्मगुरूओं के

दावे के ख़िलाफ़ यह दावा किया है कि शियों का ईमान मौजूदा कुरआन पर है और वह इसे महफ़ूज़ और गैर मुहर्रफ़ समझते हैं। इस कारण दलील देने की ज़िम्मेदारी आप पर है और यह आप ही की जिम्मेदारी है कि अपने इमामों, मुहद्दिसों और उलेमा की आबरू बचाते हुए अपने दावे की सच्चाई सातिब करें। क्योंकि आपकी मुस्तनद मज़हबी पुस्तकों में कुरआन की तबदीली को जिस विस्तार के साथ बयान किया गया है। इसका विवरण पहले दिया जा चुका है यहां फिर नमूने के तौर पर आपकी तसल्ली के लिए केवल दो बयान लिखे जा रहे हैं :

(१) अल्लामा नूरी की पुस्तक फ़सलुल ख़िताब के स० २११ पर है :

الاخبار الكثيرة المعتبرة الصريحة فى وقوع السقط و دخول النقصان فى الموجود من القرآن زيادة على ما مر فى ضمن الادلة السابقة و انه اقل من تمام ما نزل اعجازا على قلب سيد الانس والجان من غير اختصاصها بآية او سورة و هى متفرقة فى الكتاب المتفرقة التى عليها المعول عند الاصحاب جمعت ما عثرت عليها فى هذا الباب۔

तर्जुमा : बहुत सी ऐसी रिवायतें हैं जो मौजूदा कुरआन में कमी होने और नुक्सान दाख़िल होने पर दलालत करती हैं। इन रिवायात के अतिरिक्त जो पूर्व की दलीलें पेश की जा चुकी हैं यह रिवायात इस बात पर भी दलालत करती हैं कि यह मौजूदा कुरआन इस कुरआन से कम है जो सय्यदुल इंस वल जान स० के दिल पर उतरा था और यह कमी किसी आयत या सूरत के साथ खास नहीं है और यह हदीसें उन अनेक पुस्तकों में बिखरी हुइ हैं

जिन पर हमारे धर्मगुरू हैं। मैंने इस खण्ड की बिखरी हुई हदीसों को इकट्ठा कर दिया है।

देखिये कि अल्लामा नूरी किस विस्तार के साथ कह रहे हैं कि मौजूदा कुरआन में कमी हाने और इसमें नुक्सान होने की रिवायात हमारी काबिले एतमाद धार्मिक पुस्तकों में अधिक से अधिक मौजूद हैं। इसी पुस्तक फ़सलुल ख़िताब के स० ३० पर देखिये कि आपके मोहद्दिस स० नेमतुल्लाह जज़ायरी क्या कह रहे हैं।

قال السيد المحدث الجزائرى فى الانوار ما معناه ان الاصحاب قد اطبقوا علىٰ صحة الاخبار المستفيضة بل المتواترٍ الدالة بصريحها على وقوع التحريف كلاما و مادتاً و اعراباً و التصديق بها۔

तर्जुमा : मोहद्दिस जज़ायरी ने अनवार में कहा है जिसका अर्थ यह है कि इमामिया के सहयोगियों ने उन रिवायाते मुस्तफीज़ा बल्कि मुतवातिरा के सही होने पर इत्तेफ़ाक़ किया है जो खुले तौर पर कुरआन की तबदीली पर दलालत करने वाली हैं कलाम के एतबार से भी माद्दे के ऐतबार से भी और ऐराब के एतबार से भी। (तीनों क़िस्म की तबदीली) और इत्तेफ़ाक़ किया है इन रिवायतों के सच होने पर भी।

हमारा पहला तख़ातुब मौलाना वसी मुहम्मद साहब से था लेकिन अब जबकि किसी और कारण से सम्पादक अल वाइज़ को सामने कर दिया है और वह मौलाना के वकील की हैसियत से बहस करने के लिए तैय्यार हैं तो उनकी सहूलत के लिए हम उनकी ख़िदमत में केवल ३ प्रश्न पेश करते हुए उनसे मुतालबा करते हैं कि अगर वाकई आप बहस के लिए तैय्यार हैं

तो इन तीनो प्रश्नों के ठीक ठीक और स्टीक उत्तर अपनी धार्मिक पुस्तकों की रौशनी में दीजिएगा।

(१) आप अपने मासूम इमामों की ऐसी चन्द रिवायतें पेश कीजिए जिनसे साबित होता हो कि आपके मासूम इमाम कुरआन के बदल जाने का इंकार करके मौजूदा कुरआन को मुकम्मल और महफ़ूज़ समझते थे क्योंकि हम कई मौकों पर आपके उन मासूम इमामों की वह रिवायात पेश कर चुके हैं और आइंदा भी मांगने के समय पेश कर सकते हैं जिनसे खुले तौर से यह मालूम होता है कि आपके मासूम इमाम हज़रात तहरीफे कुरआन के मानने वाले थे। इस लिए जब तक मासूम इमामों का तहरीफ से इंकार साबित न हो उनके मुक़ाबले में किसी गैर मासूम के कथन की आपके धर्म के हिसाब से भी कोई अहमियत न होगी।

(२) आपके धर्म की बात यह है कि मौजूदा कुरआन खुलफ़ा–ए–सलासा यानी हज़रत अबू बक्र रज़ि०, हज़रत उमर रज़ि० और हज़रत उस्मान रज़ि० का जमा किया हुआ है जिसका आप खुद भी इंकार नहीं कर सकते। फिर आप बतायें कि जब खुलफ़ा–ए–सलासा आपके निकट एतबार के क़ाबिल नहीं हैं तो उनके जमा किया हुऐ कुरआन पर आप कैसे एतबार कर सकते हैं जबकि आपके मासूम इमामों ने इसकी तस्दीक़ भी नहीं की है बल्कि इसे बदला हुआ कुरआन माना है?

(३) अगर मौजूदा कुरआन को मुकम्मल और महफ़ूज़ मान कर इसी पर ईमान रखते हैं तो जो लोग (चाहे वह अइम्मा मासूमीन ही हों) इस कुरआन को नामुकम्मल और बे एतबार मानते हैं इनके सिलसिले में आपका क्या फ़तवा है? आप इनको काफिर कहते हैं? या मोमिन?

आख़िर में हम एक बात ही और व्याख्या कर देना चाहते

हैं कि अगर आपने हमारे इन तीनों प्रश्नों के सही और स्टीक उत्तर देते हुए बयान को जारी रखा तो हम आपको आपके इन प्रश्नों के उत्तर भी देते रहेंगे जिनको आपने ख़लत मलत करके पेश किया है और यह बता देंगे कि ईमान बिल कुरआन क्या है और अल्लाह के फज़्ल से अहले सुन्नत वल जमाअत ईमान बिल कुरआन की दौलत से मालामाल हैं।

उपर्ययुक्त उनवानों से नवमबर १६८३ और मार्च १६८४ के अंक में प्रकाशित होने वाले मज़मून पाठकों ने देखे और पढ़े होंगें। इनमें से पहला मज़मून शिया पत्रिका "अल–वाइज" के सितमबर १६८३ के अंक में मौलाना वसी मुहम्मद साहब के प्रकाशित मज़मून "कुरआन और हमारा अकीदा" के जवाब में था जिसमें लेखक साहब ने यह कोशिश की थी कि किसी तरह ताकत लगा कर यह साबित कर दिया जाये कि शिया मौजूदा कुरआन पर ईमान रखते हैं और मौजूदा कुरआन में तहरीफ हो जाने का अकीदा नहीं रखते हैं। मैंने इस मज़मून के उत्तर में अल–बद्र के नवमबर १६८३ के अंक में एक मज़मून प्रकाशित किया था इसमें सम्पादक अल वाइज़ के कथानानुसार मौलाना वसी मुहम्मद चूंकि ज़ियाउल वाइज़ीन और प्रिन्सपल मदरसतुल वाइज़ीन वग़ैहर हैं और शायद शिया धर्म का ज्ञान होने के कारण इससे भी बा खबर है कि इस धर्म में कुरआन मजीद को किस किस तरह मश्के सितम बनाया गया है और शिया रहते हुए तहरीफ़े कुरआन का इंकार करकके मौजूदा कुरआन पर अपना ईमान साबित करना टेढ़ी खीर से कम नहीं है। इस कारण वह मैदान से हट गये और अपने चेले सम्पादक अल–वाइज़ को सामने कर दिया क्योंकि उन्हें अपने इस लाइक़ चेले की तबर्राबाज़ी पर पूरा भरोसा था चुनांचे इन चेले साहब ने

अपने पहले ही मज़मून **"क़ुरआन और शियों का अक़ीदा"** प्रकाशित मासिक प्रत्रिका अल–वाईज़ दिसम्बर १६८३ के अंक में अल बद्र के सम्पादक और उसके खानदानी बुज़ुर्गों की ज़ातियात पर हमले करके अपनी इल्मी सालाहियत का सुबूत दिया। इस मज़मून के जवाब में अल–बद्र मार्च १६८४ के अंक में मैंने लिखा था कि होना यह चाहिये था कि मेरे प्रश्नों के उत्तर मौलाना वसी मुहम्मद साहब खुद ही देते क्योंकि एतराज़ात उन्हीं के मज़मून पर हुए थे मगर ग़ालिबन "मुल्ला दो प्याज़ा" को आगे बढ़ाने की मस्लिहत मसले की संजीदगी को कम करना है।

इस मज़मून का जवाब फिर सम्पादक अल–वाइज़ ही के नाम से अल–वाईज़ के अप्रैल १६८४ के अंक में प्रकाशित हुआ है। मज़मून इस तरह से शुरू होता है

> "मौलवी अब्दुल शकूर काकोरवी की ज़ात इफ़तराक़ बैनल मुस्लिमीन के सिलसिले में कलीदी हैसियत की हामिल थी"

पाठकों को सम्पादक अल–वाईज की तबर्राई ज़बान पर कुदरत, बात को गैर संजीदा बनाने की सलाहियत, इल्मी मसले को ज़ाती दुश्मनी का रंग देने की कोशिश और इमाम अहले सुन्नत हज़रत मौलाना मुहम्मद अब्दुल शकूर साहब फारूक़ी नव्वरल्लाहु मरकदहु और उनके खानदान के लोगों के सामने सिपर अंदाज़ होने की बातें तो इस मज़मून में मिलेंगी और पूरे विस्तार के साथ मिलेंगी लेकिन सम्पादक अल वाइज़ से सम्पादक अल–बद्र के किये गये तीन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलेगा और उत्तर के नाम पर कुछ लाइनें लिखी गई हैं उनकी हैसियत इस इक़रार के सिवा और कुछ नहीं है कि हमारे पास इन प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं इसी लिए सम्पादक अल–बद्र का

यह मांग थी कि उसकी टिप्पणियों के उत्तर खुद मौलाना वसी मुहम्मद साहब दे ताकि यह हकीकत सामने आ जाये कि शिया कुरआन मजीद पर अपने ईमान को शिया रहते हुए क्यामत की सुब्ह तक साबित नहीं कर सकेंगे और न ही कर सकते हैं और अगर वह कुरआन पर ईमान की बात करेंगे तो उनको अपने धर्म की तमाम मोतबर पुस्तकों और अपने मासूम इमामों से हाथ धोना पड़ेगा।

मेरी इस मांग के उत्तर में सम्पादक अल–वाइज़ लिखते हैं

> ''सम्पादक अल–बद्र को यह भी शिकायत है कि हज़रत ज़ियाउल वाइज़ीन ने उनके उत्तर क्यों नहीं दिये अल्लाह अल्ला यह तमन्ना कि मौलाना उनको मुंह लगायें।

जी हज़रत! मौलाना बिल्कुल सम्पादक अल–बद्र को मुंह न लगायेंगे मगर यह सम्पादक अल–बद्र को मुंह लगाने की बात नहीं कुरआन मजीद को मुंह न लगाने की बात थी। ''क्योंकि आप खुद लिखते हैं'' :

> माहौल को दहशतगर्दाना रूख़ से बचाने के लिए हमने सीधे बात करने से परहेज़ किया है अलबत्ता अल–वाइज़ में ऐसे मज़ामीन प्रकाशित हुए जिनमें शियों के तहरीफ़े कुरआन के न होने के अक़ीदे पर रौशनी डाली गई थी। इसी सिलसिले की एक कड़ी ज़ियाउल वाइज़ी न अल–हाज मौलाना वसी मुहम्मद साहब किब्ला का मज़मून ''कुरआन और हमारा अकीदा'' अल–वाइज़ सितम्बर १९८३ के अंक में प्रकाशित हुआ था ताकि फैलाई हुई ना समझियों को दूर किया जा सके।''

जब शियों के कुरआन में तबदीली न होने के अक़ीदे को साबित करने और गलत फ़हमियों को दूर करने के लिए यह मज़मून लिखा गया था तो अगर इस पर कोई टिप्पणी हो तो उसका उत्तर देना मुंह लगाना है'' या अपने दावे का सुबूत देना है? और जवाब देने से कतराना'' मुंह न लगाना है या दलील देने से बे बसी का ऐलान करना? और हां ज़रा यह भी बता दीजिए कि दावे के सुबूत की मांग मुद्दई से की जाती है या मुद्दई के अदना चेलों से? कि जनाब वाला सम्पाकद अल–बद्र पर तंज़ कर रहे हैं कि

''अल्लाह अल्लाह यह तमन्ना कि मौलाना उनको मुंह लगाये''

मैं सम्पादक अल–वाइज़ को यह बताना चाहता हूं कि मदरसतुल वाइज़ीन के अन्दर आप किसी को ''ज़ियाउल वाइज़ीन'' का सलोगन दे या ''चिरागुल मुजतहिदीन'' का लेकिन जब कोई ज़ियाउल वाइज़ीन इल्मी दुनिया का रूख करेगा तो केवल इस लिए कि वह आपका मुक़्तदा है तैय पाये उसूलों से अलग थलग नहीं किया जा सकता। उन्होंने अपने मासूम इमामों से अलग हट कर यह दावा किया है कि शियों का ईमान कुरआन पर मौजूदा कुरआन पर है इस लिए आपके कथानानुसार हर व्यक्ति को ''ईराद वारिद करने'' का हक है और अपने दावे का सुबूत देना उनके जिम्मे है। इसमें गुस्सा और आग बगोला होने की कोई बात नहीं है, आपकी झंझलाहट इस बात की ग्वाही देती है कि दलीलें न होने के कारण आप बड़ाई का बुत बिठा कर भागने की कोशिश कर रहे हैं।

रह गया इमाम अहले सुन्नत हज़रत मौलाना मुहम्मद अब्दुल शकूर साहब फारूक़ी रह० को अपने हर मज़मून में आपके गलत कहने और उनकी शान में गुस्ताख़ियां करने का मामला तो इस सिलसिले में हम आपको मजबूर समझते हैं

क्योंकि चौदवीं दशक के इस महान व्यक्ति ने दुश्मानाने सहाबा रज़ि० के चेहरों से नकाबें छीन कर उनको नंगा कर दिया है, इमाम अहले सुन्नत ने शिया धर्म के तार व पौद बिखेर कर इस धर्म की धाँधलियों को खोल कर रख दिया है फिर भला आपको उनसे क्यां न शिकायत होगी शायद आपको मालूम हो और अगर न मालूम हो तो अपने ''ज़ियाउल वाइज़ीन'' या दूसरे अकाबिर से पूछ लीजिए कि यह तहरीफ़े कुरआन ही का मसला है जिसने आपके शम्सुल उलमा मौलाना सिब्ते हसन साहब को अमरोहा ज़िला मुरादाबाद के मुनाज़रे में इमाम अहले सुन्नत के मुकाबले में लाचार व बेबस कर दिया था। अमरोहा की शिकस्त आपके महान व्यक्तियों के ज़हनों से अभी मिटी नहीं होगी इसलिए न केवल आप और आपके महान धर्मगुरू बल्कि आपकी आने वाली नसलें भी हज़रत इमाम अहले सुन्नत के नाम से चौंक चौंक उठने पर मजबूर रहेंगी। यह हज़रत इमाम अहले सुन्नत ही का ईमानी एलान है कि

> ''ख़ुदा की कुदरत और उसकी गैरत तो देखो जो व्यक्ति उसके मित्रों से दुश्मनी करते हैं उनको किस तरह ऐलाने जंग देता है। बहतरीन अंबिया स० के मित्रों के दुश्मनों को उसने किस तरह सहाबा किराम के मुकाबले से अपनी पवित्र पुस्तक के मुक़ाबले में ला कर डाल दिया है कि हमारे नबी के मित्रों से तुम क्या लड़ते हो हमसे लड़ो और हमारी पुस्तक का मुक़ाबला करो और इसका स्वाद चखो अहले ईमान की ओर से लड़ने को अल्लाह काफी है। इस लिए अब हमको लाज़िम और ज़रूरी है कि शियों को किसी दूसरे मसले में बिल्कुल बात न करने दें उनको ख़ुदा की पुस्तक के मुक़ाबले से हटने का समय न मिल और इस संगीन किले से टकरा टकरा कर उनके सिर टूट फूट जायें।''

और पूरी दनिया ने देख लिया कि जबसे इमाम अहले सुन्नत ने यह महान प्रश्न उठाया है कि शिया अपने धर्म पर रहते हुए कुरआन मजीद पर अपना ईमान साबित कर दें। शियों की दुनिया में एक भूंचाल है और शिया दांत पीस पीस कर इमाम अहले सुन्नत को गालियां दे रहे हैं कि उन्होंने यह कैसा प्रश्न उठा दिया जिसने पूरे शिया धर्म की बुनियादें हिला कर रख दीं।

मैंने अपने पहले मज़मून में मौलाना वसी मुहम्मद को मुखातब करते हुए उनके ईमान बिल कुरआन के दावे को खोकला कह दिया था और उनसे छः प्रश्न किये थे कि अगर आप इन प्रश्नों के तसल्ली बख्श उत्तर अपनी धार्मिक पुस्तकों के द्वारा दीजिए तो आपका ईमान बिल कुरआन का दावा एतबार के लायक होगा वर्ना दावा बिना दलील समझा जायेगा जिसकी कोई मान्यता न होगी और यही समझा जायेगा कि रूसवाई से बचने के लिए आपने यह दावा बिना दलील कर दिया है।

इस मज़मून का उत्तर सम्पादक अल–वाइज़ के कलम द्वारा प्रकाशित हुआ और जनाब की शरारत तो देखिये कि उसने बजाये अपने गुरू के बिना दलील दावे को साबित करने और इस दावे पर होने वाली टिप्पणिययों का उत्तर देने के मुझही से सात प्रश्न कर डाले।

कोई भी इंसाफ पसन्द बताये कि क्या सम्पादक अल–वाइज़ को यह हक पहुंचता था कि वह अपने गुरू के वकील बन कर मेरे प्रश्न के उत्तर देने के बजाए मुझ ही से प्रश्न कर देते? मैंने अपने दूसरे मज़मून में इसी बात पर ज़ोर

देते हुए कहा था कि आप खलत मलत बहेस मत कीजिए और पहले मेरे प्रश्नों का साफ साफ और स्टीक उत्तर दीजिए मैंने सम्पाकद अल–वाइज़ की इल्मी सतह की रिआयत करते हुए प्रश्नों की संख्या को घटा कर छः की जगह ३ कर दी और उनसे यह कहा कि आप इन तीन प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर दीजिए और अगर बहेस और बात करने का शौक हो तो ज़रूत बहेस और बात कर लीजिए साथ ही मैंने यह भी वादा किया था कि मैं भी आपको आपके प्रश्नों के उत्तर दूंगा मगर इस तरह नहीं कि आप के ख़लत मलत करने का मक्सद पूरा हो जाये बल्कि इस तरह कि पहले यह एक बहेस मुकम्मल हो जाये कि शिया तहरीफ़े कुरआन के क़ायल हैं या नहीं? और शियों का ईमान मौजूदा कुरआन पर है या नहीं? इस के बाद अहले सुन्नत वल जमाअत के कुरआन पर ईमान की बहस हो।

सम्पाकद अल–वाइज़ मेरी इस मांग के जवाब में ''अल–वाइज़'' के अप्रैल १६८४ के अंक में लिखते हैं।

> ''सम्पाकद अल–बद्र'' अब्दुल अली फारूकी ने यह तीन प्रश्न शायद इस लिए किये कि इसके पश्चात मैं इस बात पर अड़ जाऊँ कि उसूलन पहले आप उत्तर दीजिये और पहले आप पहले आप की तकरार का फ़ायदा उठाते हुए उनको यह कह कर नौ दो ग्यारह होने का मौक़ा मिल जाये कि क्या करें हम उत्तर देने के लिए तैय्यार थे लेकिन चूंकि सम्पादक अल–वाइज़ ने मेरे उत्तर पहले नहीं दिये इसी कारण हम उत्तर न देने पर मजबूर हैं।

जनाब वाला! अल–वाइज़ कि सितम्बर और दिसम्बर १६८३ के अंक और अल–बद्र के नवम्बर १६८३ और मार्च १६८४ के अंक अपने ''ज़ियाउल वाइज़ीन या किसी और महान

व्यक्तियों के हाथ में थमाइये और उन्हीं से पूछ लीजिए कि मार्च १६८४ के अंक में मैंने आपसे जो ३ प्रश्न किये हैं वह प्रश्न ठोंके है या आपको आसानी देने के लिए पहले से क़ायम ६ प्रश्नों में से घटा कर केवल ३ बाक़ी रखे हैं जबकि ''ज़ियाउल वाइज़ीन'' के वकील की हैसियत से आप पर इन तमाम ६ प्रश्नों के उत्तर अनिवार्य थे।

आप अपने धोखा खाये हुए अवाम को यह ताज़ा धोखा क्यों देने चाहते हैं कि मैंने आप पर ३ प्रश्न ठोंक दिये यह क्यों नहीं कहते हैं कि मैंने आप पर रहम करके ३ प्रश्नों के उत्तर का बोझ कम कर दिया है।

इसके बाद आगे सम्पादक अल वाइज यह लिखते हैं :

> ''हम यक़ीनन सम्पादक अल–बद्र के प्रश्नों के उत्तर उस समय तक न देते जब तक कि वह मेरे प्रश्नों के प्रकाश में अपने अकीदे को विस्तार से न बता देते लेकिन इस समय हम उनको मैदान में रोके रखने के लिए केवल उनकी ज़िद पूरी कर रहे हैं। आगे चल कर जब बात बढ़ेगी तो विस्तृत बहेस होगी इसके साथ ही एक शर्त भी है कि पहले मेरे प्रश्नों के स्टीक उत्तर दिये जायें इसके बाद मेरे दिये हुए उत्तरों पर कुछ लिखने का हक़ होगा।

इस हौसलेमंदी के दावे के बाद सम्पाकद अल वाइज़ सिर्फ़ इस लिए मेरी ज़िद पूरी करके मेरे प्रश्नों के उत्तर दे रहे हैं कि मुझे वह मैदान में रोके रखें फिर यह शर्त लगाना कि पहले उनके प्रश्नों के स्टीक उत्तर दिये जाये तब उनके उत्तर पर कुछ लिखने का हक़ होगा। सम्पादक अल वाइज़ के हौसले के दावे पर पानी फेरे दे रहा है साथ ही उनका यह शर्त लगाना इस बात की चुगली खा रहा है कि खुद उनको भी

अपने उत्तरों पर इत्मिनान नहीं है। अब पाठगण भी मेरे प्रश्नों और सम्पादक अल–वाइज के उत्तरों को देख लें ताकि मेरे इस दावे की सच्चाई साबित हो सके कि सम्पादक अल–वाइज़ ने मेरे तीन प्रश्नों के उत्तर के नाम से जो बातें लिखी हैं उनकी हैसियत इस इकरार के सिवा और कुछ नहीं है कि ''हमारे पास इन प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं''

मेरा सम्पादक अल–वाइज़ से पहला प्रश्न यह था कि आपके मासूम इमामों से ऐसी बहुत सी रिवायत आपकी पवित्र पुस्तकों में लिखी हुई हैं जिनसे साफ़ तौर पर ज़ाहिर होता है कि आपके इमाम लोग तहरीफ़े कुरआन के मानने वाले हैं इसके विरूद्ध आप ऐसी कुछ रिवायतें पेश कीजिए जिनमें इमामों ने तहरीफ़े कुरआन का इंकार किया हो और मौजूदा कुरआन को मुकम्मल और महफ़ूज़ माना हो।

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में सम्पादक अल–वाइज़ एक रिवायत भी ऐसी न पेश कर सके जिसमें किसी मासूम इमाम ने मौजूदा कुरआन को गैर मुहर्रफ़ माना हो और न ऐसी कोई रिवायत वह ला सकते हैं बल्कि इसके उत्तर में वह लिखते हैं :

> ''बदली हुई और महफ़ूज़ न रहने वाली पुस्तक मुस्तनद और मोतबर नहीं हो सकती जबकि हमारे मासूम इमामों ने हमें इस कुरआन से लौ लगाने का हुकम दिया है और बहुत सी हदीसों में मासूम इमामों ने इस कुरआन की तारीफ और प्रसंशा की है। हदीस–ए–सक़लैन का वसीला भी यही पवित्र ज़ातें हैं अगर कुरआन उनकी नज़र में मुहर्रफ़ और नाक़ाबिले एतबार होता तो कभी इसको मेयारे हक न करार दिया जाता ...... फिर दो हदीसें बतौर दलील पेश की हैं। इनमें से दूसरी तर्जुमा के साथ

> लिखी जा रही है।
>
> सादिक़ आले मुहम्मद का कहना है :
>
> ان القرآن واحد نزل من عند واحد و لکن الاختلاف یجیء من قبل الرواۃ (اصول کافی، ص ٦٧٠)
>
> **तर्जुमा** : बेशक कुरआन एक ही ज़ाते वाहिद की तरफ़ से उतरा है लेकिन इख़्तिलाफ़ सिर्फ़ रावियों के सबब से है।

पाठकगण खुद सोचिये कि एक ओर तो यह दावा किया जा रहा है कि मासूम इमामों ने मौजूदा कुरआन को थामे रखने का हुकम दिया है और इसकी प्रशंसा की है। दूसरी ओर खुद ही सादिक़ आले मुहम्मद का कहना है कि कुरआन तो एक ही उतरा था मगर इसमें रावियों के सबब से इख़्तिलाफ़ हो गया। क्या इख़्तिलाफ़ हो जाने के बाद मौजूदा कुरआन एतमाद के क़ाबिल रह गया इसके अतिरिक्त? आपके के मासूम इमामों ने साफ़ साफ़ दो टोक यह कह दिया है कि (१) इस कुरआन में कमी कर दी गयी (२) ज़्यादती कर दी गई (३) तरतीब बदल दी गई (४) शब्द बदल दिये गये और (५) एराब यानी ज़बर ज़ेर पेश वगैरह बदल दिये गये। क्या इन पांच किस्म की तहरीफ़ात की मौजूदगी में भी मौजूदा कुरआन आपके हिसाब से क़ाबिले एतमाद हो सकता है? मेरा दूसरा प्रश्न यह था कि आपके धर्म का यह अक़ीदा है कि मौजूदा कुरआन खुलफ़ा–ए–सलासा का जमा किया हुआ है तो जब आप ख़ुलफ़ा–ए–सलासा पर एतमाद नहीं रखते हैं तो उनके जमा किये हुए कुरआन पर क्यों कर एतमाद कर सकते हैं जबकि आपके मासूम इमामों ने इसकी तस्दीक़ भी नहीं की है बल्कि इसे बदला हुआ मानते हैं।

इसके उत्तर में सम्पादक अल–वाइज़ लिखते हैं :

> ''यह एक बे बुनियाद और गलत दावा है और

मफ़रूज़ा है जिसकी कोई अहमियत नहीं है।''

यह जवाब विस्तार चाहता है। आपने किस दावे को बे बुनियाद और गलत करार दिया है। इस प्रश्न में हमारे तीन दावे हैं।

(१) आपके धर्म की यह स्टीक बात है कि मौजूदा कुरआन तीनों ख़लीफ़ाओं का जमा किया हुआ है।

(२) तीनों ख़लीफ़ा रज़ि० आपके धर्मानुसान भरोसे के लाइक़ नहीं हैं।

(३) आपके इमामों ने तीनों खलीफा के जमा किये हुऐ मौजूदा कुरआन को ठीक और सच्चा नहीं माना है बल्कि इसे बदला हुआ और एतमाद न करने के काबिल माना है। अगर आप अपने पहले दो दावे में से किसी को गलत और बे बुनियाद करार दे रहे हैं तो सुब्हानल्ला!

चशमे मा रौशन दिल मा शाद

تعالوا الیٰ کلمۃ سواء بیننا و بینکم۔

और अगर आप तीसरे दावे को बे बुनियाद क़रार दे रहे हैं तो इस तरह अटकल पच्चू बे बुनियाद और गलत कह देने से उन लोगों को तो तसल्ली हो सकती है जो किब्ला व काबा को मजलिसों में झूम झूम कर दाद देते और प्याज़ के छिलके लगाकर आंसू बहाने के आदी हैं लेकिन आम व्यक्ति आपके इस उत्तर के खोखले पन पर हंसे बग़ैर नहीं रह सकते क्योंकि मैंने अपने पिछले दोनों मज़मूनों में आपकी धर्म के पुस्तकों से ऐसी रिवायतें पेश की थीं जिनमें आपके मासूम इमामों ने मौजूदा कुरआन को बदला हुआ कहा है बल्कि यह भी लिखा था कि आपके धर्मगुरू न केवल इन रिवायात को मोतबर मानते हैं बल्कि इनका दावा है कि तहरीफ़े कुरआन की रिवायत की तादाद इमामत की रिवायतों से कम नहीं है। और तहरीफे

कुरआन की रिवायतों की तादाद २००० से ज़्यादा है और तहरीफ़ की रिवायात तवातुर की हद को पहुंची हुई हैं।

फिर आपका यह कहना क्या हैसियत रखता है कि यह एक बे बुनियाद और गलत दावा है?।

मेरा तीसरा प्रश्न यह था कि अगर आप मौजूदा कुरआन को मुकम्मल और महफ़ूज़ समझते हैं तो उन व्यक्तियों के बारे में आपका क्या फतवा है जो इस कुरआन को अधोरा और ना काबिले ऐतमाद मानते हैं। आप उनको काफिर कहते हैं या मोमिन?

इस प्रश्न के उत्तर में सम्पाकद अल–वाइज़ लिखते हैं :

''फ़तवा देने और हर एक व्यक्ति को काफ़िर क़रार देने का मुझे हक़ नहीं है।''

सुबहानल्लाह! माशा अल्लाह! किस कद्र सादा सा उत्तर है। ऐसा लगता है कि जैसे मैंने कोई एतकादी नहीं अमली मसला पूछ लिया है जिसके उत्तर देने में जनाब ने बहुत एहतियात से काम लिया है। फिर गोल मोल उत्तर देने की क्या ज़रूरत थी? अगर यह हिम्मत न थी कि कुरआन मजीद को अधोरा मानने वाले को काफ़िर कह देते तो यही कह देते कि हम ऐसे लोगों को ख़ालिस मोमिन समझते हैं।

ख़ूब पर्दा है कि चिलमन से लगे बैठे हैं।
साफ़ छुपते भी नहीं सामने आते भी नही।।

बात यह है कि अल्लाह के पुस्तक को अधोरा मुहर्रफ़ और ना काबिले ऐतमाद करार देना उतना ही संगीन किस्म का कुफ्र है जितना खुद अल्लाह तआला की पवित्र ज़ात में ऐब लगाना हो सकता है। इस कारण सम्पादक अल–वाइज़ यह जुरअत तो कर नहीं सकते थे कि यह कह दें कि कुरआन मजीद को अधोरा और ना काबिले ऐतबार कहने वाले भी मोमिन

हैं और अगर साफ़ साफ़ स्टीक यह कहते कि ऐसे व्यक्ति हक़ीक़त में काफ़िर हैं तो मासूम इमामों से लेकर अब तक के तमाम जुब्बा और दस्तार वाले महान धर्म गुरू उसकी ज़द में आ जाते इस लिए बस इतना कहने को काफ़ी जाना कि काफ़िर क़रार देने का मुझे हक़ नहीं''।

अच्छा साहब! अगर आपको अख़्तियार नहीं है तो अपने '''ज़ियाउल वाइज़ीन'' या किसी और फ़तवा और अख़्तियार वाले से पूछ करके मेरे प्रश्न का दो टोक उत्तर दे दीजियेगा।

पाठगण ने सम्पाकद अल–बद्र के प्रश्नों और सम्पादक अल–वाइज़ के उत्तरों को पढ़ लिया। अब एक बात सम्पादक अल–वाइज़ से आख़िर में कहना चाहता हूं कि आप तो बा क़ायदा बहस के लिए तैय्यार ही हैं। फिर बहस के नियम को सामने रख कर बहस शुरू कीजिए मगर यह याद रहे कि आप पहले अपने या अपने गुरू के दावे की दलील दीजिये या सुबूत न होने का ऐलान कीजिए इसके बाद आपको नये मसले छेड़ने का हक़ हागा। हमको यकीन है कि आप क़्यामत की सुब्ह तक अपने इस दावे का सुबूत नहीं पेश कर सकेंगे कि शियों का ईमान मौजूदा कुरआन पर है। और हमारे प्रश्नों के उत्तर देने से इसी तरह बगलें झांकते रहेंगे जिसका मुज़ाहिरा आपने अपने नये मज़मून में किया है ''

هاتوا جوابکم و ادعوا شهدائکم ان کنتم صادقین۔

☆☆☆

इंकिशाफ़े हक़ीक़त या एतराफ़े हक़ीक़त

शीई पत्रिका ''अल–वाइज'' लखनऊ फरवरी १६७८ के अंक में ''इंकिशाफे हकीकत'' के नाम से एक मज़मून प्रकाशित हुआ है, मज़मून निगार ने अपने इस मज़मून को ''अल–बद्र'' के सितम्बर १६७७ के अंक में प्रकाशित मेरे एक मज़मून ''सहाबा किराम रज़ि० से बुग़ज़ व अदावत क्यों''? का उत्तर क़रार दिया है लेकिन हंसी की बात यह है कि मज़मून निगार ने मेरे मज़मून की हेडिंग तो लिखा है मगर मेरा नाम और ''अल–बद्र'' का हवाला देने से बचने की कोशिश कर के ''एक नई पत्रिका'' के इशारे से काम चलाने की कोशिश की है।

पाठको! आपको यह जानकारी होगी कि हमारी मश्रिक़ी तहज़ीब में ''किस'' के लिए ''किस का'' नाम लेना ऐब समझा जाता है। हालांकि इस यूरपी दौर में यह तमाम बातें गई गुज़री होने लगी हैं फिर भी मशरिक़ी तहज़ीब अपने स्थान पर एक हक़ीक़त है आज के इस मशरिक़ी परस्ताना माहौल में जब कि मशिर्क़ी तहज़ीब मिटती जा रही हैं ''जौरासी साहब'' की मशरिक़ी तहज़ीब की रिआयत में नाम न लेकर केवल इशारों से काम चलाने की रविश पर मैं बहर हाल खुशी प्रकट करता हूं। किसी समय में नमाज़ में भी ''रहमतुल्लाह'' का नाम न लेकर ''पुत्री के पिता'' कह कर काम चलाया जाता था, अब बहर हाल

इस तरह जिहालत न रही इसी कारण इस हद तक न सही मगर हां जगह जगह यूंही नाम लेना भी कोई अच्छी बात नहीं है, इस लिए एक बार फिर मैं ''अल–वाइज़'' के निबन्ध कार ''जौरासी साहब'' की इस रविश पर हर्ष प्रकट करता हूं''।

अब आइये ''इंकिशाफ़े हक़ीक़त'' की हक़ीक़त का भी पता लगायें, मेरे खयाल में ''इंकिशाफ़े हक़ीक़त'' के तहत जो मज़मून लिखा गया है इसके लिए ''इंकिशाफ़े हक़ीक़त'' से ज़्यादा ''एतराफ़े हक़ीक़त'' की हेडिंग बहतर होती। क्योंकि मेरे मज़मून ''सहाबा किराम से बुगज़ व अदावत क्यों?'' में बुनियादी तौर पर जिन दो बातों का दलील के साथ दावा किया गया था, उनका हमरे मज़मून निगार साहब ने कोई उत्तर दिया ही नहीं बल्कि इधर उधर की दूसरी बातों में अपने पाठकों को उलझाते रहे, मैंने उस मज़मून में दो दावे दलील के साथ पेश किये थे। प्रथम यह सहाबा किराम रज़ि० में बटवारे का कार्य सबसे पहले इब्ने सबा ने किया। द्वितीय यह इब्ने सबा पहला व्यक्ति था जिसने हज़रत अली रज़ि० के सम्बंध में गुलू किया और उनकी इमामत की फ़रज़ियत की बात कही थी और बाद में शिया धर्म में पूरी ताक़त इसी पर ख़र्च की गयी इस लिए शिया इब्ने सबा के मानने वाले हुए। इन दोनों दावे के सम्बंध में कुछ बातें सहयोग के तौर पर पेश की गई थीं। (१) शियों का ईमान कुरान मजीद पर नहीं है क्योंकि वह कुरआन के बदल जाने को कहते हैं (२) शिया धर्म में झूठ इबादत है (३) शिया इब्न सबा से अपने को अलग इस लिए करते हैं कि उनके यहां धर्म को छुपाना अनिवार्य है अगर वह अपने धर्म को ज़ाहिर करें और इसको फैलावा दें तो अपने इमाम के कहने के मुताबिक़ ज़लील और रूस्वा होंगे। लेखक ने उत्तर देते हुए मेरे दोनों बुनियादी दावों को तो हाथ भी नहीं लगाया जिससे मालूम हुआ कि यह दोनों

दावे उन्हें कुबूल हैं। रहा इधर उधर की बातों का मामला तो नं० ३ का भी कोई उत्तर नहीं दिया गया अलब्बता नं० १ और नं० २ के सिलसिले में कुछ बात कही गई है। नं० १ यानी कुरआन मजीद के सिलसिले में सिर्फ इतनी बात कही गई है कि ''हम तो आज भी कुरआन को सीनों से लगाये सही डगर पर चल रहे हैं'' मगर यह नहीं बताया गया कि यह कौन सा कुरआन है? यह वही कुरआन तो नहीं जिसके सम्बंध में आपका अक़ीदा है कि ऐतबार के लायक़ नहीं क्योंकि इसमें पांच तरह के बदलाव हुए हैं (विस्तार के लिए अल–बद्र अंक जुलाई १६७७ में मेरा मज़मून ''कलिमा गोयान–ए–इस्लाम की कुरआन से अदावत और हज़रत इमाम अहले सुन्नत की चिटठी प्रकाशित जनवरी १६७८ इ० देखिए) या फिर मुकम्मल कुरआन कहीं से आ गया जिसे आप सीने से लगाये हैं और अपने दूसरे भाईयों तक को इसकी ख़बर नहीं दे रहे हैं? नं० २ यानी तक़िय्या (झूठ बोलना) के सिलसिले में लेखक लिखते हैं ''सबसे पहली बात तो यह है कि तक़िय्या जान, माल, आबरू की हिफ़ाज़त के लिए होता है और अगर शियों के अकीदे में इब्ने सबा से ताल्लुक होता तो इसके ज़ाहिर करने में जान, माल, आबरू पर आंच आने का तो प्रश्न था नहीं जो शिया तकिय्या करते'' यह सबसे पहली बात ही बिल्कुल ग़लत है क्योंकि तक़िय्या के लिए जान, माल, आबरू को ख़ास करना शिया धर्म के हिसाब से बिल्कुल गलत है, क्योंकि शिया धर्म में तक़िय्या की बिल्कुल आज़ादी है। चुनांचे शियों की महान और मुस्तनद पुस्तक उसूले काफ़ी बाबुत तकिय्या स० ४८१ पर इस तरह रिवायत मौजूद है :

عن ابی عمیر الاعجمی قال قال ابوعبدالله علیه
السلام یا ابا عمیر ان تسعة اعشار الدین فی التقیة و لا
دین لمن لا تقیة له و التقیة فی کل شیء الا فی النبیذ

و المسح علی الخفین

तर्जुमा : अबी उमेर अजमी से रिवायत है कि उन्होंने कहा कि इमाम जाफ़र सादिक़ अलैहिस्सलाम ने फरमाया कि धर्म के दस में से ६ भाग तक़िय्ये में हैं और जो व्यक्ति तकिय्या न करे उसका धर्म ही नहीं है और तक़िय्या हर वस्तु में है केवल नबीज़ और मोज़ों पर मसह के अलावा।

इस रिवायत से यह बात साफ समझ में आती है कि तक़िय्या के लिए जान, माल, आबरू की कैद लगाना ज़बरदस्ती और धांधली है, क्योंकि इमाम जाफ़र ने साफ़ साफ़ कह दिया मि मोज़ों पर मसह और नबीज़ के अलावा तमाम वस्तुओं में तक़िय्या है।

इससे भी ज़्यादा साफ हुकम तक़िय्या के सिलसिले में इसी पुस्तक उसूले काफी की इर रिवायत से मालूम होता है जो जुरारा से मरवी है जिसमें कहा गया :

التقية فی کل ضرورة و صاحبها اعلم حين تنزل به

तर्जुमा : तक़िय्या हर ज़रूरत के लिए है और जिसको तक़िय्या की ज़रूरत हो वह अपनी ज़रूरत से ज़्यादा बहतर तौर पर जानने वाला होता है।

इतने साफ़ और स्टीक हुकमों के बाद भी यह कहना कि तक़िय्या जान, माल, आबरू ही के लिए है सरासर धोखा देने वाला है वर्ना हकीकत यही है कि शिया धर्म में तक़िय्या एक ऐसी इबादत है कि इसके बगैर धर्म मुकम्मल नही नहीं हो सकता क्योंकि धर्म का ६/१० भाग तकिय्या ही में है।

रह गया निबन्धक का यह कहना कि ''इसी तकिय्ये पर अगर छोटी बहस की जाये जब भी कई पन्ने की ज़रूरत होगी। लेहाज़ा अगर ज़रूरत महसूस हुई तो इस मौजू पर लिखा

जायगा। तो बिस्मिल्लाह! शौक़ से लिखये मगर इस सिलसिले में कुछ लिखने से पूर्व ''अल–बद्र'' के अंक अकतूबर १९७७ में प्रकाकिशत मज़मून ''तक़िय्या क्या है'' का पढ़ लेना अनिवार्य समझयेगा ताकि कोई शक बाक़ी न रह जाये।

निबन्धक ने मेरे मज़मून ''सहाबा किराम रज़ि० से बुग़ज़ व अदावत क्यो?'' के उत्तर में अपने मज़मून में केवल इतनी ही सफाई पेश की है जिसकी हक़ीक़त नाज़रीन के सामने आ गई। अब दूसरी बातों की ओर आइये जिनको निबन्धक ने बड़ी तहक़ीक़ के बाद पेश किया है। इब्ने सबा से अपना दामन बचाने के लिए हमारे मक़ाला निगार ने इस बात की कोशिश की है कि इब्ने सबा के वजूद ही का इंकार कर दिया जाये। या उसके किरदार को मुश्तबा कर दिया जाये। इसी कारण लिखते हैं कि ''अब्दुल्लाह बिन सबा की क्या हक़ीक़त है यह मालूम करने के लिए मिस्र के महान सुन्नी आलिम डा० ताहा हुसैन की **नैफुल फितनतिल कुबरा''** की एक इबारत का तर्जूमा पेश कर रहा हूं।

''और मेरा ख़याल है कि जो व्यक्ति इब्ने सबा को इस हद तक बढ़ा चढ़ा कर पेश करते हैं वह अपने ऊपर अधिक ज़्यादती करते हैं और तारीख पर भी, सबसे पहले हमारी नज़र तो इस बात पर पड़ती है कि महान धर्मगुरूओं की बड़ी बड़ी पुस्तकें जो बाद के लेखकों का हवाला बनीं। उनमें इब्ने सबा का कोई अता पता नहीं। न तो इब्न सअद ने उस्मानी दौर के वाक़िआत और उन लोगों से दुश्मनी के सिलसिले में इब्न सबा का कोई तज़किरा किया है और न ही अल्लामा ब्लाज़री ने अपनी पुस्तक **''अंसाबुल अशराफ''** में, हालांकि हमारे

(अहलेसुन्नत के) यहां अल्लामा ब्लाज़री की पुस्तक तमाम मसादिर और मआख़िज़ में सबसे ज़्यादा अहमियत की हामिल है और उसमें हज़रत उस्मान के दौर के हालात और लोगों की दुश्मनी उनसे नाराज़ी का बयान भी विस्तार से है सिर्फ अल्लामा तबरी ने इब्ने सबा के वाकिआत को सैफ बिन उमर के हवाले से बयान किया है। तबरी के बाद जितने मोर्रिख़ीन आये सबही ने तबरी ही से इब्ने सबा के वाक़िआत नक़ल किये है। (अल फ़ितनतुल कुबरा, जिल्द अव्वल)

मिस्र के मशहूर तफ़ज़ीली डा० ताहा हुसैन को "महान सुन्नी आलिम" कह करके धोखा देने की जो कोशिश की गई है वह भी इब्ने सबा से दामन बचाने के लिए मुफ़ीद नही हो सकती जहां तक ताहा हुसैन का ताल्लुक़ है उनकी तफ़ज़ीलियत बिल्कुल साफ़ और ज़ाहिर है उनके अक़ीदे अहले सुन्नत वल जमाअत से बिल्कुल अलग हैं। मिसाल के तौर पर जिस तरह शिया हज़रत हसन रज़ि० से सिर्फ इस कारण ना खुश रहते हैं कि उन्होंने हज़रत मआविया रज़ि० के हाथ में सत्ता देकर बेअ़त कर ली थी इसी तरह "यह हज़रत" भी हज़रत हसन रज़ि० पर तंज़ करते हुए अपनी पुस्तक "अली तारीख़ और सियासत की रौशनी में" स० ३४८ पर लिखते हैं :

"हसन के दिल से उस्मान रज़ि० का गम न निकल सका, कहना चाहिये कि वह पूरी तरह उस्मानी थे कभी कभी वह अपनी उस्मानियत में हद से आगे बढ़ जाते हैं"

तो फिर ऐसी शख़्सियत की किसी लेख का हवाला देकर "महान सुन्नी आलिम" से उसे वाक़िफ कराना कहां की

ईमानदारी और दयानत दारी है?

फिर अगर हम किसी दर्जे में ताहा हुसैन के कलाम से इस्तनाद का सही भी करार दे लें तो उनकी पुस्तक की असल इबारत नक़ल करके उसका तर्जुमा पेश करना चाहिये था मगर फिर इसमें हमारे मकाला निगार को "अपना हुनर" दिखाने का मौका न मिल पाता, इसी कारण हर स्थान पर केवल तर्जुमा पर ही इक्तिफा कर लिया जबकि तर्जुमा पेश करने में इसके बहुत इमकानात हैं कि इस किसम की इबारत असल पुस्तक में मौजूद ही न हो, या मौजूद हो तो इसमें अपने बुनियादी अक़ीदे "तहरीफ़" का दांव चला दिया गया हो, जब कुरआन हकीम इस "फ़न" से न बच सका तो डा० ताहा हुसैन और उनकी पुस्तक की क्या हैसियत है"?

इसके अतिरिक्त ताहा हुसैन के दावे मानने के लायक़ नहीं हैं मिसाल के तौर पर उन्होंने बलाज़री की पुस्तक को तमाम मसादिर और मआखिज़ में सबसे ज़्यादा अहमियत का हामिल क़रार दिया है जबकि बलाज़री के सम्बंध में यह प्वाइंट पढ़िये "तबरी की सफ़ में बलाज़री की पुस्तकें हैं उन्हें एक इज्जत हासिल है कि वह अमीरूल मोमिनीन अल मुतवक्किल अलल्लाह और दूसरे अब्बासी ख़ुलफ़ा के नज़दीक़ी थे" इस प्रकार उनकी पुस्तक को आधी सरकारी हैसियत हासिल हो गई फिर भी उनसे बात उसी समय लेनी चाहिये जब दूसरी ओर से भी मज़बूत गवाहियां मिलें। (हज़रत मुआविया की सियासी ज़िन्दगी, स० २२)

इसके अतिरिक्त डा० ताहा हुसैन ने तो इब्ने सबा के वाक़िआत के सम्बंध में लिखा है कि उसे सिर्फ तबरी ने बयान किया है, और जौरासी साहब ने तबरी की इस सनद पर जिरह किया है, जहां तक इब्ने सबा के अक़ीदे का प्रश्न है तो वह

बिल्कुल ज़ाहिर हैं, इसके मश्हूर अक़ीदे को किसी ने भी रद्द नहीं किया है और अगर मांगा गया तो इंशाअल्लाह दोनो समूह की मोतबर पुस्तकों से इब्ने सबा के अक़ीदे बयान कर दिये जायेंगे। फिर इन बातों से हट कर के मैंने तो अपने पूर्व के मज़मून में शियों की मशहूर और मुस्तनद पुस्तक ''रिजाले कश्शी'' की एक रिवायत पेश करके यह साबित किया था कि इब्न सबा ही पहला व्यक्ति है जिसने हज़रत अली रज़ि० की इमामत की फ़रज़ियत की बात की इसके बाद इसी चीज़ को शियों ने मान लिया। इसी कारण वह इब्ने सबा कें मानने वाले हुए। यहां तक कि उसने हज़रत अली रज़ि० के ख़ुदा होने की बात को माना है। शियों का भी यही हाल है कि वह हज़रत अली रज़ि० के सिलसिले में ग़ुलू करते हैं जबकि शियों की मशहूर पुस्तक **नहजुल बलागा** जिल्द अव्वल स० २६१ में हज़रत अली रज़ि० का फरमान इस सिलसिले में इस तरह लिखा है :

و سيهلك فيَّ صنفان محب مفرط يذهب به الحب الى غيرالحق و مبغض مفرط يذهب به البغض الى غيرالحق و خيرالناس فيّ حالا النمط الاوسط فالزموه و الزموا السواد الاعظم فإن يدالله على الجماعة و اياكم و الفرقة فإن الشاذ من الناس للشيطان كما ان الشاذ من الغنم للذئب الا من دعا الىٰ هذا الشعار فاقتلوه و لو كان تحت عمامتي هذه

तर्जुमा : और अंक़रीब मेरे बारे में दो समूह हलाक होंगे, एक ज़्यादा मोहब्बत करने वाला, जिसकी मोहब्बत उसको हक़ के विरूध ले जायेगी। और दूसरा बहुत ज़्यादा दुश्मनी करने वाला जिसकी दुश्मनी हक़ के विरूध ले जायेगी। मेरे बारे में

सबसे ज़्यादा अच्छा मार्ग बीच वाला मार्ग है। लेहाज़ा तुम लोग इसी के साथ लिपटे रहो, और बड़ी जमाअत के साथ रहो, इस लिए कि अल्लाह का हाथ जमाअत पर है। ख़बर दार! बड़ी जमाअत से अलग न होना क्योंकि जो अलग होता है वह शैतान का शिकार होता है जिस तरह झुण्ड से अलग होने वाली बकरी भेड़िये का निवाला बन जाती है याद रखो जो व्यक्ति तुमको इस निशान की ओर बुलाये उसको मार डालो चाहे वह मेरे इस पगड़ी के नीचे ही हो।''

पाठकगण! सोचें कि किस प्रकार हज़रत अली रज़ि० ने अपने सिलसिले में दो समूह हो जाने की बात कही है कि एक मुहब्बम में बढ़ जायेगा और हक़ के मार्ग से भटक जायेगा। इसी कारण आज शिया इसी बीमारी के चपेट में हैं। दूसरा समूह वह है जो नफ़रत और दुश्मनी में आगे बढ़ जायेगा। इसी कारण यह समूह फ़िरक़ाऐ ख़ारजिया है, फिर इन दोनों की हलाकत की बात कही है। और आख़िर में अपने सच्चे मानने वालों को ज़ोरदार शब्दों में नसीहत की है कि बड़े समूह से अलग न होना, वर्ना बर्बाद हो जाओगे। अब जौरासी साहब ही बतायें कि बड़ी जमाअत कौन है? क्या अहले सुन्नत वल जमाअत के सिवा किसी और को माना जा सकता है? जबकि शियों को इसका खुला ऐतराफ़ है कि वह विश्व की आबादी में बहुत ही कम हैं। फिर क्या यह मुहिब्बे मुफ़्रित'' समूह नहीं हुआ। जिसकी हलाकत और हक़ के मार्ग से हटे होने की ख़ुद हज़रत अली रज़ि० ने ही बात कही है?

अब रह गया हमारे निबन्धक का यह कहना कि अगर शिया इब्ने सबा के मानने वाले हैं भी तो हज़रत अबू ज़र

गिफ़ारी रज़ि० जैसे जलीलुल क़द्र महान सहाबी रज़ि० जब इब्ने सबा के ''हलक़–ए–असर'' में आ गये और हज़रत मुआविया के तर्ज़े अमल पन इब्ने सबा का विरोध किया तो शियों के लिए भी इब्ने सबा की पैरवी में कुछ हरज दिक़्क़त नहीं, क्योंकि अहले सुन्नत की अक़ीदे के मुताबिक़ किसी एक सहाबी की पैरवी कर लेने में भी नजात है।

तो इस उत्तर में यह कहना है कि यक़ीनन हमारा अक़ीदा है कि किसी एक सहाबी की पैरवी में भी नजात है क्योंकि रसूलुल्लाह स० का फरमान है :

اصحابی کالنجوم بایھم اقتدیتم اھتدیتم

तुर्जमा : मेरे साथी सितारों के मानिन्द हैं तुम उन में से किसी एक की पैरवी करोगे हिदायत पा जाओगे''

मगर ज़रा पैरवी का मतलब तो समझा दीजिए, क्या पैरवी का मतलब यही है कि सहाबी को अगर कोई गलत फहमी हो गयी हो, और फिर बाद में वह गलत फहमी दूर हो गई तो आप उसकी ग़लत फ़हमी को सनद बनये रहिये? यह कितनी खुली बेमानी है? और कितना गलत रंग है सोचने का? जहां तक हज़रत अबू ज़र रज़ि० और हज़रत मुआविया रज़ि० का मामला है तो इसका विस्तार यह है कि हज़रत मुआविया रज़ि० के विरूध षणयन्त्र में इब्ने सबा सीरिया पहुंचा और वहां के श्रृषियों और मुनियों से मुलाकातें कीं, चुनांचे यह हज़रत अबू ज़र रज़ि० के पास भी आया और कहा :

یا اباذر الا تتعجب من معاویة یقول المال مال الله الا
ان کل شیء لله کانه یرید ان یحتجنه دون المسلمین
و یمحوا سم المسلمین۔

तर्जुमा : ऐ अबूज़र रज़ि०! क्या आपको यह सुन

कर ताज्जुब नहीं होता कि मुआविया रज़ि० उस माल को अल्लाह का माल कहते हैं यूं तो हर चीज़ अल्लाह की है, लेकिन ऐसा लगता है कि वह खुद क़ाबिज़ होकर उस माल पर से मुसलमानों का नाम मिटा देना चाहते हैं''

यह सुन कर हज़रत अबू ज़र रज़ि० हज़रत मुआविया रज़ि० के निकट पहुंचे और कहा कि क्या बात है कि आप मुसलमानों के माल को अल्लाह का माल कहते हैं हज़रत मुआविया रज़ि० ने जवाब दिया कि ऐ अबू ज़र रज़ि०! अल्लाह आप पर रहम करे, क्या हम अल्लाह के बन्दे नहीं हैं, क्या यह माल अल्लाह का माल नहीं है, क्या यह मख़लूक़ उसकी नहीं है? और क्या केवल उसी का हुकम नहीं चलता? हज़रत अबू ज़र रज़ि० ने यह सुन कर फ़रमाया कि आप ऐसा मत कहा कीजिए। हज़रत मुआविया रज़ि० ने जवाब में कहा कि ''मैं यह तो नहीं कहूंगा कि माल अल्लाह का नहीं है, हां इस माल को मुसलमानों का माल कह दिया करूंगा। बस बात यहीं पर समाप्त हो गई। फिर जब इब्ने सबा ने अपने मक़सद में नाकामी देखी तो हज़रत ओबाद बिन सामित रज़ि० के यहां पहुंचा और उनसे भी यही बात कही, उन्होंने असल हक़ीक़त को समझ लिया और उसे पकड़ कर हज़रत मुआविया रज़ि० के पास ले गये और कहा कि ख़ुदा की क़सम यही वह व्यक्ति है जिसने अबू ज़र रज़ि० को आपके पास भेजा'' इस तरह जब इब्ने सबा की साज़िश ज़ाहिर हो गई तो उसे सीरिया से निकाल दिया गया।

अब पाठकगण! सोचिये कि जौरासी साहब का यह कहना कि हज़रत अबू ज़र रज़ि० इब्ने सबा के हलक–ए–असर में आ गये, सहाबी रसूल पर कितना ज़बरदस्त बुहतान है, अगर वह

इब्न सबा के हलक़–ए–असर में आ गये होते तो फिर हज़रत मुआविया के पास जाते ही क्यो? हक़ीक़त तो यह है कि इब्ने सबा के झूठ बोलने से उनको जो गलत फहमी हुई उसे उन्होंने हज़रत मुआविया रज़ि० के पास जाकर साफ़ कर लिया।

हम पूरे ऐतमाद के साथ यह बात कह सकते हैं कि हज़रत अबू ज़र गिफ़ारी रज़ि० या किसी भी दूसरे सहाबी की मुकम्मल पैरवी की सुबूत कोई शिया शिया रहते हुए दे नहीं सकता वर्ना हज़रत अबू ज़र रज़ि० ने जिन बुज़ुर्गों पर अपने ऐतमाद को ज़ाहिर किया है शियों को भी उन पर ऐतमाद करना चाहिये। और ऐसा हो ही नहीं सकता क्योंकि हम फिर इसी दावे को दोबारा लौटायेंगे कि शिया धर्म की बुनियादी ईंट सहाबा से दुश्मनी है .... और अंतिम में जौरासी साहब की खुद अपने ही धर्म से नावाक़िफ़ियत की इबरतनाक मिसाल देखें, लिखते हैं ''इस छोटे से मज़मून में तीनों खलीफाओं की ख़िलाफ़त और उनके ईमान पर लिखने की तो गुंजाइश नहीं रह गई, हज़रत अली रज़ि० की ज़बान से उनकी प्रसंशा हमने तो किसी शिया पुस्तक में, ऐसी कोई बात नहीं देखी, और बग़ैर दलील के उसे हम सफेद झूठ ही समझते रहेंगे'' अफसोस जौरासी साहब! मुझे मालूम नहीं था कि आप अपने धर्म और धार्मिक पुस्तकों से इस कद्र ना वाक़िफ़ हैं, और आप क्या करें आपके इमाम ही आपसे अपना धर्म छिपा रहे हैं और इसको छिपाये रखने की नसीहत भी कर रहे हैं।

قـال ابـوعبـدالـله يا سليمان انكم على دين من كتمه
اعزه الله و من اذاعه اذله الله (اصول كافى، ص ٤٥٨)

तर्जुमा : इमाम जाफ़र सादिक़ ने कहा कि ऐ सुलेमान तुम ऐसे धर्म के मानने वाले हो कि जो व्यक्ति इसे छिपायेगा अल्लाह उसे इज्ज़त देगा

और जो इसे फैलायेगा अल्लाह उसे ज़लील कर देगा।''

तो फिर आप तक सही धर्म नहीं पहुंचा तो कुछ हैरत की बात नहीं है।

मगर आइये मैं आपको बताऊँ कि आगे की सतरों में आपने अपने धर्म की जिस मुस्तनद पुस्तक नहजुल बलागा का ज़िक्र किया है, उसी को ज़रा तवज्जू के साथ पढ़िये और इसे हल करने में मुश्किल हो तो अल्लामा इब्ने मीसम बहरानी की शरह भी सामने रिखये तब आपको हज़रत अली रज़ि० की ज़बानी तीनों ख़लीफ़ाओं की मंकबत मिलेगी। चुनांचे इब्ने मीसम की नहजुल बलागा मतबूआ ईरान, जिल्द ३१ में है :

و كـان افـضلهم فى الاسلام كما زعمت و انصحهم
لـلّــه و لـرسـولــه الـخـليـفة الصديق وخليفة الخليفة
الفاروق و لعمرى ان مكانهما فى الاسلام لعظيم و ان
المصاب بهما لجرح فى الاسلام شديد يرحمهما الله
و جزاهما باحسن ما عملا۔

तर्जुमा : और इस्लाम में सबसे ज़्यादा फ़ज़ीलत वाले और अल्लाह और उसके रसूल के साथ ख़ुलूस रखने वाले जैसा कि तुमने बयान किया ख़लीफ़ा सिद्दीक़ रज़ि० थे, और उन ख़लीफ़ा के ख़लीफ़ा फ़ारूक़ रज़ि० थे और कसम है मुझे अपनी जान कि बिला शुबा इन दोनों का इस्लाम में बहुत बड़ा स्थान है और बेशक इन दोनों की मृत्य से इस्लाम को गहरा जख़्म लगा, अल्लाह इन दोनों पर रहमत नाज़िल करे और इन दोनों को उनके अच्छे कार्यों का बदला दे।

इस रिवायत से शैख़ैन (हज़रत अबू बक्र रज़ि० हज़रत

उमर रज़ि०) की मंक़बत कितने साफ़ और गैर मुबहम अंदाज़ में हो रही है? और अब सुनिये तीसरे ख़लीफ़ा हज़रत उस्मान रज़ि० की मंक़बत हज़रत अली रज़ि० की ज़बान से! अपनी इसी मोतबर पुस्तक नहजुल बलागा जिल्द अव्वल का स० २३२ देखिए कि जब उस्मान गनी रज़ि० को बागियों ने घेर लिया तो हज़रत अली रज़ि० ने हज़रत उस्मान गनी रज़ि० से जो जाकर कहा वह पूरी बात न लिखकर के केवल कुछ जुमले नक़ल कर रहा हूं।

ما سبقناك الى شيء فنخبرك عنه و لا خلونا بشيء فنبلغكه و قد رأيت كما رأينا و سمعت كما سمعنا و صحبت رسول الله صلى الله عليه وسلم كما صحبنا و ما ابن ابى قحافة و لا ابن الخطاب اولىٰ بعمل الحق منك و انت اقرب الى رسول الله صلى الله عليه وسلم و شيحة رحم منهما و نلت من صهره ما لم ينالا۔

तर्जुमा : मैं आपसे किसी बात में आगे नहीं बढ़ सकता कि आपको ख़बर दूं न मैंने अकेले में रसूलुल्लाह स० से कोई ऐसा ज्ञान प्राप्त किया है जो आप तक पहुंचाऊँ। बेशक आपने रसूलुल्लाह स० को इसी तरह देखा जिस तरह हमने देखा है और जिस तरह आपने सुना इसी तरह हमने सुना है और आपने भी उनके साथ समय गुज़ारा जिस तरह हमने समय गुज़ारा और अबू बक्र रज़ि० व उमर रज़ि० हक पर अमल करने के आपसे ज़्यादा मुस्तहक़ नहीं थे आप उनकी ब निसबत रसूल स० से नसबी ऐतबार से ज़्यादा करीब हैं और आपने रसूल स० की दामादी का शर्फ पाया जो उन दोंनों को नहीं मिला।"

जौरासी साहब देखिए इसी नहजुल बलागा में हज़रत अली रज़ि० की ज़बानी तीनों खलीफाओं की प्रसंशा कितने विस्तार के साथ मौजूद है। जिसे आप फरीकैन की मोतमद पुस्तक करार दे रहे हैं, जहां तक अहले सुन्नत की बात है तो उनका इस पुस्तक से क्या सम्बंध है? मगर हां आप तो इस पर ऐतमाद करने पर मजबूर हैं। तवालत के डर से इन्हीं दो रिवायतों के बयान पर इक्तिफा कर रहा हूं वर्ना सिर्फ इसी नहजुल बलागा में बीसियों रिवायात हैं कि जिनमें तीनों ख़लीफ़ाओं की तारीफ़ हज़रत अली रज़ि० की ज़बानी हुई है इसी तरह दूसरी शिया पुस्तकों से भी इसका सुबूत पेश किया जा सकता है हमें उम्मीद है कि जौरासी साहबा हज़रत अली रज़ि० के फ़रामीन पर अमल करते हुए आने वाले समय में मोहतात रवैया अपनायेंगे और इस्लाम दुश्मन तहरीकों का शिकार न होंगे।

☆☆☆

लो आप अपने दाम में सय्याद आ गया।

हज़रत इमाम जाफ़र सादिक़ रज़ि० हमारे इमाम आज़म अबू हनीफ़ा रह० के काल के एक महान महापुरूष थे, और उनका ज्ञान और तकवा मिसाली था, उनकी एक बड़ी फ़ज़ीलत यह है कि उनका सिलसिला नसब ब वास्ता सय्यदना हुसैन बिन अली रज़ि० हुजूर नबी करीम स० से मिलता है ..... लेकिन शिया धर्म ने इमाम जाफ़र सादिक़ रह० की जो तस्वीर पेश की है वह इंतहाई मज़हका खेज़ और लायक़े इबरत है।

शीई लेहाज़ से जाफ़र सादिक़ रह० न केवल यह कि एक इमाम हैं बल्कि नबियों की तरह मासूम हैं और उनकी बात को मानना अनिवार्य है। उनकी गिनती उन १२ मासूम इमामों में छठे नंबर पर है जिनको खुदा ने इस मंसब पर फ़ायज़ करके इसका ऐलान कर दिया था और जिनको न केवल हलाल और हराम का इख़्तियार था बलिक जिनके पास एक एक कर के मुसहफे फातिमा, सुलेमान की अंगूठी, मूसा की लाठी वगैरह महफ़ूज़ थे।

शिया धर्म का ज़्यादा हिस्सा इमाम जाफ़र सादिक़ की बातों और उनकी रिवायतों ही से सम्बंधित है इसी लिए शीई फ़िक़ा का नाम "**फ़िक़ा जाफ़री**" है जिस पर आमिल होने के शिया इस्ना अशरी दावेदार हैं।

शियों के १२ मासूम इमामों में भी इमाम जाफ़र सादिक़

को ख़ास अहमियत हासिल है और उनके एक एक फ़रमान को बिला किसी सोच विचार के कुबूल करने के शिया पाबन्द हैं।

उन्हें इमाम जाफर सादिक के एक "अजीब व ग़रीब" फ़रमान और इससे बर आमद होने वाले कुछ इबरत खेज़ नतीजे को हम तफसीर "**फ़ बुहितलल्ज़ी कफर**" के सहयोग से पेश करके पाठकों को सोचने पर आमंत्रित कर रहे हैं कि अगर शीई रिवायत के मुताबिक वाकई यह इमाम जाफर सादिक का फरमान है तो "अइम्मा मासूमीन" और "आले नबी" का मर्तबा कुरआन की रौशनी में क्या मुतअय्यन होता है? यही बात सोचने की है और इबरत हासिल करने की है।

अब पढ़िये वह रिवायत और इससे प्राप्त होने वाले नतीजे

हज़रत इमाम जाफर सादिक कहते हैं कि

"कुल का कुल कुरआन हमारी शान में उतरा (तर्जुमा शिया मुतरजिम्म कुरआन मकबूल अहमद दिहलवी, स० १३७ हाशिया न० १,४,२,४,५)

इसको सुन कर तो शिया रावी ने भी शक किया और हैरत से प्रश्न किया! कि या इब्ने रसूलुल्लाह! क्या ऐसा मुमकिन है यह क्यों कर हो सकता है? इमाम ने गुस्से से कहा

इमाम : क्या तू नहीं देखता कि कुरआन में या जन्नत का ज़िक्र, या जहन्नम का?

रावी हां

फरमाया जन्नत से मुराद हम दोज़ख से मुराद हमारे दुश्मन।

इमाम क्या तू नहीं देखता कि कुरआन में या रहमत का ज़िक्र है या गज़ब का?

रावी हां

इमाम रहमत से मुराद हम, गज़ब से मुराद हमारे दुश्मन।

इमाम क्या तू नहीं देखता कि कुरआन में या अंबिया का

किस्सा है या नमरूद, शद्दाद और फ़िरऔन का?

रावी हां

इमाम अंबिया से मुराद हम, फिरऔन, शद्दाद और नमरूद से मुराद हमारे दुश्मन।

इमाम क्या तू नहीं देखता कि कुरआन में या तो आदम का किस्सा है या इबलीस का?

रावी हां

इमाम आदम से मुराद हम, इबलीस से मुराद हमारे दुश्मन।

रावी ने कहा صدقت يا ابن رسول الله ऐ इब्न रसूल आपने सच कहा।

वैसे पाठकों की दिलचस्पी के लिए यह वज़ाहत भी अनिवार्य है कि शियों के दूसरे मासूम इमामों ने भी कुछ इसी तरह के दावे शीई रिवायात के मुताबिक़ किये हैं जिन से या साबित करना मक़सूद है कि कुरआन मजीद के उतरने का मक़सद केवल उन बुजुर्गों के हुकूक व मरतबों का बयान ही है अर्थात इमाम जाफर सादिक के पिता और पांचवीं मासूम शीई इमाम इमाम बाक़र कहते हैं कि एक तेहाई कुरआन हमारी शान में उतरा है। (मंकूल अज़ तफसीर फ बुहितल्लज़ी कफर, स० ८/६)

यही बुजुर्गवार यह भी कहते हैं कि

لولا انه زيد فی القرآن و نقص ما خفی حقنا علی ذی حجیٰ (تفسیر صافی، مطبوعه ایران، ص ۱۰)

तर्जुमा : अगर कुरआन में कमी और ज़्यादती न कर दी गई होती तो अक़्ल वालों से हमारा हक छुपा न रहता।

लेकिन इस मज़मून में हम केवल इमाम जाफ़र सादिक़ के इस दावे की रौशनी में कि ''कुल का कुल कुरआन हमारी शान

में उतरा और वह इस तरह कि कुरआन में या हमारा ज़िक्र है या हमारे दुश्मनों का'' कुछ कुरआनी आयतों और उनके इस तर्जुमे को जो शिया मुतरजिम्म कुरआन मक़बूल अहमद ने किया है पैश करने के बाद यह दिखाना चाहते हैं कि इन आयात में किस तरह इमामों और उनके दुश्मों का ज़िक्र मौजूद है।

(۱) محمد رسول الله والذين معه اشداء علي الكفار رحماء بينهم تراهم ركعا سجداً يبتغون فضلاً من الله و رضواناً سيماهم فی وجوههم من اثر السجود ذالك مثلهم فی التوراة و مثلهم فی الانجيل كزرع اخرج شطأه فأزره فاستغلظ فاستویٰ علی سوقه يعجب الزراع ليغيظ بهم الكفار و عدالله الذين آمنوا و عملوا الصالحات منهم مغفرة و اجراً عظيما۔ (الفتح: ۲۹)

तर्जुमा : मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं और जो भी हकीकतन इसके साथ हैं वह काफिरों पर भारी हैं और आपस में रहम दिल तुम उनको रूकू व सुजूद की हालत में देखोगे कि वह खुदा के फज़ल और उसकी ख़ुशनूदी के चाहने वाले हैं उनकी निशानिया उनके चेहरों पर सजदे के असर से ज़ाहिर हैं यह मसल तो उनकी तौरेत में बयान की गई है और इंजील में उसकी यह मसल है कि वह खेती के मानिन्द हैं कि उसने अपनी कूंपल निकाली फिर उसको कुव्वत पहुंचाई फिर वह मोटी हो गई फिर अपने तने पर खड़ी हो गई। अब खेती करने वालों को अच्छी मालूम होती है ताकि उनके द्वारा काफ़िरों को गुस्सा दिलाये अल्लाह ने उन लोगों से जो उनमें से ईमान लाये हैं और नेकोकार हैं। मग़फ़िरत का और बहुत बड़े सवाब का वादा कर

लिया है। (तर्जुमा मकबूल अहमद, स० ८२०)

अब प्रश्न यह है कि इस आयत में तो साफ़ साफ़ रसूल स० और असहाबे रसूल स० का ज़िक्र है और उन्हीं की सिफात बयान की गई हैं इमाम जाफ़र सादिक़ या दूसरे इमामों और उनकी आल व औलाद किसी का ज़िक्र नहीं है फिर इमाम जाफ़र सादिक़ का यह दावा क्यों कर सादिक हो सकता है कि कुल का कुल कुरआन हमारी शान में उतरा।

तो इसके सच्चे होने की यह शक्ल है कि खुदा अइम्मा और उनके पैरवी करने वालों को बताना चाहता है कि

ऐ अइम्मा और उनके पैरूकार! देखो यह हैं असहाबे रसूल जो काफ़िरों पर भारी और आपस में रहम दिल हैं और तुम उनकी रविश से हट कर गुमराह हो गये हो कि न कुफ़्फ़ार और मुश्रिकीन, और यहूद और नसारा पर तुम भारी हुए हो न ही तुमने आपस में रहम दिली से काम लिया, तुम्हारा शासन काल में गैर मुसलमीन मुतमइन हुए और मुसलमानों में आपस में लड़ाइयां हुईं फिर देखो कि इंजील में उनकी मसल उस खेती से बयान की गई जिसे कूंपल निकालता, कुव्वत पहुंचाता और मोटा हो कर अपने पैर पर खड़ा होता देख कर खेती करने वाले खुश होते हैं और यह सब इस लिए कि उनके द्वारा काफ़िरों को गुस्सा दिलाये। अब तुम सोचो कि असहाबे रसूल की शादाबी और उनकी विजय और कामयाबी ने तुम्हारे दिलों पर क्या असर डाला? तुम ''खेती करने वालों'' की तरह खुश नहीं होते हो, बल्कि तुमको गुस्सा आता है, तुम उनके नामों से जल जाते हो, तुम उन पर लान तान करते हो, उनको ज़ालिम और गासिब समझते हो, और यह सब कुछ काफिरों का शेवा है फिर अगर तुम आफियत चाहते हो तो अपनी इन हरकतों से रूक जाओ और असहाबे रसूल के सम्बंध में ज़बान मत खोलो।

क्योंकि अल्लाह ने नेकोकार मोमिनीन से मग़फिरत और बहुत बड़े अज्र का वादा किया है और तुम्हारा जलना और हसद करना खुदा को उसका वादा पूरा करने से बाज़ नहीं रख सकता। अलबत्ता तुम्हारा यह जलना और हसद करना ही तुम्हारी दुनिया और आख़िरत की तबाही का कारण बनेगा।

(۲) واعلموا ان فيكم رسول الله لو يطعيكم فی كثير من الامر لعنتم و لكن الله حبب اليكم الايمان و زينه فی قلوبكم و كره اليكم الكفر و الفسوق و العصيان اولائك هم الراشدون۔ (الحجرات: ۷)

(२) **तर्जुमा** : और यह भी समझ लो कि अल्लाह का रसूल तुममें मौजूद है अगर वह बहुत सी बातों में तुम्हारा कहना माने तो तुम ज़रूर हलाकत में पड़ जाओगे लेकिन अल्लाह ने अपने फज़ल व करम से ईमान को तुम्हारा महबूब बना दिया है और उसके गुनाह को तुम्हारे दिलों में ज़ीनत दे दी है और कुफ़्र व ना फ़रमानी और तुम्हारे लिए ना पसन्दीदा करार दिया है। ऐसे ही लोग हौशियार हैं। (तर्जुमा मक़बूल अहमद, स० ८२२, स० ८२३)

प्रश्न यह है कि यह आयत अइम्मा और उनके मानने वालों की शान में उतरी या नहीं? भला यह क्योंकर मुमकिन है कि न उतरी हो जब कि कुल का कुल कुरआन उन हीं की शान में उतरा है?

हमें स्वीकार है कि यह आयत भी उन्हीं के शान में उतरी है और इसमें उनकी बातिल बातों और अकीदों का रद्द है और वह इस तरह कि ''कुछ इमाम'' यह चाहते थे कि नबी स० उनको अपने बाद ख़िलाफ़त के लिए चुने, इसको रद्द करते हुए फ़रमाया गया कि ''अगर वह बहुत सी बातों में तुम्हारा

कहना माने तो तुम ज़रूर हलाकत में पड़ जाओगे।''

इसके बाद दूसरे इमामों और उनके मानने वालों की ओर भाषण का रूख़ मोड़ा गया कि तुम जो असहाबे रसूल की तरफ़ से बद गुमानी में फंसे हो और उनको इस्लाम से खारिज मान कर मुनाफ़िक़ और मुश्रिक तक कहने की जुरआत करते हो सुनो! कि उन्हीं अस्हाबे रसूल स० के बारे में ख़ुदा का यह फैसला है कि ख़ुदा ने ईमान को उनके लिए महबूब बनाकर उनके बारे में यह ख़ुशख़बरी सुना दी है कि ''यही नेकोकार लोग हैं'' फिर क्या तुम ख़ुदा की इस तस्दीक़ और ऐलान के बाद भी उनके ईमान और इख़लास में शक करके और उन पर गाली गलोज जाइज़ रख करके ख़ुदा को झुठला नहीं रहे हो? तुम ही फ़ैसला करो कि ख़ुदा की तुलना में इस दुश्मनी व कुरूरता को जाइज़ रख कर तुम अपना ठिकाना कहां बना रहे हो?

(٣) قل يا ايها الذين هادوا ان زعمتم انكم اولياء لله من دون الناس فتمنوا الموت ان كنتم صادقين۔ (الجمعة:٦)

(३) तर्जुमा : तुम कह दो कि ऐ वह लोग जो यहूदी हो गये हो अगर तुम यह गुमान करते हो कि तुम ही ख़ुदा के दोस्त हो न और लोग तो अगर तुम इस गुमान में सच्चे हो तो मौत की तमन्ना करो। (तर्जुमा मक़बूल अहमद, स० ८८४)

इस आयत में ख़ुदा ने यहूदियों के इस बातिल ख़याल को ज़ाहिर अंदाज़ में रद्द किया है कि नबी ज़ादे यानी बनी इस्राईल होने के कारण से वह ही ख़ुदा के दोस्त हैं दूसरा कोई नहीं।

अब प्रश्न यह है कि इस आयत और इसके मज़मून का शिया इमामों से क्या संबंध हो सकता है? मगर संबंध तो बहर

हाल ज़रूरी है, क्योंकि इमाम जाफ़र सादिक़ का फ़रमान है कि ''कुल का कुल कुरआन हमारी शान में उतरा'' तो फिर वह सम्बंध क्यों कर हो?

वह संबंध यूं है कि बनी इस्राईल को जिस प्रकार ख़ुदा के एक दूत हज़रत याकूब की औलाद होने के कारण यह बिल्कुल नाजाइज़ घमण्ड पैदा हो गया था कि बस ख़ुदा का दोस्त बनना उन्हीं का हक है इसी तरह उन ''अइम्मा मासूमीन'' को भ ''आले मुहम्मद स०'' होने का पिंदार था, और ख़ुदा के अंतिम नबी हज़रत मुहम्मद स० के साथ सिलसिला–ए–नसब कायम होने ने उनको इसी बातिल घमण्ड में मुबतला कर दिया था जो बनी इस्राईल को था। इसी कारण यहूदियों ही की तर उन्होंने भी यही दावा किया कि नजात केवल हमारे दामन से मिला हुआ है तो ख़ुदा ने उनकी तंबीह करते हुए फ़रमाया कि तुम्हारा यह दावा बातिल और औलादीये पैगम्बर पर इतराना और ख़ुदा की दोस्ती को अपने साथ खास करना बिल्कुल गलत और ना क़ाबिले ऐतना है और अगर तुम अपने को अपने दावे में सच्चा समझते हो तो फिर मौत की तमन्ना करो कि मरने के बाद सारी शैख़ी खुल जायेगी।

इन तीनों आयतों का तर्जुमा तो शिया मुतरज्जिम मक़बूल देहलवी का लिखा गया है जैसा कि हवालों से ज़ाहिर है लेकिन इनकी व्यख्या एक शीई इमाम मासूम के इस फरमान को सामने रख कर की गई है कि ''कुल का कुल कुरआन हमारी शान में उतरा'' ताकि एक ''मासूम इमाम'' की इस्मत महफ़ूज़ रहे और इस शीई रिवायत को कोई गलत साबित न कर सके।

अब इसका फैसला पाठकों के हाथ में है कि वह इस शीई रिवायत को झुठला कर इमाम जाफर सादिक को एक गैर

मासूम बुर्जुग की हैसियत से कुबूल करना गवारा करेंगे। या इस रिवायत की तस्दीक करके ऊपर की तशरीहात की रौशनी में ''अइम्मा मासूमीन'' और उनके मानने वालों का वह किरदार गवारा करेंगे जिसके सिवा इमाम के कौल की सच्चाई की कोई डगर नहीं।

इधर जाता है देखें या उधर परवाना आता है।

☆☆☆☆

कलिमा और अज़ान में इख़्तिलाफ़ और शिया इमामों और उलेमा के फ़रामीन

शीईयत को समझने के लिए हज़रत इमाम अहले सुन्नत रह० के इस मोहक्किाना तजज़िया पर निगाह रहना अनिवार्य है कि :

''इस्लामी ग्रूपों के दरमयान आपसी इख़्तिलाफ़ पर अगर गौर किया जाये तो यह हक़ीक़त सामने आयेग कि इख़्तिलाफ़ को शुरूआत किसी न किसी ग़लत फ़हमी से हुई, फिर ग़लती पर इसरार और ज़िद के नतीजे में एक नया ग्रूप वजूद में आ गया, बर ख़िलाफ़ शिया समूदाय के कि इसका वजूद किसी ग़लत फ़हमी के कारण नहीं हुआ बल्कि इस ग्रूप का कयाम एक मंसूबा बंद और सोची समझी साज़िश के तहत हुआ, क्योंकि इसका बानी एक यहूदी है जिसने मोहब्बत अहले बैत की पुर फ़रेब नक़ाब डाल कर इस्लाम की जड़ें खोदने और इस्लामी विद्धानों की किरदार कुशी में कोई कसर नहीं उठा रखी। और पैगम्बरे इस्लाम स० के लाये हुए हक़ीक़ी दीन इस्लाम को मिटा देने की हर

तरह कोशिश की, यही कारण है कि शिया सुन्नी इख़्तिलाफ़ में कोई चीज़ आंशिक नहीं है बलिक यह इख़्तिलाफ़ उसूल और अक़ीदे का है।''

इन बातों की रौशनी में गौर कीजिए तो आपको नज़र आयेगा कि मुसलमानों और शियों के दरमयान मज़हबी तौर पर कोई इत्तेहाद है ही नहीं यहां तक कि शिया अपने को मुसलमान कहलाना भी गवारा नहीं करते, जिसका ऐलान अनेक बार शिया समुदाय की ओर से हो चुका है। इस संबंध में कभी यूं कहा गया कि ''हम शिया हैं मुसलमान नहीं'' और कभी कहा गया कि ''हम मोमिन हैं मुसलमान नहीं''

शिया कलिमा भी इस्लामी कलिमे से अलग है इसी कारण महान शिया मुफस्सिर मौलवी फरमान अली अपनी पुस्तक ''दीनियात की पहली किताब'' स० १० पर शिया कलिमा बताते हैं :

لا الـه الا الله محمد رسول الله علی ولی الله و وصی رسول الله و خلیفته بلا فصل۔

इसी पुस्तक के स० १४ पर यूं लिखा है।

सब चौथा .... इस्लाम का कलिमा यह है :

अल्लाह एक है, उसका कोई शरीक नहीं, मुहम्मद उसका रसूल है, अली उसका वली है, कहो बच्चो

لا اله الا الله محمد رسول الله علی ولی الله و وصی رسول الله و خلیفته بلا فصل۔

इस कलिमे पर ईमान रखो।

फिर इसी पुस्तक के स० १६ पर लिखा है :

दीन की जड़ें पांच हैं अव्वल तौहीद यानी अल्लाह एक है, दूसरी अद्ल, अल्लाह आदिल है, तीसरी नबुव्वत, मुहम्मद उसका नबी है, चौथी इमामत,

इमाम १२ हैं, नबी के बाद इनका मर्तबा अफज़ल है और पांचवीं क्यामत, जो खुदा को वहदहु ला शरीक और आदिल न जाने, मुहम्मद मुस्तुफा स० को अपना नबी न समझे, १२ इमामों की इमामत का क़ायल न हो, और कयामत का ऐतकाद न रखता हो वह काफिर है मुसलमान नहीं।''

इन बातों की रौशनी में यह बात समझ में आती है कि शियों के हिसाब से किसी भी व्यक्ति के इस्लाम में दाख़िल होने के लिए ज़रूरी है कि वह हज़र अली रज़ि० की विलायत और उनके ख़लीफ़ा बिला फस्ल होने पर भी ईमान रखे। चुनांचे शिया कमिला में इसका इकरार भी ज़रूरी है। और ईमान के लिए यह भी ज़रूरी है कि १२ इमामों की इमामत का यकीन कर ले, क्योंकि इसका इक़रार किये बिना कोई काफिर मुसलमान नहीं हो सकता। और १२ इमामों की इमामत का इंकार करने वाला काफिर होता है, मुसलमान नहीं।

एक ओर तो १२ इमामों की इमामत और हज़रत अली रज़ि० की विलायत और ख़िलाफ़त बिला फस्ल के लिए इस प्रकार इसरार और दूसरी ओर शियों के इमाम मासूम जाफ़र सादिक़ का यह फरमान मोतबर शिया फ़िक़ही पुस्तक में मौजूद है कि :

قال الصادق علیه السلام ما من احد یحضره الموت الا و کل به ابلیس من شیاطینه من یامره بالکفر و یشککه فی دینیه حتیٰ یخرج نفسه فاذا حضرتم موتاکم فلقنوهم شهادة ان لا اله الا الله و ان محمداً رسول الله حتیٰ یموتوا۔ (من لا یحضره الفقیه، جلد اول، ص۳۲)

तर्जुमा : जाफ़र सादिक़ अ० ने फ़रमाया कि जब

तुममें से किसी की मौत का समय आता है तो इबलीस अपने शैतानों में से किसी को उस पर मुसल्लत कर देता है जो उसे कुफ़्र का हुकम देता है और उसके ज़हन में शक पैदा करता है ताकि उसकी जान उसी हालते कुफ़्र में निकल जाये पस जब तुम अपने मरने वालों के पास जाओ तो उनको **ला इला ह इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह** की शहादत की तलक़ीन करो ताकि इसी पर उनकी (मन ला यहजुरूहुल फक़ीह, जिल्द १ प्रष्ठ ३२) मृत्य हो।

शिया इमाम मासूम के इस फरमान से यह समझ में आता है कि **ला इला ह इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह** की शहादत देने वाले की मौत कुफ़्र की हालत में नहीं बल्कि ईमानी हालत में होती है गोया **ला इला ह इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह** ही इस्लामी कलिमा है और अली वलिय्युल्लाह वगैरह ऐसा इज़ाफ़ा है जिसको ईमान के लिए वह ज़रूरी नहीं करार देते न ही उसे इस्लामी कलिमा का हिस्सा मान रहे हैं।

अब इसका फ़ैसला शिया ही कर सकेंगे कि उनके इमाम मासूम को उनका नया इस्लामी कलिमा मालूम था या नहीं, और १२ इमामों की इमामत और हज़रत अली रज़ि० की ख़िलाफ़त बिला फ़स्ल के माने हुए बगैर मौलवी फ़रमान अली के फतवे के मताबिक़ इमाम जाफ़र सादिक़ का क्या अंजाम हुआ?

कलिमा ही के तरह अज़ान में भी शिया तमाम मुसलमानों से इख़्तिलाफ़ करते हुए शहादतेन "**अशहदु अन ला इला ह इल्लल्लाह व अशहदु अन्न मुहम्मदन रसूलुल्लाह** (اشهد ان لا الٰـه الا الله و اشهد ان محمدا رسول الله) के बाद तीसरी शहादत **अशहदु अन्न अलिय्यन वलिय्युल्लाह व वसिय्यु रसूलिल्लाह व**

खली फ तहु बिला फस्ल" اشهد ان عليا ولى الله و وصى رسول الله و خليفتهٗ بلا فصل को बढ़ाते हैं हालांकि शियों के एक इमाम मासूम जाफर सादिक से जो अज़ान शिया किताबों में मंकूल है वह उसी प्रकार है जो आम तौर पर सारी दुनिया के मुसलमान अपनी मस्जिदों में देते हैं और इसमें इस तीसरी शहादत का कहीं जिक्र नहीं है यहां तक कि फजर की अज़ान में **अस्सलातु ख़ौरूम मिनन्नौम** के वह शब्द भी मिलते हैं जिनका शिया हज़रत फ़ारूक़ रज़ि० का बढ़ाया हुआ क़रार देकर अब उसकी किसी भी कीमत पर भी अज़ान का हिस्सा बनाने पर तैयार नहीं होते अलबत्ता मोतबर शिया फ़िकही किताब **मन ला यह् ज र हुल फकीह**, जिल्द अव्वल स० २६१ में **अस्सलातु ख़ैरूम मिनन्नौम** के संबंध में यह रीमार्क ज़रूर मौजूद है :

لا بأس ان يقال فى صلوٰة الغداة علىٰ اثر حىّ على خير العمل الصلوٰة خير من النوم مرتين للتقية۔

तर्जुमा : इसमें कोई हर्ज नहीं कि सुबह की आज़ान में **हय्या अला ख़ौरिल अमल** के बाद २ बार **अस्सलातु खैरूम मिनन्नौम**" बतौर तक़िय्या कह लिया जाये।

यानी शिया आलिम और फ़क़ीह और **मन ला यहज़रहुल फ़क़ीह** के लेखक इब्ने बाबवैह कुम्मी फ़जर की अज़ान में **अस्सलातु ख़ैरूम मिनन्नौम** कहने की इजाज़त तो दे रहे हैं मगर तक़िय्या कर के लेकिन वह भी अपने इमाम मासूम जाफ़र सादिक़ की अज़ान नक़ल करने के बाद कहते हैं :

هـذا هـو الاذان الـصحيح لا يزاد فيه و لا ينقص منه و الـمفـوضة لـعنهـم الله قد وضعوا اخباراً و زادوا فى الاذان مـحـمـدا و اٰل مـحـمد خير البيرية مرتين و فى

بعض رواياتهم بعد اشهد ان محمدا رسول الله اشهد ان علياً ولي الله مرتين و منهم من روى بدل ذالك اشهد ان علياً اميرالمومنين حقاً مرتين ولا شك في ان علياً ولى الله و انه امير المومنين حقاً و ان محمدا و اله خير البرية و لكن ذالك ليس في اصل الاذان۔

तर्जुमा : यही वह अज़ान है जिसमें न बढ़ोत्तरी की जा सकती है और न कमी। और फिरका मुफ़व्विज़ा (उन पर अल्लाह की लानत हो) ने अपनी ओर से रिवायतें गढ़ ली हैं और अज़ान में **मुहम्मदन व आले मुहम्मद खैरूल बरिय्यः** दो मर्तबा बढ़ा लिया, और उनकी कुछ रिवायतों में अश्हदु अन्न मुहम्मदन रसूलुल्ला के बाद २ मर्तबा **अश्हदु अन्न अलिय्यन वलिय्युल्लाह** का भी इज़ाफा है और उन में से कुछ ने इसके बदले में **अश्हदु अन्न अलिय्यन अमीरल मोमिनीन हक़्क़न** दो मर्तबा को रिवायत किया है और बिला शुबा अली अल्लाह के वली हैं और अमीरूल मोमिनीन हक़ भी हैं और मुहम्मद और उनकी आल सारी मख़लूक से बेहतर भी हैं लेकिन यह शब्द अस्ल अज़ान में नहीं हैं।

इस इबारत में इब्ने बाबवैह कुम्मी ने जो मोतबर और मुस्तनद शिया आलिम हैं दो बातें कही हैं।

(१) यह कि अस्ल अज़ान में बस दो शहादतें यानी **अश्हदु अन ला इला ह इल्लल्लाह** और **अश्हदु अन्न मुहम्मदन रसूलुल्लाह** ही हैं इन दो के अतिरिक्त किसी तीसरी शहादत **अश्हदु अन्न अलिय्यन अमीरल मोमिनीन** वगैरह के इज़ाफ़ा करने की अज़ान में इजाज़त नहीं है अगरचे यह शहादतें अपनी जगह सही हैं मगर चूंकि अस्ल अज़ान में इनका ज़िक्र नहीं मिलता है इस लिए इनमें से किसी को अज़ान का हिस्सा नहीं बनाया जा सकता।

(२) अज़ान में **अश्हदु अन्न अलिय्यन वलिय्युल्लाह** वगैरह के इज़ाफे की शियों को इस लिए इजाज़त नहीं हो सकती कि अस्ल अज़ान में यह इज़ाफ़े फ़िरक़ा मुफ़व्विज़ा ने किये हैं जिन पर इब्ने बाबवैह कुम्मी ने ख़ुदा की लानत भेजी है और इस मलऊन फिरके के इन इज़ाफों को ना पसन्द किया है।

एक मोतबर और मुस्तनद शिया आलिम के इस कद्र शदीद रोकने के बावजूद शिया आज भी अपनी अज़ानों में **अश्हदु अन्न अलिय्यन वलिय्युल्लाह** और इसी प्रकार के दूसरे शब्द बढ़ाये हुए हैं। और तमाम शिया मस्जिदों से इन बढ़ाये हुए शब्दों के साथ अज़ानें होती हैं। फिर क्या सह समझना गलत होगा कि अज़ान में इन इज़ाफों के मानने वाले शियों का संबंध फ़िरका मुफ़व्विज़ा से है जिसके लिए इब्ने बाबवैह कुम्मी ने लअनहुमुल्ला (अल्लाह की उन पर लानत) के शब्दों का प्रयोग किया है।

इस घर को आग लग गई घर के चराग से

शियों की तकफ़ीर पर इत्तेफ़ाक़ क्यों नहीं?

एक प्रश्न और इसका उत्तर

सम्पदक अल–बद्र मौलाना अब्दुल अली फारूकी की पुस्तक ''तआरूफ़ मज़हबे शिया'' को पढ़ने के बाद जनाब इश्तियाक हुसैन साहब का एक ज़ाती पत्र सम्पादक अल–बद्र के नाम आया। जिसमें पुस्तक में लिखी गई बातों पर इतमीनान प्रकट करते हुए शिया को एक गुमराह गिरोह क़रार देने के साथ साथ यह प्रश्न भी किया गया कि जबकि शिया बदा, इमामत, तहरीफ़ कुरआन जैसे अकीदे रखते हैं तो फिर उनकी तकफ़ीर पर अबतक इत्तेफ़ाक़ क्यों न हो सका?
प्रश्न और उसके पस मंज़र की अहमियत को सामने रखते हुए सम्पादक अल–बद्र की ओर से इस पत्र का विस्तार से उत्तर दिया गया। चूंकि यह प्रश्न बहुत से ज़हनों में खटक पैदा करता है बल्कि यूं कहना चाहिए कि यही प्रश्न शीईयत की अस्ल हकीकत समझने में रूकावट भी बनते हैं इस कारण इसका उत्तर अनेक गुथ्थियों को सुलझा कर हक़ को स्वीकार करने के लिए दरवोज़े खोल सकता है।
अवाम के फ़ायदे के लिए हम पत्र और उसका उत्तर प्रकाशित कर रहे है। (इदारा)

मोहतरम!

अस्सलामु अलैकुम!

उम्मीद है कि मिजाज़ ग्रामी बखैर होंगे। अपने तआरूफ़ के तौर पर मैं आपसे अर्ज़ कर दूं, इधर माज़ी करीब में मैंने आंजनाब की किताब ''तआरूफ़ मज़हबे शिया'' मुतालिआ की है, हक़ीक़त यह है कि इस किताब के मुताले ने मेरे ज़हन को तबदील कर दिया, जैसा कि आपने इब्तेदा में ही फ़रमाया है

> ''मुसलमानें की बहुत बड़ी अकसरियत इस ग़लत फ़हमी का शिकार है कि शिया व सुन्नी इस्लाम ही के दो फ़िरक़े हैं और उनके दरमयान कुछ फुरूअी इख़्तिलाफ़ात हैं जिन्हें दूर किया जा सकता है'' पृष्ठ न० ६

मैं न सिर्फ़ यह कि इस ग़लत फ़हमी में मुबतला था बल्कि अपने हलक़ा–ए–अहबाब में इस नज़रिये की तशहीर भी किया करता था। लेकिन इस मौज़ूअ पर किसी इल्मी हल्के की तरफ़ से पैश कर्दा यह इबारत मेरे लिए नई थी इस लिए यह मालूमात में इज़ाफ़ा और हैरत का सबब बनी। मैं आपके इस दावे को आसानी से रद्द कर सकता था लेकिन मजबूर हो गया आपकी इस मुदल्लल गुफ़्तगू से जो आपने मुख़्तलिफ़ उनवानात के तहेत की है। मसलन मस्ला बदा, मस्ला इमामत, तहरीफ़े कुरआन, अंबियाए किराम के मुतअल्लिक़ शियों के अक़ीदे वगैरह उनवानात के तहत जो मुदल्लल तशरीह आपने दी है इसने मुझे सोचने पर मजबूर किया कि वास्तव में मामला इस तरह नहीं है जिस प्रकार मैं सोचा करता था बल्कि यहां तो बुनियादें ही अलग हैं। अलबत्ता इसके बाद एक अहम प्रश्न जो मेरे दिमाग में पूरी तरह उभर कर आ गया और अब भी मेरे ज़हन को परेशान किये हुए है दर्ज ज़ैल है। चूंकि इसका उत्तर

आपकी पुस्तक में न पा सका इस लिए आपको यह अर्ज़ दाश्त भेज रहा हूं उम्मीद है कि आंजनाब इस तिश्ना कामी में मेरी सहायता करेंगे।

जैसा कि आपने दीबाचे में लिखा है

अगर मिर्ज़ा गुलाम अहमद कादयानी और उनकी उम्मत को ख़्त्मे नबूवत से मुंकिर होने के कारण इस्लाम के दायरा से निकला हुआ माना जा सकता है तो खुदाए अलीम खबीर की ज़ात में जिहालत ढूंढने वालों, अंतिम नबी स० के बाद ठीक उन्हीं की सिफ़ात व अख़्तियारात की हामिल एक दो नहीं बल्कि पूरी १२ हस्तियों के वुजूद का अक़ीदा रखने वालों और खुदा की पाक व मुक़द्दस किताब कुरआन मजीद पर ईमान न रखने वालों को क्योंकर मुसलमान कहा जा सकता है।

बिल्कुल यही प्रश्न मेरे ज़हन में भी है और इस बढ़ोत्तरी के साथ कि क़ादयानियों को तो हम एक दशक भी बर्दाश्त न कर सके। हमने उन पर हरमैन शरीफ़ैन के दरवाज़े बन्द कर दिये उनको मुकम्मल तौर पर काफ़िर क़रार दिया उनसे समाजी बाइकाट किया उनसे मुसलमानों जैसे नाम रखने अपनी इबादत के स्थलों को मस्जिद का नाम रखने का हक छीन लिया। यह कार्य चूंकि हमने एकजुट हो कर किया इस कारण **लन तजतमिअ उम्मती अला ज़लालतिन औ कमा क़ाल स०** वाली हदीस के मुताबिक़ हमने ठीक कदम उठाया। लेकिन शियों के संबंध में यह कार्य हम हज़ार बारह सौ वर्ष में भी न कर सके आख़िर ऐसा क्यों?

जहां ऊपर वाली हदीस की रौशनी में क़ादयानियत के मसले के संबंध में मुसलामानों के इजतमाई फ़ैसले पर मुझे

खुशी होती है वहीं शियों के सिलसिले में मेरी यह उलझन बढ़ जाती है। शियों के सिलसिले में किसी समय में कोई ऐसा इजतेमाइ फ़ैसला क्यों न हो सका। अगर हमारे अंदर कोई टकराव है तो ठीक है। यह हमारी ईमानी कमज़ोरी होगी लेकिन प्रश्न यह है कि उन ताबअ़ीन तबअ़े ताबअ़ीन, चारों इमाम, मुफ़स्सिरीने इज़ाम, मोहद्दिसीन व मुजद्दिदीन किराम की समय समय मौजूदगी के बा वजूद यह मसला क्यों हल नहीं हुआ जबकि उनके तकवा ही नहीं तहक़ीक़ और तंक़ीहाते दीनी, दक़ीक़ा रसी, ठीक राय और मुस्लिम उम्मत के तईं सलामत रवी की गहरी फ़िक्र की क़सम खाई जा सकती है। इन धर्मगुरूओं ने अपने समय में इस मसले को इस तरह क्यों न हल किया जिस प्रकार आज हमने मसला कादयानियत को हल कर लिया। मेरी उलझन बढ़ जाती है जब यह देखता हूं कि अलीगढ़ मुस्लिम युनिवसर्टी की जामा मस्जिद में हम मुसलमानों की नमाज़े जुमा के बाद यही बदा, इमामत, तहरीफ़े कुरआन आदि का अक़ीदा रखने वाले हज़रात भी नमाज़े जुमा बा जमाअत अदा करत हैं। यही नहीं बल्कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के मुमताज़ तरीन हस्ती मौलाना अली मियां नदवी जिस मुस्लिम प्रसनल्ला बोर्ड के अध्यक्ष हैं उसी बोर्ड के उपाध्यक्ष मौलाना कल्बे आबिद हैं जो शिया हैं। जबकि वह बोर्ड "मुस्लिम परसनल्ला बोर्ड" है शिया प्रसनल्ला बोर्ड नहीं। आख़िर क्यों क्या मौलाना अली मियां को शियों के उन ख़राब और बेकार अक़ीदों के बारे में इल्म यानी जानकारी नहीं या खुदा न ख़्वास्ता मौलाना अली मियां की ईमानी हिस इतनी कमज़ोर हो गई है? मैं इन दोनों में से कोई बात भी सोच नहीं सकता .... नतीजा यह है कि मेरी इस उलझन का कोई हल मेरे पास नहीं है और न आपकी पुस्तक में प्राप्त हो सका। इस

कारण यह चिटठी लिख रहा हूं मुमकिन है मेरा यह संदेह भी किसी गलत फहमी, कम इल्मी या गलत मालूमात का नतीजा हो इसी लिए अर्ज़ है कि मुदल्लल उत्तर देकर मेरी मदद करें और इंदल्लाह माजूर हूं।

मेरी एक और ख्वाहिश है किसी भी नज़रिये या मकतबा–ए–फिक्र को समझने के लिए मेरी कोशिश यह होती है कि बिला वास्ता इसका मुताला करूं तो वह नतीजा अधिक से अधिक हकीकत पर फिट होगा। इसी लिए आपसे कहना है कि जिन शिई पुस्तकों (खुमैनी साहब समेत) के आपने जो हवाले दिये हैं उनके तफ़सीली नाम, उनके प्राप्त करने के पते लिख दें तो नवाज़िश होगी। क्योंकि मेरी चाहत और कोशिश के बावजूद वह लट्रेचर नहीं प्राप्त हो सका। फ जज़ाकुमुल्लाह ख़ैरल जज़ा

फक़त

इश्तियाक़ हुसैन

२१२/६३ रजबी रोड, कानपुर

दिनांक १५ दिसम्बर १६८४ ई०

बिसमिल्लाह हिर रहमा निर रहीम

अख़ी फ़ी दीनिल्लाह

अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह व बरकातुह

आपकी भेजी हुई चिटठी घर के पते पर मेरे सफ़र के दौरान आयी थी जो वापसी पर मिली। मसरूफ़ियात के कारण जवाब देने में थोड़ी देरी हो गई है जिसके लिए माफ़ी चाहता हूं।

आपकी तफ़सीली चिटठी को मैं दो भाग में बांटता हूं जो मेरे शब्दों में इस प्रकार है :

पहला भाग .... जिसमें आपने मेरी पुस्तक ''तआरूफ़

मज़हबे शिया'' के पढ़ने के बाद इसमें दी गई दलीलों की रौशनी में अपने उस मौकि़फ़ की तबदीली की खबर दी है कि ''शिया सुन्नी इस्लाम ही के दो ग्रूप है और उनके दरमयान फुरूअी इख़्तिलाफ़ात हैं'' और अब आपके कहने के मुताबिक़ आप यह सोचने पर मजबर हो गये हैं कि मामला ऐसा नहीं है बल्कि बुनियादें ही अलग अलग हैं।

दूसरा भाग .... जिसका खुलासा यह है कि बदा, तहरीफ़ कुरआन और इमामत जैसे अकीदे का हामिल होने के बावजूद शियों को मुत्तफ़िक़ा तौर पर काफ़िर क्यों नहीं गरदाना गया जबकि इस्लाम की १४०० वर्ष की तारीख़ में ऐसे बेशुमार उलमा पैदा हुऐ जिनके तकवा, तहकीक व तजस्सुस, तंक़ीहात दीनी। दक़ीक़ा रसी, सलाबते राय और मुस्लिम उम्मत के तईं सलामत रवी की गहरी फ़िक्र की कसम खाई जा सकती है। इसके बरख़िलाफ़ क़ादयानियों को मुस्लिम उम्मत बर्दाश्त नहीं कर सकी और एक दशक भी न गुज़रा था कि मुत्तफ़िक़ा तौर पर उनकी तकफ़ीर कर दी गई?

आपका पेशे नज़र ख़त इसी दूसरे भाग में उप्तन्न मंतिक़ी व नफ़सियाती प्रश्न का मुझसे उत्तर प्राप्त करने के लिए ही है मगर इस संबंध में कुछ बात करने के पूर्व पहले भाग के सिलसिले में इस बात के लिए आपका शुक्रिया अदा कराना अपना अख़लाक़ी फ़रीज़ा समझता हूं कि अपने मौकि़फ़ के विरूध होने के बावजूद आपने गैर जानिबदारी और बे तअस्सुबी के साथ मेरी पुस्तक को पढ़ा है जबकि आज के इंतशारी दौर में इसके बहुत ही कम उदाहरण मिलते हैं।....... फिर ख़ुदा के इस ख़ास फ़ज़्ल पर आपको धन्यवाद देता हूं कि उसने आपको हक़ को समझने के लिए बसीरत दी और आप बहर हाल यह यक़ीन करने पर मजबूर हुए कि फ़ितना शीईयत का इस्लाम से

दुश्मनी का संबंध है। अब आइये अपने अस्ल प्रश्न की ओर! तो इस संबंध में सिर्फ़ इतना कह दूं कि अगर आपने इसी पुस्तक के पृ० १३५ के उंवान "कितमाने मज़हब" के मंदरजात को ठीक से पढ़ लिया होता तो बड़ी हद तक आपको तसल्ली हो जाती।

मेरे मोहतरतम भाई! यह हक़ीक़त है कि शिया अपने अस्ल धर्म को छिपाने के संबंध में जिस प्रकार का एहतेमाम करते हैं उसकी विश्व में कोई मिसाल नहीं मिलती है। कितमान, तक़िय्या, तहरीफ़। यह तीन ऐसी ढालें हैं जिनके सहारे अपने असल और खराब चेहरा को छिपाये रखने में वह सफल रहे हैं। मेरे इस दावे की सच्चाई के लिए यही एक बात काफी है कि विश्व के तमाम धर्म के मानने वाले अपने धर्म की तबलीग व उसके प्रचार व प्रसार को अनिवार्य समझते हैं और इसके विरूध शिया धर्म को छिपाये रखना अनिवार्य समझते और मानते हैं। आख़िर ऐसा क्यों है? हमारे देश में लाखों की शियों की आबादी है उनके मदसरे और मकातिब भी सरगर्म हैं और पत्रिकाऐं व पम्फ़लेट भी। लेकिन अगर आप उनके धर्म को समझने के लिए उसकी हदीस, उसूले हदीस, तफ़सीर, रिजाल और कलाम व फ़िक़ा इतियादि की असल और मुस्तनद व मुसल्लम पुस्तके प्राप्त करना चाहें तो नहीं मिल सकतीं। नहजुल बलागा, अल जामिउल काफी, रिजाल कश्शी, मन ला यह जुरूहुल फ़क़ीह, तफ़सीरे साफ़ी और एहतेजाजे तब्रसी आदि जैसी पुस्तकें शियों के प्रकाशक क्यों नहीं प्रकाशित करते? और अगर इत्तिफ़ाक़ से कोई पुस्तक प्रकाशित भी होती है तो नाकिस और मुहर्रफ़ (जैसे कि नहजुल बलागा न्या प्रकाशन लखनऊ जिसका प्रकाशन से मिस्र का मुकाबला करके आप आसानी के साथ कमी व तहरीफ का पता लगा सकते हैं) यही कारण है कि हिन्द और बाहरी हिन्दुस्तान के किसी भी ऐसे प्रकाशनार्थ इदारे का मैं आपको

पता बताने के लायक नहीं हूं जहाँ से आपको वह किताबें ग़ैर मुहर्रफ़ तौर पर प्राप्त हो सकें। अलबत्ता कम अज़ कम एक एक सुन्नी व शिया इदारे का पता बता दे रहा हूं जहां यह सब पुस्तकें मौजूद हैं। सुन्नी इदारा दारूल मुबल्लिग़ीन लखनऊ और शिया इदारा है मदरसतुल वाईज़ीन लखनऊ। कुछ पुस्तकें नदवतुल उलमा लखनऊ और दारूल उलूम देवबन्द के पुस्तकालयों में भी मौजूद हैं जिनसे मैंने ज्ञान प्राप्त किया है। क़ादयानियत या किसी भी इस्लाम के नाम लेवा ग्रूप और शीईयत के दरमयान यही वह बुनियादी अन्तर है जिसके कारण शीईयत की अस्ल तस्वीर हमारे उलेमा को आम तौर पर नज़र न आ सकी और तक़िय्या की चादर डाल कर "अस्ल धर्म को छुपाने वाले इस ग्रूप के संबंध में आम उलेमा और मुहक़्क़िक़ीन कोई फ़ैसला कुन बात न कह सके। तहरीफ़े कुरआन के मसेले को पूरे बल के साथ भर पूर दलीलों की रौशनी में मेरे ज्ञान और मुताले के मुताबिक सबसे पहले इमाम अहले सुन्नत हज़रत मौलाना अब्दुल शकूर साहब रह०. ने पेश किया है और उन्होंने केवल इसी बुनियाद को शियों की तकफ़ीर के लिए काफ़ी करार दिया है। लेकिन आपको यह जान कर हैरत होगी कि शुरू में खुद हज़रत मौलाना अब्दुल शकूर साहब रह० को भी इस बात पर शरहे सद्र न था कि शिया वाक़ई तहरीफ़े कुरआन का अक़ीदा रखते हैं क्योंकि अगर उनके उलेमा और धर्म के ज्ञानियों से सीधा प्रश्न किया जाये कि क्या आप लोग कुरआन के बदलने के कायल हैं? तो वह दो टोक उत्तर दे देंगे कि हर्गिज़ नहीं। यह हम पर इलज़ाम है (इस कारण कि वह अच्छी तरह इस बात को जानते हैं कि कुरआन में तहरीफ की बात करने के बाद शियों की कुरआन दुश्मनी बिल्कुल साफ़ ज़ाहिर हो जायेगी और फिर किसी को उनकी तकफ़ीर में कुछ भी

ताम्मुल न होगा।) चुनांचे इसी मुगालते की बुनियाद पर हज़रत इमाम अहले सुन्नत ने अपनी शुरूआती तस्नीफ़ ''इल्मुल फ़िक्ह'' में न सिर्फ़ शिया को एक इस्लामी ग्रूप स्वीकार किया है बल्कि उनसे शादी बियाह को भी जायज़ करार दिया है। बाद में जब एक मुसल्लम और मोतबर शिया आलिम नूरी तब्रसी की ख़ास इसी मौजू पर पुस्तक ''फ़स्लुल ख़िताब फी तहरीफ़े किताबि रब्बिल अरबाब'' का एक नुस्ख़ा किसी प्रकार उनके हत्थे लग गया जिससे उनको हकीकत में यह ज्ञान प्राप्त हो गया कि शिया कुरआन मजीद में पांच प्रकार की तहरीफ़ात का अकीदा रखते हैं। और खुद अल्लामा नूरी तब्रसी के ब कौल यह शियों का मुत्तफक अलैह अक़ीदा है और उलमाए मुतकद्दिमीन व मुताअख़्ख़िरीन शिया में से केवल चार आलिमों ने तहरीफ़े कुरआन के अक़ीदे का इंकार किया है उनके अलावा सब शिया तहरीफ़ का अक़ीदा रखते हैं। फिर वह चार आलिम भी खुद तहरीफ़ का इंकार करते हैं मगर तहरीफ़ का अक़ीदा रखने वालों की तकफ़ीर की वह भी हिम्मत नहीं कर पाते हैं मौजूदा दौर के उलेमा शिया का भी यही मौक़फ है कि समय आने पर वह इन्हीं चार आलिमों का क़ौल नक़ल करके अदमे तहरीफ़ पर दलील तो देते हैं मगर क़ायलीने तहरीफ़ की तकफ़ीर नहीं करते और क्योंकर कर सकते हैं जबकि उनके अइम्मा मासूमीन सें मंकूल २००० से अधिक रिवायते तहरीफे कुरआन के इस्बात में मौजूद हैं? तब हज़रत इमाम अहले सुन्नत को शियों के अक़ीदा तहरीफ़े कुरआन का यकीन हुआ। ख़ुलासा कलाम यह है कि शियों के अपने अस्ली धर्म के छिपाने में इस एहतमाम के काण हमारे उलेमा आम तौर पर उनके अक़ीदों के बारे में जानकारी प्राप्त नहीं कर पाये। यह बात ज़ाहिर में चाहे कितनी ही हैरत अंगेज़ हो लेकिन हक़ीक़त यही है कि शियों

की तकफ़ीर पर इत्तेफ़ाक़ न हो सका। अल्लामा इब्न तैमिया, काज़ी अबू बक्र बिन अरबी, हज़रत शाह अब्दुल अजीज़ देहलवी, हज़रत मौलाना हैदर अली साहब, हज़रत मौलाना इहतिशामुद्दीन साहब, अल्लामा बहरूल उलूम लखनवी, अल्लामा ख़तीब और इमाम अहले सुन्नत ने किसी न किसी प्रकार इस धर्म का पता लगाया और ख़ुदावन्द कुद्दूस ने इन लोगों से इस धर्म की रद्द में काफी काम भी लिया। मगर यह अफ़सोस नाक हकीकत है कि शियई प्रोपेगण्डा के सामने इन हज़रात की तहक़ीकात पर बहुत कम तवज्जुह की गई और हमारे उलेमा और मोहक़्क़िक़ीन ने इन ह़ज़रात को हद से बढ़ जाने वाला कह कर इतमीनान कर लिया और उनकी तहक़ीक़ात पर कान धरना गैर ज़रूरी ख्याल किया।

इस अफ़सोस नाक हक़ीक़त की निशान दिही के लिए मैं सिर्फ़ दो मिसालें पेश करता हूं जिससे आपको खूब अंदाज़ा हो जायेगा कि हमारे उलेमा ने क्या रविश अपनाई है।?

१. हज़रत मौलाना मुहम्मद मंज़ूर नोमानी का हमारी जमाअते उलेमा में क्या स्थान है इससे आं मोहतरम भी वाक़िफ़ होंगे। इस्बाती मौज़ूआत के साथ साथ रद्द के मौजू पर भी मौलाना ने काबिले लेहाज़ कार्य किया है। चुनांचे रद्दे बिदअत और क़ादयानिया पर उनकी अनेक पुस्तकें हैं और काफ़ी समय तक उनकी पत्रिका ''अल–फुरक़ान'' रद्दे बिदअ़त के लिए वक़्फ़ रही। मौलाना को इमाम अहले सुन्नत से बहुत क़रीबी संबंध रहा। वह उनके इदारा दारूल मुबल्लिगीन में भी रहे। उनके साथ मुनाज़िरों में भी शरीक हुए। मौलाना के ज्ञान में अच्छी तरह यह बात थी कि हज़रत इमाम अहले सुन्नत को रद्दे शीईयत पर काफ़ी इसरार है। उनके सामने हज़रत इमाम अहले सुन्नत की पुस्तकें भी थीं। और उनकी पत्रिका

''अल–नज्म–– भी। लेकिन इतनी कुरबत और संबंध के बावजूद मौलाना ने कभी संजीदगी के साथ शीईयत को समझने की कोशिश नहीं की। न ही हज़रत इमाम अहले सुन्नत की पुस्तकों से लाभ उठाया और न ही उनके कार्य को उस वक्अत के साथ देखा और समझा जिसका वह हक़दार था। नतीजा यह हुआ कि एक अहम मौक़ा प्राप्त होने के बावजूद मौलाना खुद अपने बयान के मुताबिक़ उपनी उम्र के अस्सी वर्ष पूरे होने तक शिया धर्म से नावाक़िफ़ ही रहे। लिहाज़ा उन्होंने कभी शिया धर्म के बारे में अपनी राय का या तो इज़हार किया ही नहीं और अगर कभी किया तो उसी अंदाज़ में जिस अंदाज़ में हमारे आम उलमा इस धर्म से बेखबरी और ना वाकिफियत की बुनियाद पर कर दिया करते हैं।

हुस्न इत्तिफ़ाक़ से हालिया ईरानी इंक़लाब के बाद कुछ ऐसे हालात सामने आये कि हमारे कई मोहक्किक़ उलमा को ईरान के सरकारी धर्म शीईयत के सिलसिले में तहकीक करने और आम प्रोपेगण्डा से हट कर उसकी असलियत का पता लगाने का एहसास हुआ। उन उलेमा में से एक हमारे हज़रत मौलाना मुहम्मद मंजूर नोमानी साहब दामत बरकातहुम की ज़ात ग्रिामी भी है। चुनांचे उन्होंने इस बुढ़ापे के आलम में दा वर्ष की रात व दिन महनत के बाद जो कुछ इस धर्म के संबंध में समझा वह हरगिज़ उस से अलग नहीं है जो आज से कम अज़ कम ५० वर्ष पहले इमाम अहले सुन्नत हज़रत मौलाना अब्दुल शकूर साहब रह० ने समझा और उसे कौम के सामने पेश किया था .... ज़्यादा विस्तार के लिए हज़रत मौलाना मुहम्मद मंजूर नोमानी की ताज़ा तरीन तस्नीफ ''ईरानी इंकलाब इमाम खुमैनी और शीईयत'' का मुताला करें।

(२) एक पुराने नदवी फाज़िल और मश्हूर मुसन्निफ़ व

मुहक़्क़िक़ और ग़ालिबन हज़रत मौलाना अली मियां मद्द ज़िल्लहु के दर्सी साथी मौलाना मुहम्मद नाज़िम साहब नदवी (मुक़ीम हाल कराची) ने ''अल–फुरक़ान'' लखनऊ के मार्च व अप्रैल १९८४ ई० के अंक में अफ़क़ारे ख़ुमैनी पर एक तंक़ीदी मज़मून पढ़ने के बाद हज़रत मौलाना नोमानी मद्द ज़िल्लहु के नाम एक ख़त लिखा जो ''अल–फुरक़ान'' के अगस्त १९८४ ई० के अंक के पृ० ६–१० पर प्रकाशित हुआ है। पूरा ख़त तो काफ़ी लम्बा है जिसे यहां लिखा नहीं जा सकता है। मुनासिब समझें तो ''अल–फुरक़ान'' का यह अंक मंगवा कर पढ़ लें अलबत्ता ज़ैल का इक़्तबास मुलाहिज़ा फ़रमायें और गौर करें कि मौलाना ने किस क़द्र सफ़ाई और जुरअत के साथ एक बड़ी बीमारी (रोग) की निशान दिही की है।

> ''हम नदवियों का भी यही हाल रहा कि शीई अक़ायद का सरसरी ज्ञान प्राप्त किया उनकी उम्महातुल कुतुब से भी सिर्फ़ नाम की हद तक जानकारी रही मगर उनका मुताला करने का दाइया और वलवला पैदा नहीं हुआ। लखनऊ में बहुत दिनों तक ठहरने के बावजूद और शीई व सुन्नी आवेज़िश और तसादुम के बावजूद उनके अक़ीदों से बिल्कुल बे ख़बरी रही बल्कि सच्ची बात अर्ज़ कर दूं कि **हज़रत मौलाना अब्दुल शकूर साहब हामी–ए–सुन्नत की इस तहकीक को मानने को जी नहीं चाहता था कि फ़िरक़ा शिया क़ुरआन करीम को मुहर्रफ़ और ग़ैर महफ़ूज जानता और मानता है।** हमारा ख़्याल था कि मुनाज़रा करने से एक खास मिज़ाज बन जाता है और अपने मुख़ालिफ़ के मुतअल्लिक़ मबनी बर गुलू

व मुबालग़ा बातें मंसूब करने लगता है।

फिर इसी ख़त में आगे मौलाना ने लिखा है कि ईरानी इंक़लाब के बाद जब वहां से शीई लिट्रेचर आना प्रारम्भ हुआ तो उनके दिल में शिया धर्म की असल हक़ीक़त मालूम करने का जज़्बा पैदा हुआ और फिर क्या हुआ मौलाना ही के शब्दों में सुनिये।

> चुनांचे इस दाइया के अंतरगत उनकी मोतबर पुस्तकों को पढ़ना शुरू किया। उसूले काफ़ी, कलीनी म. ३२६ हिजरी, मजलिसी मु. १११० हिजरी की कई पुस्तकों को पढ़ना शुरू किया और नूरी तबर्सी की फ़सलुल ख़िताब ..... का एक नुस्खा मुझको मिल गया उन पुस्तकों के पढ़ने से यह बात साफ साबित हो गई कि **इस्ना अशरी फ़िरक़ा क़ुरआन करीम के मुहर्रफ होने पर यक़ीन रखता है और तक़िय्या की बिना पर क़ुरआन के महफ़ूज होने का ऐलान करता है और हज़रत मौलाना अब्दुल शकूर साहब ने जो कुछ उनके अक़ीदों के सम्बंध में लिखा है वह बिल्कुल ठीक है इसमें किसी ग़ुलू और मुबालग़े पर मबनी बदगुमानी को दख़ल नहीं उनकी अकसर मोतबर पुस्तकों में क़ुरआन करीम के मुहर्रफ व गैर महफ़ूज़ होने का सराहत के साथ ज़िक्र मौजूद है।**

इन दो उदाहरणों को पेश करके मैं आपके प्रश्न के उत्तर में यह कहना चाहता हूं कि शिया की तकफीर पर इत्तेफ़ाक़ न होने का अहम कारण तो यही है कि दुनिया के तमाम धर्म के ख़िलाफ़ इस धर्म में धर्म को छुपाना अनिवार्य है जिसका इस धर्म के मानने वालों ने भरपूर एहतेमाम किया इसका कुदरती

नतीजा हज़रत मौलाना मुहम्मद मंजूर नोमानी के शब्दों में यह निकला कि जब तक प्रेस के द्वारा अरबी फ़ारसी की दीनी पुस्तकों के प्रकाशन का सिलसिला शुरू नहीं हुआ था। और हाथ ही से पुस्तकें लिखी जाती थीं। हमारे उलेमा आम तौर पर शिया धर्म से ना वाक़िफ़ रहे क्योंकि वह पुस्तकें सिर्फ़ ख़ास ख़ास शिया उलेमा ही के पास होती थीं। और वह किसी गैर शिया को हवा भी नहीं लगने देते थे। (पुस्तक मज़कूरा बाला पृ० २३) ओर फिर जब पुस्तकें छपने का रिवाज हो गया और कुछ मुहक़्क़िक़ व बुद्धिमान उलमा ने इस धर्म से बाख़बर होकर उसकी हलाकत आफ़रीनियों की ओर रूख किया तो आम उलेमा ने शीई प्रोपेगण्डे के मुक़ाबले में उनकी तहक़ीक़ात को तवज्जो के लायक़ नहीं समझा और माना और न खुदह ही तहक़ीक़ और तलाश की ज़रूरत समझी .... अब रहा आपका यह कहना कि

> बर्रे सग़ीर हिन्द व पाक की मुमताज़ तरीन हस्ती मौलाना अली मियां, जिस मुस्लि प्रसनल्ला बोर्ड के अध्यक्ष हैं उसी बोर्ड के उपाध्यक्ष मौलाना कल्बे आबिद हैं जो शिया हैं जबकि वह बोर्ड मुस्लिम प्रसनल्ला है शिया प्रसनल्ला बोर्ड नहीं आख़िर क्यों? क्या मौलाना अली मियां को शियों के उन ख़राब अक़ीदों का ज्ञान नहीं? या ख़ुदा न ख़्वास्ता अली मियां की ईमानी हिस इतनी कमज़ोर हो गई है। मैं इन दोनों मेंसे कोई बात भी नहीं सोच सकता''।

तो इसके जवाब में आपकी इत्तेला के लिए केवल इतना ही कह दूंगा कि अब हज़रत मौलाना अली मियां मद्द ज़िल्लहु की भी इस संदर्भ में एक ताज़ा तसनीफ़ प्रकाशित हुई है

जिसका पूरा नाम ''दीने इस्लाम और अव्वलीन मुसलमानों की दो मुतज़ाद तस्वीरें अक़ाएद अहले सुन्नत व अक़ाएद फ़िर्क़ा इस्ना अशरिया का तक़ाबुली मुतालिआ'' है।

मुनासिब होगा कि आप खुद इस पुस्ताक को पढ़ने के बाद मौलाना के ख़यालात से ज्ञान प्राप्त कर लें इसके बाद आपके प्रश्न का ताल्लुक़ मौलाना के अमल से होगा जिसके जवाब देने की जिम्मेदारी मेरी नहीं बल्कि खुद मौलाना मद्द ज़िल्लहु की होगी।

आपके जज़्बा–ए–हक़ तलबी का एहसास करते हुए मैंने समय निकाल कर आपको विस्तार से जवाब लिखा है और इस बात की पूरी कोशिश की है कि आपको इतमीनान हो सके। والله یهدی من یشاء الی صراط مستقیم۔

उम्मीद है कि मेरी मसरूफ़ियात का ख़याल करते हुए आप बार बार मुझे इतने विस्तार से जवाब लिखने का पाबन्द न करेंगे

ख़ुदा करे मिज़ाज ग्रिामी मय जुमला मुतअल्लिक़ीन ब आफियत हों।

वस्सलाम

अब्दुल अली फारूकी
११ रबीउस्सानी १४०५ हिजरी

तलबीसात व इंहिराफ़ात

यानी

इस्लामी तालीमात और इस्लामी अहकाम के मुक़ाबले में शिया धर्म की तालीमात व अहकाम का बयान मुस्तनद व मोतबर शिया पुस्तकों के हवाले से, इस प्रश्न के साथ कि क्या दोनों क़िस्म का सम्बंध इस्लाम से जोड़ा जा सकता है?

इस्लाम और शीईयत

एक अक़ली जायज़ा

किस कद्र हंसने के लायक़ है यह सूरते हाल कि वह एक चीज़ जिसे शिया अहले इस्लाम से अपने इख़्तिलाफ की बुनियाद बावर कराते हैं वह हज़रत अली रज़ी० की ख़िलाफ़त बिला फ़स्ल का मामला है और यह मामला बजाय ख़ुद वह है जिसे मामले वाले ने ख़ुद तैय कर लिया था।

शिया सुन्नी इख़्तिलाफ़ात पर सरसरी निगाह डालते हुए मैं चाहता हूं कि सिर्फ़ अक़ली हैसियत से इख़्तिलाफ़ात की माकूलियत और फ़रीक़ैन के मौक़िफ़ का जायज़ा लिया जाये, तो इस संबंध में फ़रीक़ैन के दरमयान वह एक बुनियादी इख़्तिलाफ़ जिससे किसी को इंकार नहीं है, यह है कि शिया पैगम्बरे इस्लाम स० की वफ़ात के बाद उनके जानशीन की हैसियत से दीनी व दुनियावी क़यादत के लिए पैग़म्बर के ख़ानदान के अफ़राद को यके बाद दीगरे नामज़द करते हैं और उनका यह कहना है कि चूंकि पैगम्बरे इस्लाम की वफ़ात के समय उनकी कोई औलाद नरीना न थी इस लिए उनकी विरासत उनकी पुत्री की ओर चली गई और वह इस प्रकार रसूल स० के मृत्यु के बाद हज़रत अली रज़ि० (जो हज़रत फ़ातिमा रज़ि० के पति और पैग़म्बरे इस्लाम के दामाद थे) ख़िलाफ़त के हक़दार हुए, उनके बाद उनके बड़े पुत्र हसन फिर छोटे पुत्र हुसैन रज़ि०

फिर उनके बेटे, फिर बेटे के बेटे ..... यहां तक कि अंतिम इमाम जो गारे सुर्रा मन रआ में छिपे हुए हैं।

दरमयान के तमाम क़ाबिले ज़िक्र अक़ीदे को नज़र अंदाज़ करते हुए मैं सिर्फ़ इसी एक अक़ीदे के मुतअल्लिक़ अपनी बात कहना ज़रूरी समझता हूं कि शिया अक़ीदे के लेहाज़ से पैगम्बरे इस्लाम की मृत्य के बाद १२ इमामों की इमामत में दुनिया वालों की नजात छिपी हुई है यही १२ इमाम हैं जिनको दीन व दुनिया दोनों की कयादत का हक प्राप्त है। इनके सिवा जो व्यक्ति अपने तौर पर इन १२ के अतिरिक्त किसी को चुने। तो यह सब कुछ बातिल होगा। और यह १२ इमाम एक एक करके सब ही पैगम्बरे इस्लाम स० के ख़ानदान बल्कि उनकी औलाद से सम्बंधित हैं।

इसके विरूध सुन्नियों का यह कहना है कि पैग़म्बरे इस्लाम स० ने जो दीन पेश किया और इसको फैलाया इसमें बुनियादी तौर पर नस्ल परस्ती का बहुत ज़्यादा विरूध किया गया है। पैग़म्बरे इस्लाम स० ने इम्प्रलिज़्म पर बहुत ज़बरदस्त चोट पहुंचाई और रंग व नस्ल, क़बीला व ख़ानदान और इस जैसे अन्य दूसरे पैमानों को ''असबियते जाहिलिया'' क़रार देते हुए उन सारे पैमानों को अपने पैरों नीचे कुचल कर ऐलान किया कि ''तुममें का सबसे ज़्यादा बा इज्ज़त अल्लाह की नज़र में वह है जो सबसे बड़ा मुत्तकी हो'' इसी कारण पैगम्बर के जानशीनों के लिए फिर इन ही टूटे हुऐ पैमानों की किरचें जमा करना पैग़म्बर के धर्म की रूह के विरूध है।

ख़ुलासा यह है कि सुन्नी कहते हैं कि पैगम्बर अ० के जानशीनों के लिए उनके ख़ानदान और घराने का व्यक्ति या उनकी औलाद में से होना बिल्कुल ज़रूरी नहीं है बल्कि दीनी व दुनियवी कयादतों व इमामतों के लिए जिन मख़ासूस

सलाहियतों की जरूरत है वह सलाहियतें जिन लोगों में भी पाई जायेंगी वह उन ओहदों को प्राप्त कर लेंगे। चाहे उन से पैगम्बरे इस्लाम स० का खानदानी रिश्ता कुछ भी न हो।

पैग़म्बरे इस्लाम स० की मृत्य के बाद उनके जाननशीन की हैसियत से हज़रत अबू बक्र रज़ि० का इंतेख़ाब अमल में आया। और तमाम रसूल के मित्रों ने उनको रसूलुल्लाह स० के जांनशीन व ख़लीफ़ा की हैसियत से स्वीकार करके उनके हाथ पर बैअत कर ली।

उन रिवायात को अगर आंख बंद करके कुछ सोचे समझे बगैर स्वीकार कर लिया जाये जिनसे मालूम होता है कि हज़रत अली रज़ि० ने हज़रत अबू बक्र रज़ि० के हाथों पर बैअत छः महीने गुज़रने के पश्चात ही की। तो उनसे ज़्यादा से ज़्यादा यही साबित किया जा सकता है कि हज़रत अली रज़ि० ने शुरू में हज़रत अबू बक्र रज़ि० की ख़िलाफ़त को स्वीकार नहीं किया इसी कारण उनके हाथ पर बैअत नहीं की ..... वह पैग़म्बर की मृत्यु के बाद अपने ही को ख़िलाफ़त का हक दार समझ रहे थे और जब अचानक हज़रत अबू बक्र रज़ि० की ख़िलाफ़त का ऐलान हो गया तो हज़रत अली रज़ि० ने बैअत न करके गोया हज़रत अबू बक्र रज़ि० को रसूल का ख़लीफ़ा मानने से इंकार कर दिया।

लेकिन ज़ाहिर है कि इस इंकार का समय भी ज़्यादा से ज़्यादा छः महीने तक ही बताया जा सकता है क्योंकि छः महीने के बाद हज़रत अली रज़ि० के हज़रत अबू बक्र रज़ि० के हाथों पर बैअत कर लेने से तो किसी को इंकार नहीं है।

किस कद्र हैरत और हंसी की बात यह है कि हज़रत अली रज़ि० ने तो खिलाफते रसूल स० को अपना हक़ समझने

के बावजूद हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ि० के हाथ पर बैअत करने में केवल छः महीने गौर व फिक्र किया .... और फिर बिल आख़िर अपने मौक़िफ़ की ग़लती ज़ाहिर हो जाने पर या उम्मत को फ़ितना फ़साद और इंतेशार से बचाने की ख़ातिर या तक़िय्या कर के बहर हाल किसी भी तरह अलल ऐलान हज़रत अबू बक्र रज़ि० के हाथ पर बैअत करके गोया ख़िलाफ़त के दावे से अपनी दस्तबरदारी का ऐलान फरमा दिया ...... मगर हज़रत अली रज़ि० की फ़िदाकारी का दम भरने वाले और उनको इमाम मासूम की हैसियत देने वाले लोग हज़रत अली रज़ि० की इस रजअ़त को सही मानने को तैय्यार नहीं होते हैं और इस इकरार के बावजूद कि हज़रत अली रज़ि० छः महीने की ताख़ीर से ही सही बहर हाल हज़रत अबू बक्र रज़ि० की ख़िलाफ़त को स्वीकार करके उनके हाथ पर बैअत कर ली थी ... हज़रत अबू बक्र रज़ि० को ख़लीफ़तुर रसूल मानने पर आमादा नहीं होते।

शायद ऐसे ही मौके के लिए यह महावरा है कि

''मुद्दअी सुस्त गवाह चुस्त''

शिया तो यह दावा करते हैं कि पैग़म्बरे इस्लाम ने अपने बाद के लिए अली रज़ि० की ख़िलाफ़त का ऐलान कर दिया था, बल्कि शिया तो इस बात के भी मुद्दअी हैं कि अली रज़ि० से लेकर इमाम ग़ायब तक १२ इमामों की नामज़दगी अल्लाह की जानिब से ही हुई है। क्योंकि इमामत भी नबूवत ही की तरह मंसूब चीज़ है जिसमें बन्दों के इंतेखाब का कोई दख़ल नहीं होता कि बन्दा जिसे चाहे अपना इमाम चुन लें या चुने हुए इमाम को माज़ूल कर दें। १२ इमामों का इंतेख़ाब मिन जानिबिल्लाह हो चुका अब न इन इमामों के साथ कोई नाम

बढ़ाया जा सकता है और न ही इन १२ में से किसी को कम किया जा सकता है।

इमाम के तमाम फ़राएज़ और इख़्तियारात को विस्तार से बयान करने के बजाय पाठकों को जानकारी देने के लिए इस क़द्र बतलाना काफी होगा कि इमाम दुनयवी या उख़रवी तमाम मामलात में हर्फे आख़िर की हैसियत रखते हैं। इनको न केवल यह कि हराम को हलाल और हलाल को हराम करने के इख़्तियारात प्राप्त होते हैं बल्कि उनकी अताअत के बगैर नजात का तसव्वुर नहीं किया जा सकता ..... ग़र्जेकि इमाम एक ऐसी साहिबे इक़्तदार हस्ती से इबारत है जिसकी कोई नज़ीर इस दुनिया में न पाई जाती है, न ही इसका पाया जाना मुमकिन है।

इमाम के इस इक़्तेदारे आला को ज़हन में रखिए और फिर इस पर ध्यान दीजिए कि इमामत का यह सिलसिला बहर हाल मौरूसी ही रहा। यानी पैग़म्बरे इस्लाम के बाद इक़्तेदार बहर हाल उनके औलाद ही के लिए मख़सूस रहा। बेटा न सही तो बेटी ही को औलाद में यके बाद दीगरे सारे इमाम हो गये। अली रज़ि० पहले इमाम जो पैगम्बरे इस्लाम के दामाद, फिर उनके पुत्र और पैगम्बरे इस्लाम स० के बड़े नवासे हसन रज़ि० दूसरे इमाम, फिर दूसरे पुत्र हुसैन रज़ि० तीसरे इमाम, फिर हुसैन रज़ि० के पुत्र अली जैनुल आबिदीन रह० चौथे इमाम, फिर उनके पुत्र फिर उनके पुत्र के पुत्र .... इसी तरह १२वीं इमाम हसन असकरी रह० के पुत्र मेहदी जो गार सुर्रा मन रआ में बचपन ही से छिपे हुए हैं और उनके छुप जाने के बावजूद उन ही की इमामत कायम है। खुलासा यह कि इक़्तेदार बस एक घराने ही का हिस्सा ठेहरा। न उस घराने और उस ख़ानवादे के अतिरिक्त किसी दूसरे का इक़्तेदार में कोई हिस्सा हो सकता है न ही उसके लिए कोई ऐसी बात सोचना सही हो

सकता है।

पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद स० ने दुनिया में एक फ़िकरी और तहज़ीबी इंक़लाब पैदा किया, उन्होंने अज़मत और तक़दीस के पुराने पैमानों को तोड़ कर नये पैमाने अता किये, इज्ज़त और ज़िल्लत, सरवरी और नकबत, शराफ़त व रज़ालत और इमामत व सत्ता का संबंध, नस्ल और ख़ानदान से काट कर अख़लाक़ व किरदार से जोड़ा, अमीर, ग़रीब, शाह व गदा, आक़ा और गुलाम को इंसानी बराबरी की एक नाक़ाबिले शिकस्त लड़ी में पिरो कर ऐलान किया कि करामत और बुर्जुगी इख़्तियारी वस्तु है क्योंकि :

﴿ان اکرمکم عندالله اتقاکم﴾

बेशक अल्लाह के निकट तुम मेंसे सबसे ज़्यादा बा इज्ज़त वही है जो सबसे बड़ा मुत्तकी हो।

गोया आम ऐलान है कि

यह बज़्म मेय है यां कोताह दस्ती में है महरूमी
जो बढ़ के खुद उठा ले हाथ में मीना उसी का है।

पैगम्बरे इस्लाम स० के सख़्त दुश्मन भी उन पर खुद गर्जी और मफाद परस्ती का इलज़ाम लगाने की हिम्मत न कर सके। उनके अपने दौर के मुंकरीन से लेकर आज तक के मुंकिरीन में से कोई यह न कह सका कि मुहम्मद स० फ़ातिहे बद्र व हुनैन, और मुहम्मद फ़ातिहे ख़ैबर व मक्का का मक़सद सत्ता का प्राप्त करना था और वह अपनी तहरीक के द्वारा अपने और अपनी नसलों के सत्ता को महफूज़ करना चाहते थे। क्योंकि सबसे पहले तो सत्ता उनके ख़ानदान के लिए कोई नई चीज़ नहीं थी, और उनके ख़ानदानी बुज़ुर्गों को पहले ही से सत्ता प्राप्त था। फिर खुदा के धर्म यानी दीन इस्लाम की तबलीग़ के समय उनके विरोधियों ने अनेक बार उनको सत्ता

की पेशकश करते हुए यह बात कही कि हम आपको अपना सरदार स्वीकार कर लेंगे और आपकी बात मान लेंगे मगर शर्त यह है कि आप नये दीन (इस्लाम) की तबलीग़ बन्द कर दें ...... लेकिन इस पेशकश के जवाब में पैगम्बरे इस्लाम स० ने यही कहा कि

> "ख़ुदा की क़सम अगर मेरे एक हाथ में सूर्य और दूसरे हाथ में चंद्रमा दे दिया जाये तब भी मैं ख़ुदा के इस सत्य धर्म (इस्लाम) के प्रचार को न छोड़ूंगा।"

फिर आप ख़ुदा के इसी दीन की सरबुलन्दी की ख़ातिर अपने देश मक्का और अपने रिश्तेदारों को छोड़ कर एक अजनबी स्थान मदीना चले गये और मुसाफ़िरत की तकलीफ़ें झेलीं।

यही सब दलीलें हैं जिनके प्रकाश में यह बात साफ़ हो जाती है कि पैगम्बरे इस्लाम स० को दुनियावी इक़्तिदार की हरगिज़ तलब न थी, और इस संबंध में उनका किरदार इतना साफ था कि उनके और उनके दीन के दुश्मनों को भी कहीं से यह मौक़ा न मिल सका कि वह पैगम्बरे इस्लाम स० पर "सत्ता की हवस" का इलज़ाम लगा सकें ..... लेकिन?

अगर शियों के "इमामत के अकीदे" को सही समझ कर यह स्वीकार कर लिया जाये कि पैगम्बरे इस्लाम ने दीन और दुनिया के सत्ता के तमाम ख़ज़ानों की कुजियां अपने दामाद, नवासों और परनवासों में से १२ व्यक्तियों ही को देकर सारी दुनिया का हर प्रकार के सत्ता से अलग कर दिया है तो क्या पैग़म्बरे इस्लाम स० की वह हैसियत बाकी रहेगी जिसका ज़िक्र ऊपर हुआ है?

फ़िरऔनियत, क़ैसरियत और किस्रवियत मौरूसी ही चीज़ें

थीं फिर कैसरे रूम और किस्रा–ए–ईरान को पैग़म्बरे इस्लाम स० ने पुरानी रविश छोड़ करके इस्लाम को मानने और अपनाने की दावत क्यों दी थी ..... ?

अगर यह बात स्वीकार कर ली जाय कि मुहम्मद स० ने अपने बाद अपने दीन की इमामत और दुनिया के सत्ता को क़यामत तक के लिए अपनी ही औलाद में बांट करके इसका ऐलान कर दिया था तो पैग़म्बरे इस्लाम और उनके दीन का वह इंकलाबी पैगाम क्या था जो उसे क़ैसर और किस्रा के सत्ता से अलग और मुमताज़ करे, जबकि रूम का कैसर और ईरान का किसरा भी मौरूसी होता था ...... ?

अगर कोई विरोधी यह विरोध करे कि सत्ता प्राप्त होने के बाद मुहम्मद स० ने भी इसी तरह (नूअूज़ु बिल्लाह) इक़्तिदार और बुर्ज़ुगी को अपने खानदान बल्कि अपनी औलाद में जमा कर लिया जिस तरह अनेक दुनिया दार बादशाह करते हैं तो १२ इमामों के अकीदे की मौजूदगी में इसका क्या उत्तर होगा?

डिक्टेटर शिप, इम्प्रलिज़्म और शख़्सी इक्तिदार ..... जैसे शब्द अगर ना पसन्दीदा हैं और इस्लामी निज़ामे कयादत और इमामत को शूराई, जम्हूरी, और डेमूक्रिसी कहलाना है तो "इमामत" के घरोन्दे को तोड़ना होगा।

क्योंकि इसकी मौजूदगी में भाई चारगी। बराबरी, बे गर्जी और ईसार जैसे तमाम शब्द बिना अर्थ के ही रहेंगे।

हक़ीक़ी इस्लाम .... और शीईयत के द्वारा पेश किये जाने वाले इस्लाम में यह एक वह बुनियादी फ़र्क़ है जिस पर ग़ौर करके हर बुद्धिमान व्यक्ति इस बात का फैसला कर सकता है कि पैग़म्बरे अम्न और सलामती, मोहसिने इंसानियत मुहम्मद स० के दीन को शीईयत के द्वारा किस किस प्रकार से नष्ट करने की कोशिशें की गई हैं??

तक़िय्या और नुजूम भी शिया धर्म है

शिया धर्म में एक इबादत का नाम तक़िय्या है तक़िय्या यानी झूठ! शियों के सामने जब यह बात रखी जाती है कि दीन और धर्म से अलग होकर, अक्ल व दानिश और शराफ़त व तहज़ीब की ओर से भी इसकी हरगिज़ इजाज़त न मिल सकेगी कि खुले आम झूठ बोला जाये और झूठ बोलने की न सिर्फ़ इजाज़त बल्कि इसका हुकम दिया जाये इसकी ताकीद की जाये और झूठ बोलने वालों से इंआम के वादे किये जाये। झूठ न बोलने वालों को धमकाया जाये।

यह कैसा धर्म है जो झूठ को तरक़्क़ी देने की शिक्षा देता है? जवाब में शियों से कुछ बनाये नहीं बनती तो कहते हैं कि ऐसा नहीं है कि तक़िय्या यानी झूठ बोलने की आम इजाज़त है बल्कि यह इबादत सिर्फ़ उस समय अदा की जा सकती है जब जान, माल, या इज़्ज़त व आबरू ख़तरे में हो। दूसरे शब्दों में यूं कह लीजिए कि शिया घबराकर एक अहम तरीन इबादत से इंकार कर बैठते हैं। ऐसी इबादत जिसके संबंध में इमाम मासूम का इरशाद है :

ان تسعة اعشار الدین فی التقیة و لا دین لمن لا تقیة لہ۔

तर्जुमा : धर्म के १०/६ हिस्से तक़िय्ये में हैं और उस व्यक्ति का दीन व धर्म मोतबर ही नहीं जिसने

तक़िय्या न किया हो।

यही कारण है कि इमाम मासूम बहुत फ़ख़रिया अंदाज़ में फ़रमा रहे हैं :

التقیة دینی و دین آبائی (اصول کافی، ص٤٨٤)

तर्जुमा : तक़िय्या मेरा और मेरे बाब दादा का धर्म है।

इमाम मासूम का यह लहजा और तैवर उनकी ताकीद और इसरार चुगली खा रहे हैं कि यह कोई मामूली मामला नहीं है? .... जान ख़तरे में पड़ जाये तो हराम खाने की इजाज़त है शर्त यह है कि दिल ईमान पर मुतमइन और कुफ्र से नफरत करने वाला हो। फिर झूठ पर यह इसरार, इसकी यह ताकीद, इसकी दीनी अहमियत का इस तरह बयान, और फिर इसे फ़ख़रिया और ऐलानिया अपना और अपने बाप दादा का धर्म क़रार देना क्या केवल बहुत ज़रूरी हालात में इसकी इजाज़त का पता देते हैं? अच्छा चलिए थोड़ी देर के लिए अपनी आंखों पर पट्टी बांध कर हम शियों की इस लचर, बेजान, और बे हक़ीक़त तावील को माने लेते हैं कि तक़िय्या यानी झूठ की उस समय इजाज़त है जब जान माल या इज़्ज़त व आबरू ख़तरे में पड़ जाये। मगर फिर इस सूरत में शिया खुद सोच समझकर इसका जवाब दें कि इमाम मासूम यानी इमाम जाफ़र सादिक़ ने सुन्नियों के इमाम अबू हनीफ़ा रह० की उनके मुंह पर तारीफ़ क्यों की और उनके पीछे हटने के बाद उनकी मज़म्मत क्यों की?

अगर तक़िय्या किया तो तक़िय्या क्यों? जान माल इज़्ज़त में से कौन सी चीज़ इमाम मासूम की ख़तरे में आ गई थी जिसका बचाना जरूरी था?

विस्तार के लिए काफ़ी की किताबुररौज़ा खोलिए और इस

इबारत को पढ़िये :

عن محمد بن مسلم قال دخلت علی ابی عبدالله علیه السلام و عنده ابو حنیفة فقلت له جعلت فداك رأیت رویا عجیبة فقال لی یا ابن مسلم هاتها فإن العالم بها جالس و اومیٰ بیده الی ابی حنیفة فقلت رأیت کأنی دخلت داری و اذا اهلی قد خرجت علی فکسرت جوزا کثیراً و نثرته علی فتعجبت من هذه الرویا فقال ابو حنیفة انت رجل تخاصم و تجادل ما فی مواریث اهلك فبعد تعب شدید تنال حاجتك منها انشاء الله فقال ابو عبدالله علیه السلام اصبت و الله یا اباحنیفة قال ثم خرج ابو حنیفة من عنده فقلت له جعلت فداك انی کرهت تعبیر هذا الناصب فقال یا ابن مسلم لا یسؤك الله فما یواطی تعبیرهم تعبیرنا و لا تعبیرنا تعبیرهم و لیس التعبیر کما عبره قال فقلت له جعلت فداك فقولك اصبت علیه و هو مخطی قال نعم حلفت علیه انه اصاب الخطاء۔

तर्जुमा : मुहम्मद बिन मुस्लिम से रिवायत है कि वह कहते हैं कि मैं इमाम जाफ़र सादिक़ अलैहिस्सलाम के पास गया वहां उनके निकट अबू हनीफ़ा भी मौजूद थे मैंने इमाम जाफ़र सादिक़ से कहा कि मैं आप पर कुरबान मैंने एक अजीब ख़्वाब देखा है उन्होंने कहा ऐ इब्न मुस्लिम इस ख़्वाब को बयान करो इस लिए कि ताबीरे ख़्वाब के ज्ञानी बैठे हुए हैं और अपने हाथ से अबू हनीफ़ा की ओर इशारा किया, मैंने कहा कि मैंने देखा कि गोया मैं अपने घर में गया हूं और मेरी पत्नी मेरे पास आई और उसने बहुत से अख़रोट तोड़ और मेरे ऊपर फैंक

दिये। मुझको इस ख़्वाब से बहुत ज़्यादा ताज्जुब है तो अबू हनीफ़ा ने कहा कि इस ख़्वाब की ताबीर यह है कि तुमको अपनी पत्नी की मीरास के संबंध में बहुत लड़ाई झगड़ा करना पड़ेगा। और बड़ी परेशानी के बाद तुम अपनी चाहत को इंशाअल्लाह पा लोगे। तो इमाम जाफ़र अ० ने यह सुन कर कहा कि ऐ अबू हनीफा! तुमने ख़ुदा की क़सम बहुत स्टीक उत्तर दिया। रावी कहते हैं कि फिर जब इमाम अबू हनीफ़ा इमाम के पास से चले गये तो मैंने उनसे कहा कि मैं आप पर कुरबान मैं इस नासिबी की ताबीर को पसन्द नहीं करता तो इमाम ने कहा कि ऐ इब्न मुस्लिम अल्लाह तुम्हें रूसवा न करे। उन लोगों की ताबीर हमारी ताबी के और हमारी ताबिर उनकी ताबीर के मुताबिक़ नहीं होती। और हक़ीक़त यह है कि इस ख़्वाब की वह ताबीर नहीं है जो अबू हनीफ़ा ने बयान की। रावी कहते हैं कि मैंने इमाम से कहा कि मैं आप पर कुरबान फिर आपका इनकी ताबीर को ठीक कहना जब कि वह खता पर थे और इस पर क़सम ख़ाना? इमाम ने कहा हां मैंने इस बात पर कसम खाई थी कि वह ग़लती पर पहुंच गये।

इस तफ़सीली रिवायत में यह सब बातें सोचने के लिए हैं

१. एक मासूम इमाम की यह शान कि मुंह पर कुछ और पीठ पीछे कुछ, क्या उनकी इज्ज़त व तौक़ीर और उनके मर्तबा को गिराने के लिए काफी नहीं है?

२. इमाम मासूम ने अगर तक़िय्या से काम लेकर इमाम अबू हनीफ़ा रह० के मुंह पर कुछ और पीठ पीछे कुछ और

कहा तो क्यों? आख़िर तक़िय्या का यह कौन सा मौक़ा था? जान माल या इज़्ज़त मेंसे कौन सी चीज़ ख़तरे में थी जब कि इमाम अबू हनीफ़ा रह० तो सिर्फ एक फ़क़ीह थे इसके अतिरिक्त उनके पास कोई ज़ाहिरी बल नहीं थी।

३. इब्न मुस्लिम ने जब इमाम मासूम से ख़्वाब की ताबीर पूछी तो उन्होंने इमाम अबू हनीफ़ा रह० की ओर कियों इशारा किया और उन से इस ख़्वाब की ताबीर क्या दिलवाई जबकि वह खुद ही यह भी कह रहे हैं कि "उन लोगों की ताबीर हमारी ताबीर के और हमारी ताबीर उन लोगों की ताबीर के मुताबिक़ नहीं हो सकती, क्या महज़ इब्न मुस्लिम को हैरानी में डालने के लिए?

४. इमाम अबू हनीफ़ा रह० के मुंह पर उनको ख़्वाब की ताबीर का ज्ञानी कहने और फिर उनकी बताई हुई ताबीर की ताईद करने के बाद फिर इसी ताबीर को रद्द करने और अपनी ताईद की अजीब व गरीब तावील करने से ज़्यादा बेहतर तो यह था कि इमाम मासूम पहले ही खुद ख़्वाब की ताबीर दे देते और इमाम अबू हनीफ़ा रह. को ताबीर देने का मौक़ा ही न देते मगर ऐसा नहीं किया तो क्यों?

पाठकगण! सोचें कि शिया धर्म में तक़िय्या की क्या हैसियत है? ऊपर की बातों से यह बात साफ हो जाती है कि इमाम मासूम ने बिना किसी कारण और ज़रूरत केवल तफ़रीहे तबा के लिए झूठ बोला और इब्ने मुस्लिम से खिलवाड़ किया यही नहीं कि सिर्फ झूठ बोले बल्कि झूठी क़सम भी खाई और फिर अपनी कसम की ऐसी लचर व बे जान तावील की जिसे दुनिया का कोई भी बुद्धिमान स्वीकार करने पर तैय्यार नहीं हो

सकता।

जब मासूम इमाम का यह हाल है तो अवाम का खुदा ही हाफिज़ है।

कुछ इल्म नुजूम के संबंध में : इल्म नुजूम की इस्लाम में कोई अहमियत नहीं है और नुजूमी की किसी बात पर यक़ीन करने और ऐतबार करने की किसी मुसलमान को इजाज़त नहीं है मगर जिस प्रकार शिया धर्म में झूठ को न सिर्फ़ हलाल और जायज़ कर लिया गया है बल्कि इसे आला तरीन इबादत का स्थान दिया गया है इसी तरह इस धर्म में इल्म नुजूम को भी हक यानी सही व सच करार देकर सितारों की सआदत और नहूसत की बात की गई है और अइम्मा मासूमीन ने हिन्दुस्तानी ज्यूतिशियों और नुजूमियों की बाक़ायदा तस्दीक़ की है। नमूने के तौर पर देखिए इसी पुस्तक काफ़ी की किताबुर रौज़ा की रिवायत को :

عن معلیٰ بن خنیس قال سئلت اباعبدالله علیه السلام
عن النجوم احق هی فقال نعم ان الله عزوجل بعث
المشتری الی الارض فی صورة رجل فأخذ رجلاً من
العجم فعلمه النجوم حتیٰ ظن انه قد بلغ ثم قال له
انظر این المشتری فقال ما اراه فی الفلك فنحاه و
اخذ بید رجل من الهند فعلمه حتیٰ ظن انه قد بلغ
فقال انظر الی المشتری این هو فقال ان حسابی لیدل
علی انك انت المشتری قال فشهق شهقة فمات و
ورث علمه اهله فالعلم هناك۔

तर्जुमा : मअल्ला बिन ख़ुनेस से रिवायत है कि वह कहते हैं कि मैंने इमाम जाफ़र अलैहिस्सलाम से पूछा कि क्या इल्म नुजूम हक है? तो उन्होंने कहा हां, अल्लाह ने मुशतरी सितारे को एक आदमी की

शक्ल में ज़मीन की ओर भेजा था तो उसने अजम के एक व्यक्ति का हाथ पकड़ा और उसे इल्म नुजूम सिखाया जब उसने यह ख़याल किया कि अब यह पूरी तरह सीख गया है तो उससे पूछा कि बताओ मुशतरी कहां है? तो उस व्यक्ति ने उत्तर दिया कि मैं मुशतरी को आसमान में नहीं देख रहा हूं (यानी मुझे नहीं मालूम कि वह कहां है?) तो मुशतरी ने उस व्यक्ति को अपने पास से हटा दिया और एक दूसरे हिन्दुस्तानी व्यक्ति का हाथ पकड़ा और उसे इल्म नुजूम सिखाया जब उसके बारे में ख़याल किया कि यह सीख गया है तो उससे पूछा कि बताओ कि मुशतरी कहां है? तो उस हिन्दुस्तानी ने कहा कि मेरा हिसाब बताता है कि तुम ही मुशतरी हो। तब मुशतरी ने इस उत्तर पर एक नारा मारा और मर गया। इसके बाद उस हिन्दुस्तानी ने अपने इस इल्म नुजूम का अपने अहले खानदान को वारिस बनाया तो यह इल्म हिन्दुस्तान ही में है।

इस रिवायत से यह बातें मालूम हुईं

१. इमाम मासूम जाफर सादिक के फरमान की रौशनी में शिया धर्म के मुताबिक इल्म नुजूम हक और स्टीक है।
२. यह इल्म न केवल आसमानी बल्कि इल्म इलाही है यानी बाकायदा अल्लाह रब्बुल इज्जत की ओर से मुशतरी सितारा इस इल्म को सिखाने के लिए ज़मीन पर भेजा गया।
३. एक अजमी व्यक्ति को मुशतरी सितारा ने यह इल्म सिखाने के बाद जब उसकी परीक्षा ली तो वह विफल रहा और इसी लिए उसे अपने पास से भगा दिया और एक हिन्दुस्तानी को सिखाने के बाद जब परीक्षा ली तो वह सफ़ल हो गया जिसकी खुशी में मुशतरी ने नारा मार कर जान दे दी।
४. हिन्दुस्तान के नुजूमियों के पास विरासतन वही इल्म यानी ज्ञान आया है जिसे खुवावन्द ने मुशतरी द्वारा भेजा था तो ज़ाहिर है कि यह पूरा ज्ञान सत्य है और इस पर ऐतबार करना अनिवार्य है। (नअूजुबिल्ला मिन्हु)

ऊपर के यह नतीजे हमारे अपने गढ़े हुए नहीं हैं कि शिया धर्म पर तोहमत लगाने की गर्ज़ से हों बल्कि सितारों की सआदत और नहूसत के इमाम मासूम न सिर्फ़ क़ायल बल्कि उसी का हुकम फ़रमाने वाले थे। इस सम्बंध में उपर्युक्त हवाले से ही एक रिवायत पेश है जिसमें इसका विस्तार मौजूद है। इमाम जाफ़र सादिक़ का कहना है :

قال من سافر او تزوج و القمر فی العقرب لم یر الحسنیٰ۔

तर्जुमा : फ़रमाया कि जिस व्यक्ति ने सफ़र या शादी किया ऐसे समय में कि चन्द्रमा अकरब में हो तो वह किसी भलाई को ने देख सकेगा।

यह इस समय की जब कमर दर अकरब हो नहूसत की बिल्कुल साफ़, वाज़ेह और गैर मुबहम शिक्षा है।

इस्लाम धर्म में झूठ हराम, और शिया धर्म में न केवल जायज़ बल्कि झूठ बोलना इबादत।

इस्लाम धर्म में इल्म नुजूम बे हकीकत और इस पर ऐतबार करना हराम .... और शिया धर्म में इल्म नुजूम हक और इसका हिसाब किताब पूरी तरह काबिले ऐतबार।

यह है शिया धर्म

अबू बक्र रज़ि० और अली रज़ि०.
बैअत, ख़िलाफ़त, और फ़ज़ीलत का फ़ैसला कुन नज़रिया!

अहले सुन्नत वल जमाअत का मुत्तफ़क़ अक़ीदा है कि "نحن نفضل الشيخين و نحب الختنين و نرى المسح على الخفين"

तर्जुमा : हम शैखैन यानी हज़रत अबू बक्र रज़ि० और उमर रज़ि० को सहाबियों पर फ़ज़ीलत देते हैं और हुज़ूर के दोनों दामादों यानी हज़रत उस्मान रज़ि० और अली रज़ि० से मोहब्बत करते हैं और खुफ़्फ़ैन यानी चमड़े के मौज़े पर मसह करने को जायज़ समझते हैं।

अहले सुन्नत वल जमाअत के किसी भी ग्रुप को इन तीन बुनियादी चीज़ों में कोई इख़्तेलाफ़ नहीं है और जो लोग इनमें से किसी भी चीज़ से इख़्तलाफ़ पैदा करें बिला शुबा इनका संबन्ध बड़ें ग्रूप यानी अहले सुन्नत से नहीं होगा।

शिया हज़रात बुनियादी तौर पर इन तीनों मामलों से इख़्तलाफ़ रख़ते हैं और वह इन चारों असहाब रज़ि० में से केवल हज़रत अली रज़ि० ही को मानते हैं और उन्हीं को ख़िलाफ़त और इमामत का हक़दार मान कर शेष तीनों असहाब पर लान तान करते हैं। इसी तरह वह मस्ह अलल खुफ्फैन

यानी मौज़ों पर मसह करने को भी नाजायज़ नहीं समझते हैं। और इस सिलसिले में बहुत ही दिलचस्प बात यह है कि वजू में पैरों को न धोकर उन पर सिर्फ़ मसह कर लेने को तो जायज़ क़रार देते हैं मगर ख़ुफ़्फ़ैन यानी चमड़े के मौज़ों पर मसह को नाजायज़ समझते हैं इस स्थान पर हमको मसह अलल ख़ुफ़्फ़ैन के मसले से बहस नहीं है बल्कि हम केवल नबी के सहाबियों के सिलसिले में अक़ ीदे और इसके दूर रस नतीजों का जायज़ा लेंगे।

हज़रत अली रज़ि० की इज्ज़त अहले सुन्नत वल जमाअत से ज़्यादा दूसरा कोई नहीं कर सकता और हम बिना किसी डर के इस बात का दावा कर सकते हैं कि हक़ीक़त में अली मुतुर्ज़ा रज़ि० के मतर्बे को हमने पहचाना है और हम ही उनके वाकई मानने वाले और उनकी तालीमात पर अमल करने वाले हैं।

हज़रत अली रज़ि० के सिलसिले में मुबालग़ा करके उनके वाक़ई मक़ाम और उनके बेदाग किरदार को मजरूह करके विवादित शख़्सियत के तौर पर पैश करने वाले दो ग्रूप हैं। एक शिया जिनका बुनियादी अकीदा यह है कि हुज़ूर अकरम स० की ख़िलाफ़त के सबसे पहले और सबसे बड़े हक़दार हज़रत अली मुर्तुज़ा रज़ि० हैं, क्योंकि उनको हुज़ूर स० से जो रिश्तेदारी प्राप्त थी वह किसी भी दूसरे सहाबी रज़ि० को प्राप्त न थी। फिर जबकि हज़रत अली रज़ि० के अन्दर ख़िलाफ़ते नबवी की दूसरी तमाम शर्तें भी मौजूद थीं तो उनकी रिश्तेदारी के कारण तरजीह उनहीं को मिलना चाहिये और इस सिलसिले में उनके साथ ज़्यादती हुई कि उनसे पहले तीन खुलफा यानी हज़रत अबू बक्र रज़ि०, हज़रत उमर रज़ि०, और हज़रत उस्मान रज़ि० हुए और चौथे नंबर पर हज़रत अली रज़ि० को उनका वह हक मिल सका जो उनको पहले ही नंबर पर मिलना

चाहिये था। इसी लिए पहले तीन ख़लीफ़ाओं को यह बुरा भला कह कर अपनी दिली भड़ास निकालते हैं। दूसरे तफ़ज़ीली हैं जो अगरचे चारों असहाबे नबी को मानते हैं मगर उन सब में हज़रत अली का मकाम सबसे अफ़ज़ल समझते हैं और नबी अ० के बाद पहले नंबर पर हज़रत अली रज़ि० को ही मुस्तहके ख़िलाफ़त समझते हैं मगर पहले तीन खुलफ़ा को भी यह लोग मुसलमान करार देकर उनकी शान में गुस्ताख़ियां करना बुरा समझते हैं। अगरचे इशारों किनायों के द्वारा उन बड़े लोगों की शान को घटाते रहते हैं। अब आइये इसका जायज़ा लें कि इस सिलसिले में वाकई इस्लामी शिक्षा क्या हैं। और इस्लामी नुक़्त–ए–नज़र से ख़िलाफ़त और इमामत के लिए क्या शर्तें हैं। बेहतर यह होगा कि हम अपने मौक़िफ़ का विस्तार खुद दूसरे ग्रूप ही से करायें और मज़ा जब ही है कि दूसरा ग्रूप चिल्ला चिल्ला कर कहे कि तुम्हारा मौक़फ़ ही सही और ठीक है मगर हम दुश्मनी के कारण इसको नहीं मानेंगे।

तो लीजिए शियों की सबसे ज़्यादा मोतबर पुस्तक जिसके बारे में उनका अक़ीदा है कि वह अली मुर्तुज़ा रज़ि० के भाषणों और उनके कथनों का मजमूआ है। इसी में अमीरूल मोमिनीन अली मुर्तुज़ा रज़ि० का इस सिलसिले में यह फ़रमान मौजूद है :

ان اولی الناس بالانبیاء اعلمھم بما جاؤا بہ ثم تلا ان اولی الناس بابراھیم للذین اتبعوہ و ھذا النبی و الذین امنوا ثم قال ان ولی محمد من اطاع اللہ و ان بعدت لحمتہ و ان عدو محمد من عصی اللہ و ان قربت قرابتہ۔ (نہج البلاغہ، قسم دوم، ص۱۶۳)

तर्जुमा : बेशक अंबिया का सबसे बड़ा वली वह है जो उनकी शरीअत को सबसे ज़्यादा जानने वाला हो फिर यह आयत तिलावत की कि बेशक इब्राहीम

के सबसे बड़े वली वह हैं जिन्होंने उनकी पैरवी की और यह नबी और ईमान वाले हैं फिर फ़रमाया कि मुहम्मद स० का वली वह है जो अल्लाह की अताअत करे अगरचे उसका कोई ख़ूनी रिश्ता आपसे दूर का भी न हो और उनका दुश्मन वह है जो खुदा की ना फ़रमानी करे अगरचे वह आपका क़रीब तरीन रिश्तेदार ही हो। (नहजुल बलाग़त, भाग २ प्रष्ठ १६३)

इस रिवायत से जो शियों के अपने ही अकीदे के मुताबिक़ हज़रत अली रज़ि० का फ़रमान है यह बात निखर कर सामने आ जाती है कि हुज़ूर अ० या दूसरे किसी भी नबी की विलायत व ख़िलाफ़त के लिए क़राबतदारी या रिश्तेदारी कोई अहमियत नहीं रखती और सिर्फ़ रिश्तेदारी होना कोई सनद ही नहीं है और न उसको किसी दर्जे में वज्हे तरजीह इस सम्बंध में ठहराया जा सकता है। हक़ीक़त तो यह है कि इस्लाम इस यहूदी ज़हनियत को मिटाने के लिए ही आया था। यह तो यहूदियों का अक़ीदा था कि नबूवत का सिलसिला सिर्फ़ आले याक़ूब के साथ ख़ास है इसी कारण उन्होंने हुज़ूर स० की नबूवत को स्वीकार नहीं किया। उनके धर्मगुरूओं ने बार बार यह स्वीकार किया कि नबूवत की सारी निशानियां हुज़ूर स० के अन्दर मौजूद हैं मगर उनको नबी हम इस लिए नहीं मानते कि वह आले इस्माईल से ताल्लुक़ रखते हैं और नबूवत बनू इस्राईल ही का हिस्सा है।

शिया धर्म का संस्थापक अब्दुल्लाह बिन सबा जिसने एक समय तक एलानिया यहूदी रह कर मस्लिहतों के पेशे नज़र अपने इस्लाम का ऐलान कर दिया था, इस तरह इस्लामी शिक्षा को मस्ख़ करने पर उतारू हुआ और सबसे पहले उसी ने

हज़रत अली रज़ि० की फ़जीलत के बारे में बात कही और फ़ज़ीलत का कारण हज़रत अली रज़ि० की हुजूर स० से क़रीबी रिश्तेदारी को ठहराया यहां तक कि उसने इस सिलसिले में इस कद्र मुबालग़ा से काम लिया कि हज़रत अली रज़ि० को खुदाई इख़्तयारात का मालिक तक मान लिया।

हज़रत अली मुर्तुज़ा रज़ि० इब्ने सबा की इस साजिशी ज़हनियत से वाक़िफ़ थे और वह खूब अच्छी तरह समझ रहे थे कि इब्ने सबा और उसके मित्रों का मिशन क्या है और वह किस तरह इस्लाम और मोहब्बत अहले बैत नबी का नाम लेकर यहूदियत को बढ़ावा देना चाहते हैं यही कारण है कि उन्होंने इस ग्रूप को सख़्त सजायें दीं कई मतर्बा उनको इस फ़ितने से रूक जाने को कहा और मौके मौके पर उनकी सरज़निश भी की मगर इब्ने सबा और उसका ग्रूप हर सख्ती को झेल कर भी अपने मिशन को पूरा करने में लगा रहा। इस जज़्बे को और अधिक बल बनू उमय्या की सत्ता के पतन के बाद बनू अब्बास के दौरे हकूमत में हुई क्योंकि बनू अब्बास का यह मुसलसल प्रोपेगण्डा रहा कि सत्ता बनू हाशिम ही का हक़ है। बनू उमय्या इस पर जाबिराना क़ाबिज़ हो गये थे लेहाज़ा आम तौर पर यह बात मश्हूर हुई कि ख़िलाफ़ते नबवी के सबसे बड़े मुस्तहक़ सय्यदना अली मुतुर्ज़ा रज़ि० और सय्यदना अब्बास रज़ि० ही थे।

इस नज़रये के सहयोग में बे सरोपा बातें और अफ़सानवी रिवायात पेश की गईं और अवाम को यह समझाने की भरपूर कोशिश की गई कि हज़रत अली रज़ि० और हज़रत अब्बास रज़ि० खुद भी ऐसा ही समझते थे और इन दोनों को अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ि० के हाथों में ख़िलाफ़त चले जाने का बेहद मलाल था। चुनांचे इसी सिलसिले में यह गुमराह कुन रिवायत

भी गढ़ी गई कि चूंकि हज़रत अली रज़ि० अपने को ख़िलाफ़त का हक़दार समझते थे इसी कारण उन्होंने छः महीने तक हज़रत अबू बक्र रज़ि० के हाथों पर बैअत नहीं की।

दश्कों तक का मुसलसल प्रोपेगण्डा रंग लाकर रहा और अवाम अहले सुन्नत के ज़हनों में भी यह बात बैठ गई कि हज़रत अली रज़ि० वाक़ई अपने को ख़िलाफ़त का ज़्यादा हक़दार समझते थे और उन्होंने हज़रत फ़ातिमा ज़हरा रज़ि० की वफ़ात के बाद ही सिद्दीक़े अकबर रज़ि० के हाथों पर बैअत की।

शिया हज़रात को तो जाने दीजिए इस लिए कि बुग्ज़े सहाबा रज़ि० उनके धर्म का सबसे बड़ा भाग है इस लिए अगर उनकी ओर से ख़ुलफ़ा–ए–राशिदीन रज़ि० की शान में गुस्ताख़ाना हमले हो या ख़िलाफ़त की तरतीब पर ऐतराज़ के नाम पर गाली गलौज की जाये तो कोई काबिले हैरत बात नहीं है क्योंकि उनके यहां तो मक़सूद असली यही है कि नबूवत के गवाहान अव्वल यानी सहाबा रज़ि० के किरदार को इस कद्र भोण्डा बनाकर पेश किया जाये कि सारा दीन व धर्म मशकूक होकर रह जाये यही कारण है कि अली मुतुर्ज़ा रज़ि० जिनकी इमामत व ख़िलाफ़त के यह लोग अपने गुमान के मुताबिक़ सबसे बड़े हामी हैं और जिन पर ईमान लाने और उनके फ़रामीन का बिला कम व कास्त तस्लीम करने को हक़ीक़ी धर्म करार देते हैं उन्हीं के इन फ़रामीन को जिनका ताल्लुक़ फ़ज़ाएले सहाबा रज़ि० से है यह लोग पीठ पीछे डाल देते हैं। सरसरी तौर पर कुछ रिवायातें मोतबर और मुस्तनद शिया पुस्तकों को देख लीजिए कि किस किस प्रकार हज़रत अली रज़ि० की ज़बान से फ़ज़ाइले सहाबा रज़ि० मंकूल हैं और हज़रत अली रज़ि० ने सिद्दीक़े अकबर रज़ि० के हाथों पर

बैअत की थी या नहीं?

و كان افضلهم فى الاسلام كما زعمت و انصحهم لله و لرسوله الخليفة الصديق و خليفة الخليفة الفاروق ولعمرى ان مكانهما فى الاسلام لعظيم و ان المصاب بهما فى الاسلام لجروح شديد يرحمهما الله و جزاهما باحسن ما عملا۔ (شرح نهج البلاغه، جز٣)

तर्जुमा : और सबसे अफ़ज़ल इस्लाम में और अल्लाह और अल्लाह के रसूल के साथ बहुत खुलूस रखने वाले जैसा कि तुमने कहा है ख़लीफ़ा सिद्दीक़ रज़ि० थे और खलीफा के ख़लीफ़ा फ़ारूक़ रज़ि० थे और मुझे अपनी जान की कसम है कि बिला शुबा इन दोनों का मर्तबा इस्लाम धर्म में बहुत बड़ा है और बिला शुबा उनकी मौत से इस्लाम को बहुत गहरा ज़ख़्म लगा अल्लाह तआला इन दोनों पर रहमत नाज़िल करे और उनको उनके नेक आमाल की जज़ा दे।

ऊपर की रिवायात जो शियों की सबसे मोतबर पुस्तक से ली गई है मज़ीद किसी विस्तार की ज़रूरत नहीं है रिवायत के शब्द पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि हज़रत अली रज़ि० को अपने से पहले वालों यानी सिद्दीक़ अकबर रज़ि० और फ़ारूक़े आज़म की वफ़ात से बेहद सदमा हुआ। वह इन दोनों को इस्लाम धर्म का सच्चा खादिम करार देते हुए उनकी वफ़ात को इस्लाम का ना क़ाबिले तलाफ़ी नुक़सान क़रार दे रहे हैं।

अब रह गई यह बात कि अली मुर्तुज़ा रज़ि० ने सिद्दीक़ अकबर रज़ि० के हाथों पर बैअत की या नहीं? और वह अपने को ख़िलाफ़त का हक़दार समझते थे या सिद्दीक़ अकबर

रज़ि० को ख़लीफ़ा–ए–बर हक समझ कर उनकी इताअत करते थे तो इसका सुबूत भी शिया पुस्तकों से पेश किया जा रहा है।

حتىٰ جاؤا باميرالمومنين فبايع مكرها (روضه كافى، ص١١٥)

तर्जुमा : यहां तक कि लोग अमीरूल मोमिनीन अली रज़ि० को लाए और उन्होंने मजबूरन बैअत कर ली।

इसी तरह रौज़ा–ए–काफ़ी ही की दूसरी रिवायत इमाम बाकर से इस तरह मंकूल है :

فلذلك كتم على عليه السلام امره و بايع مكرها حيث لم يجد اعوانا۔

तर्जुमा : इसी कारण अली अलैहिस्सलाम ने अपना मामला (इमामत) छिपाये रखा और मजबूरन बैअत कर ली क्योंकि उनको सहयोगी न मिले।

हज़रत अली रज़ि का सिद्दीक़ अकबर रज़ि० के हाथों पर बैअत करना और उनको ख़लीफ़ा स्वीकार करके उनकी इताअत करना इस कद्र ज़ाहिर है कि शिया हज़रात भी बावजूद न चाहने को इसको ज़ाहिर करने पर मजबूर होते हैं अलबत्ता उन्होंने इसके साथ ''मुकरहन'' की कैद लगा दी यानी हज़रत अली रज़ि० ने यह बैअत मजबूरन की थी।

यह अक़ीदा शियों ही को मुबारक हो कि वह हज़रत अली रज़ि० को इतना बुज़दिल करार दें हमारा अकीदा तो यह है कि अली मुर्तुज़ा बातिल के मुक़ाबले पर चट्टान की तरह डट जाते थे उनकी बे बहा जुरअत व शुजाअत से यह बात बिल्कुल मेल नहीं खाती कि वह किसी धमकी या दबाव में आकर किसी ऐसे व्यक्ति को ख़लीफ़ा स्वीकार करके उसके हाथ पर बैअत कर लें जिसकी ख़िलाफ़त को वह ना हक समझते हों। हक़ीक़त यह है

कि अली मुर्तुज़ा रज़ि० सिद्दीक़े अकबर रज़ि० को ख़लीफ़ा बर हक समझते थे और राज़ी व ख़ुशी से उन्होंने सिद्दीक़ अकबर रज़ि० के हाथों पर बैअत की और हर प्रकार उनका सहयोग किया और उनके पीछे नमाज़ें अदा कीं जैसा कि शिया पुस्तक एहतेजाजे तबरसी में है :

ثم قام و تهيأ للصلوٰة و حضر المسجد و صلى خلف ابى بكرؓ (احتجاج طبرسى، ص٥٣)

तर्जुमा : फिर वह (हज़रत अली रज़ि०) खड़े हुए और नमाज़ की तैयारी की और मस्जिद में आ गये और अबू बक्र रज़ि० के पीछे नमाज़ अदा की।

यह तो सरसरी तौर पर कुछ रिवायात शिया पुस्तकों की पेश कर दी गईं जिनसे हज़रत अली रज़ि० और हज़रत अबू बक्र रज़ि० के बीच अच्छे सम्बंधों की जानकारी होती है। सच्ची बात यही है कि इन दोनों के बीच कोई इख़्तिलाफ था ही नहीं और अली मुर्तज़ा रज़ि ने बिल्कुल शुरूआती दौर ही में सिद्दीक अकबर रज़ि० के हाथों पर बैअत कर ली थी और फिर आखिर तक हर प्रकार से उनके सहयोगी और मुशीरे खास के तौर पर उनका साथ देते रहे। यह तो बाद का मस्लिहत आमेज़ प्रोपेगण्डा है कि सिद्दीक़ अकबर रज़ि० और अली मुर्तुज़ा में कुछ इख़्तिलाफ़ था जैसा कि शुरू में ही साफ़ ज़ाहिर किया जा चुका है कि इब्ने सबा की साज़िश उसकी मुहर्रिक अव्वल है और फिर अब्बासी हुकमरानों ने अपने सियासी फ़ायदे की ख़ातिर इसको हवा दी।

लेकिल इन तमाम हक़ीक़तों के बावजूद भी अगर शिया हज़रात इस क़िस्म की बातें करें तो कोई हैरत की बात नहीं है हैरत तो इस प्रोपेगण्डे से मुतासिर होकर उन हज़रात पर होती है जो अपने को अहले सुन्नत वल जमाअत में शामिल करने के

बावजूद तफ़ज़ीली बने रहते हैं जब कि ख़ुद अली मुतुर्ज़ा रज़ि को इस किस्म की बातें सुन कर जो रूहानी तकलीफ़ होती थी और इस प्रोपगण्डे से वह जितना खफा थे इसका अंदाज़ा अल्लामा इब्ने अब्दुल बर के इस्तीआब में नक़ल की गई हज़रत अली रज़ि० की इस बात से होता है :

قال علىؓ لا يفضلنى احد على ابى بكرؓ و عمرؓ الا جلدته حد المفترى۔

तर्जुमा : हज़रत अली रज़ि० ने फ़रमाया कि जो व्यक्ति मुझको अबू बक्र रज़ि० और उमर रज़ि० से अफ़ज़ल कहेगा उसको मैं झूठी तोहमत बांधने वाले की सज़ा दूंगा।

अब रह गया उन कुछ रिवायात का मामला जिनसे मालूम होता है कि अली मुर्तुज़ा रज़ि ने हज़रत फ़ातिमा ज़हरा रज़ि० की वफ़ात के बाद सिद्दीक़ अकबर रज़ि० के हाथों पर बैअत की तो इसका कारण यह है कि वह बार बार बैअत करके साबित करना चाहते थे कि उनका इस राफ़ज़ी ग्रूप से संबंध नहीं है जिसके संबंध में हुजूर अ० पेशीनगोई फ़रमा चुके थे कि एक गुमराह समूह उतपन्न होगा जो अहले हक को छोड़ कर खुद महाज़ आराई करेगा। चूंकि हज़रत फ़ातिमा रज़ि० की सिद्दीक़ अकबर रज़ि० से मीरास तलबी और सिद्दीक़ अकबर रज़ि० के फ़रमाने नबवी ''हम किसी को वारिस नहीं बनाते हम जो कुछ छोड़े वह सदक़ा होगा'' की रौशनी में नबियों के माल में मीरास न जारी होने का हुकम करने से वक्ती तौर पर अली रज़ि० और हज़त सिद्दीक़ अकबर रज़ि० में कुछ तनाव पैदा हो गया था इस लिए अली मुर्तुज़ा रज़ि० ने दोबारा ऐलानिया बैअत करके यह बावर कराया था कि अब हमारे दिलों में कोई मैल कुचैल नहीं है और फरमाने नबवी की रौशनी में हम नबी की

मीरास के मांगने वाले नहीं हैं।

अली मुर्तुज़ा रज़ि० की यही दूसरी बैअत हमेशा हमेश के लिए उन लोंगों के मुंह पर ताला डाल देने के लिए काफी है जिनका यह प्रोपेगण्डा है कि अबू बक्र रज़ि० और अली रज़ि० के दरमयान इख़्तिलाफ़ था और अबू बक्र रज़ि० से ज़्यादा अली रज़ि० अपने को खिलाफत का हक़दार समझते थे।

अल्लाह की पनाह! अली मुर्तुज़ा रज़ि० की पाक और मुक़द्दस सीरत पर यह ज़बर दस्त हमला है और यह अली मुर्तुज़ा की तफ़ज़ील के नाम पर उनकी तंक़ीस है। अल्लाह पाक हमको इस मकरूह साज़िश का शिकार होने से महफ़ूज़ फ़रमाये। (आमीन)

शियों के मासूम अइम्मा और उनके रावी

शिया एक मुस्तक़िल धर्म है इसका इस्लाम से कोई सम्बंध नहीं है फिर भी इसका सम्बन्ध धर्म इस्लाम से जोड़ा जाता है और उसे एक इस्लामी गिरोह क़रार देने की लगातार कोशिशें की जाती रही हैं।

जहां तक खुद शिया धर्मगुरूओं का प्रश्न है तो वह भी इस सम्बंध में अजीब परेशानी और बेचैनी के शिकार नज़र आते हैं क्योंकि शिया धर्म में "इमामत" मूल आधार है और इमामत उस पहेली का नाम है जिसे हल करना किसी के बस की बात नहीं है।

एक ओर इमामों की यह हैसियत कि वह मासूम हैं यानी उनसे कोई गुनाह हो ही नहीं सकता। उनकी इताअत अनिवार्य है यानी उनके किसी हुकम का विरोध करके कोई शिया शिया नहीं रह सकता। उनकी इमामत मंसूस होती है यानी इमामों का चुना जाना ख़ुदा के हुकम से होता है और इसमें किसी भी इंसान को दख़ल अंदाज़ी का कुछ भी हक नहीं होता है।

दूसरी ओर इमामों का यह हाल है कि उनकी शिक्षा बिल्कुल शक वाली, उनकी बातें गैर मोतबर, उनसे मंसूब रिवायात के अंदर बहुत ज़्यादा इख़्तिलाफ़ात और फिर इन इख़्तिलाफ़ात का कारण मालूम करना इंसानी ताक़त के बाहर

है।

अब बेचारे इमामों पर भरोसा करने वाले, उन्हीं के फ़रामीन पर अपने धर्म की बुनियाद रखने वाले शिया किस बात को ग़लत समझें और किसको सही? किस पर अमल करें और किसे छोड़ दें? किसे तक़िय्या करार दें किसे हकीकत? यह मामला परेशन करने वाला है कि उलमा और शिया मुजतहिदीन भी बिलबिला उठते हैं, और इख़्तिलाफ़ात की इन खाइयों को पाटने के लिए उनको कोई डगर नहीं मिल पाती इसी लिए शियों के बहुत बड़े मुजतहिद मौलवी दिलदार अली अपनी पुस्तक असासुल उसूल से पृ० ५१ पर अपनी बेचारगी का हाल इस तरह बयान करते हैं :

الاحاديث الماثورة عن الائمة مختلفة جداً لا يكاد يوجد حديث الاوفى مقابلته ما ينافيه و لا يتفق خبر الاو بازائه ما يضاده حتىٰ صار ذلك سببا لرجوع بعض الناقصين عن اعتقاد الحق كما صرح به شيخ الطائفة فى اوائل التهذيب و الاستبصار و منا شى هذه الاختلافات كثيرة جدا من التقية و الوضع و اشتباه السامع و النسخ و التخصيص و التقييد و غيرها من الامور الكثيرة كما وقع التصريح على اكثرها فى الاخبار الماثورة عنهم و امتياز المناشى بعضها عن بعض فى باب كل حديثين مختلفين بحيث يحصل العلم و اليقين بتعين المنشاء عسير جداً و فوق الطاقة كما لا يخفىٰ۔

तर्जुमा : इमामों से मंकूल अहादीस के दरमयान बहुत ज़्यादा इख़्तिलाफ़ात हैं यहां तक कि कोई हदीस ऐसी नहीं मिल पायेगी जिसके मुकाबले में उसकी मुख़ालिफ़ दूसरी हदीस न हो और कोई

रिवायत ऐसी न होगी जिसकी ज़िद में दूसरी रिवायत न हो। यहां तक कि यही मामला कुछ नाक़िस लोगों के शिया धर्म से फिर जाने का कारण बन गया है जैसा कि शैख़ुतताइफ़ा ने अपनी पुस्तकों ''तहज़ीब'' और ''इस्तबसार'' के शुरू में इसका विस्तार किया है और इन इख़्तिलाफ़ात के असबाब बहुत ज़्यादा हैं जैसे कि तक़िय्या और मौज़ू रिवायात और सुनने वाले को शक पैदा होना, और किसी हदीस का मंसूख़ या मख़सूस या मुक़य्यद होना और उनके अतिरिक्त और भी बहुत से कारण हैं जैसा कि इनमें से अधिक कारण इमामों से मंकूल रिवायात में मौजूद हैं लेकिन इन असबाब में से एक दूसरे से दो मुख़्तलिफ़ हदीसों में इस तरह फर्क़ करना कि इख़्तेलाफ़ात का सबब यकीनी तौर पर मुतअय्यन हो जाये बहुत ही मुश्किल है और इंसानी ताक़त से बाहर है। जैसा कि छुपा नहीं है।

महान मुजतहिद के इस इक़रार से कुछ बातें मालूम हुईं।

१. इमामों से मंकूल रिवायात के दरमयान इस दर्जा इख्तलाफ है कि कोई भी रिवायत ऐसी नहीं मिल सकेगी जिसके विरूध और उसकी ज़िद में दूसरी रिवायत मौजूद न हो।

२. यह इख्तलाफ हल होने वाला नहीं है इसी कारण कुछ कम बुद्धि के लोग घबरा कर और आजिज़ आकर शिया धर्म को छोड़ने पर मजबूर हो गये।

३. इन इख़्तेलाफ़ात के असबाब बहुत ज़्यादा हैं जिनमें तक़िय्या, सुनने वाले का मुश्तबा होने, रिवायात के ख़ास या बाधित होने के साथ साथ नस्ख़ भी एक कारण है।

जिससे मालूम होता है कि शियों के निकट हुजूर अलैहिस्साम की मृत्यु के बाद भी नस्ख़ का सिलसिला जारी था। और हुजूर अलैहिस्सलाम की तरह इमामों को भी किसी हुकम को निरस्त (निरस्त) करने का इख़्तियार प्राप्त था। (नबियों के मुख्य इख़्तियारात इमामों को देना ख़त्मे नबूवत का इंकार नहीं तो फिर क्या है?)

४. दो मुख़तलिफ़ रावियों के दरमयान इख़तेलाफ़ का हक़ीक़ी कारण ढूँढ पाना कि इमाम ने एक रिवायत में जो बात कही है इसके बिल्कुल अलग और उलटी बात दूसरी रिवायत में क्यों कही? तक़िय्या कर लिया, या पहले वाले हुकम को मंसूख़ कर दिया या दो में से कोई ख़ास है या कोई और सबब है ...... इसका यक़ीनी तौर पर पता लगाना इंतहाई दुश्वार और इंसानी ताकत से बाहर है।

अब बेचारे शिया क्या करें? दोनों रिवायतों पर अमल करें? यह मुमकिन नहीं! दो में से एक को क़ाबिले अमल समझें और दूसरी को किसी कारण छोड़ दें? मगर यक़ीनी तौर पर सबब मालूम नहीं हो सकता! जिसका मुंह जिधर उठे उधर चल दे .... यानी जिस रिवायत पर जी चाहे अमल करे और इमामों के फरमान की खिलाफ वर्ज़ी के बावजूद शिया बना रहे

कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या?

इमाम जिनकी इताअत शिया धर्म में अनिवार्य है और जिसके बग़ैर नजात मुमकिन नहीं हैं फिर वह मासूम भी होते हैं अल्लाह की जानिब से इमामत के स्थान पर फायज़ होते हैं। उनके कार्य का क्या तरीका था? दीनी मसले में किस तरह गलत बयानियां करते थे एक मसले के किस किस तरह उत्तर देते थे अपनी इमामत के बचाव की ख़ातिर धर्म से किस तरह खेलते थे और इख्तिलाफ और इंतेशार का बीज बो कर किस

तरह सन्तुष्ट होते थे? ज़रा इकसी भी एक झलक देखते चलिए।

शियों की सबसे ज़्यादा मुस्तनद और मोतबर पुस्तक उसूले काफी पृ० ३७ में रिवायत है :

عن زرارة ابن اعين عن ابی جعفر قال سألته عن مسئلة
فأجابنی ثم جاء ہ رجل اٰخر فسئله من تلك المسئلة
فأجابه بخلاف ما اجابنی ثم جاء آخر فأجابه
بخلاف ما اجابنی و اجاب صاحبی فلما خرج
الرجلان قلت یا ابن رسول الله رجلان من اهل العراق
من شیعتكم قدما یسئلان فاجبت كل واحد منهما
بغیر ما اجبت صاحبه فقال یا زرارة ان هذا خیرلنا و
ابقیٰ لنا و لكم و لو اجتمعتم علی امر واحد لصدقكم
الناس علینا و لكان اقل لبقاء نا و بقائكم۔

तर्जुमा : जुरारा बिन आयुन बयान करते हैं कि मैंने अबू जाफ़र (इमाम बाक़र) से एस मसला पूछा तो उन्होंने मुझको इसका उत्तर दे दिया फिर एक दूसरा व्यक्ति आया उसने भी वही मसला पूछा तो उन्होंने मेरे उत्तर से अलग हट कर उत्तर दिया, फिर एक व्यक्ति आया (और उसने भी वही मसला पूछा) तो उसको उन्होंने मेरे और मेरे साथी के उत्तरों से मुख़तलिफ़ उत्तर दिया जब वह दोनों आदमी चले गये तो मैंने इमाम से कहा कि ए फ़रज़न्दे रसूल! यह दोनों व्यक्ति इराक़ के बासी आपके शिया आपके पास एक ही मसला पूछने के लिए आये थे आपने उनमें से हर एक को दूसरे से अलग उत्तर दिया? तो इमाम ने हका ऐ जुरारा यही हमारे हक में बेहतर है और इसी में हमारी

और तुम्हारी बक़ा है और अगर तुम लोग किसी एक मामले पर मुत्तफ़िक़ हो गये तो लोग तमको हमसे रिवायत करने में सच्चा समझने लगेंगे और यह चीज़ हमारी और तुम्हारी दोनों की बका को कम कर देगी।

जुरारा साहब की बयान कर्दा इस रिवायत से इमाम बाक़र का जो क़िरदार उनकी करनी और कथनी और करनी की दृष्टि में इसका विस्तार कुछ यूं है :

१. इमाम दीनी मसलों को ग़लत बयान करते थे और एक ही मसले का किसी को कुछ उत्तर देते थे किसी को कुछ, ताकि सबके उत्तरों में बराबरी न हो सके।
२. इमाम चाहते थे कि इख़्तलाफ़ात बाकी रहें यहीं चीज़ उनके हक़ में बेहतर थी और उनके और उनके रावियों के बाक़ी रहने का राज़ इसी इख़्तेलाफ़ में छुपा था।
३. इमाम नहीं चाहते थे कि उनके रावियों को सच्चा समझा जाये और अवाम को उन पर ऐतमाद हो वह चाहते थे कि लोग रावियों को झूठा और नाक़ाबिले एतबार समझते रहें।
४. इमाम अपने दुनियावी मक़ासिद को प्राप्त करने और अपने सत्ता की साख का बाक़ी रखने की ख़ातिर धर्म की परवाह नहीं करते थे उनको इस जिम्मेदारी का एहसास नहीं था कि वह अल्लाह की ओर से दीनी रहनुमाई के ज़िम्मेदार हैं
५. इमाम की इताअत मुमकिन नहीं क्योंकि जब एक ही मसले के दो अलग अलग उत्तर देंगे तो किसे सही समझ कर अमल किया जायेगा?
६. इमाम मासूम होने के बावजूद सियासी मसलेहतों की ख़ातिर झूठ बोला करते थे।

इन हालात में बेचारे शिया इन इमामों पर क्यों कर ऐतबार करें और उनसे असली और सच्चा धर्म किस तरह प्राप्त करें

कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या?

यह तो थी इमामें की हालत! अब ज़रा इमामों के इन रावियों के हाल देखिए जो इमामों से सुन कर दूसरों तक बात पहुंचाते थे गोया शिया और शियों के इमामों के दरमयान अहम कड़ी की हैसियत रखते थे और जिनका दावा यह था कि इमाम छुपे स्थानों में हमको ख़ुसूसी तौर पर धर्म की शिक्षा देते थे और तक़िय्या या किसी दूसरे सबब से जिन बातों को सबके सामने नहीं बताते थे वह भी इनको तंहाई में बता दिया करते थे दूसरे शब्दों में यूं कहिये कि यह रावी इमामें के राज़दार थे और इमाम इन पर भरोसा करते थे।

अब ज़रा इन अहम रावियों का हाल देखिए कि एक दूसरे को झुठला रहे हैं आपस में बोल चाल बन्द है एक दूसरे की बात पर ऐतबार करने को तैय्यार नहीं और इस सूरते हाल को देख कर मुजतहिदीन हज़रात अजीब कश्मकश में गिरफ्तर हैं कि किसको सच्चा समझा जाये किसको झूठा? किसकी मानी जाये किस की छोड़ दी जाये?

चुनांचे शियों के महान मुजतहिद मौलवी दिलदार अली साहब असासुल उसूल पृ० १२४ में लिखते हैं :

قال ثقة الاسلام فی الکافی علی ابن ابراهیم عن
الشریع بن الربیع قال لم یکن ابن ابی عمیر یعدل
بهشام بن الحکم شیئاً ولا یغب اتیانه ثم انقطع عنه و
خالفه و کان سبب ذلك ان ابا مالك الحضرمی کان
احد رجال هشام وقع بینه و بین ابی عمیر ملاحاة فی
شیء من الامامة قال ابن ابی عمیر الدنیا کلها للامام

من جهة الملك و انه اولیٰ بها من الذين هی فی ايديهم و قال ابومالك كذالك املاك الناس لهم الا ما حكم الله به للامام الفئى و الخمس و المغنم فذالك له و ذالك ايضاً قد بين الله للإمام اين يضعه و كيف يضع به فتواصيا بهشام بن الحكم و صارا اليه فحكم هشام لأبى مالك على ابن ابی عمير فغضب ابن ابی عمير و هجر هشاما بعد ذالك فانظروا يا اولی الالباب و اعتبروا يا اولی الابصار فإن هذه الأشخاص الثلاثة كلهم كانوا من ثقات اصحابنا و كانوا من اصحاب الصادق و الكاظم و الرضا عليهم السلام كيف وقع النزاع بينهم حتیٰ وقعت المهاجرة فيما بينهم مع كونهم متمكنين من تحصيل العلم و اليقين عن جناب الائمة۔

तर्जुमा : सिक़तुल इस्लाम (याकूब कलीनी) पुस्तक काफी में बयान करते हैं कि अली बिन इब्राहीम शुरै बिन रबी से रिवायत करते हुए कहते हैं कि इब्न अबी उमैर हिशाम बिन हकम का हम रूतबा किसी को नहीं समझते थे और उनके निकट आने से किसी दिन नागा नहीं करते थे फिर कुछ दिन बाद उनसे ताल्लुक़ समाप्त कर लिया और उनके विरोधी हो गये और इसका कारण यह था कि अबू मालिक हज़रमी (जो कि इब्ने हिशाम के रावियों में से एक थे) और इब्न अबी उमैर के दरमयान इमामत के एक मसले में इख़्तेलाफ़ पैदा हो गया। इब्न अबी उमैर कहते थे कि पूरी दुनिया इमाम की मिलकियत है और इमाम बमुक़ाबला उन लोगों के जिनके हाथ में दुनिया है तसर्रुफ़ का ज़्यादा हक़

रखते हैं। और अबू मालिक कहते थे कि दुनिया की तमाम इमलाक उनके मालिक ही की मिलकियत होती हैं इमाम को उनमें बस केवल उतरा ही खर्च करने कर हक है जिस क़द्र ख़ुदा ने बयान कर दिया है यानी फ़ैय और ख़ुमुस और ग़नीमत, और इनके संदर्भ में भी ख़ुदा ने बयान कर दिया है कि इमाम कहां ख़र्च करे और किस तरह खर्च करे तो दोनों हिशाम से फैसला कराने पर राज़ी होकर उनके पास गये तो हिशाम ने इब्ने अबी उमैर के मुक़ाबले अबू मालिक के हक़ में फैसला दे दिया इस पर इब्ने अबी उमैर गुस्सा हो गये और इसके बाद हिशाम को छोड़ दिया। तो देखो ऐ अक़्ल वालों और इबरत प्राप्त करो ऐ साहिबाने बसीरत! कि यह तीनों हज़रात हमारे मोतबर रावियों में से हैं और इमाम जाफ़र सादिक़ और इमाम मूसा काज़िम और इमाम रज़ा के असहाब हैं उनके दरमयान किस तरह इख़्तेलाफ़ पैदा हो गया यहां तक कि एक ने दूसरे को छोड़ दिया बावजूद कि यह लोग इमामों से सही और यक़ीनी बात का ज्ञान प्राप्त करने पर कादिर थे।

महान मुजतहिद के इस विस्तृत बयान से निम्न बातें सामने आती हैं :

१. इमामों के रावियों के दरमयान आपस में किसी इल्मी और दीनी मसले में इख़्तेलाफ़ हो जाता तो वह एक दूसरे से मिलना जुलना और उनकी इज्जत करना भी छोड़ देते थे।

२. इमामों की मौजूदगी के बावजूद मसले का सही हल

इमामों से न पूछ करके ख़ुद अपनी राय पर अड़े रहते थे और हर हाल में अपनी ही राये को आगे रखना चाहते थे।

३. रावियों के दरमयान यह इख़्तिलाफ़ धर्म के ख़ातिर न था वर्ना अपनी राय पर इस दर्जा इसरार न होता कि इससे इख़्तिलाफ़ करने वाले से मिलना जुलना ही छोड़ दिया जाता और अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ ही बिचौलिये से फैसला करने पर इसरार होता।

४. महान मुजतहिद हैरानी और परेशानी में साहिबाने अक्ल व खिरद और अहले बसीरत को सोचने और इबरत प्राप्त करने की दावत दे रहे हैं कि देखो इमामों के रावियों का क्या हाल है कि इमामों से सही और यकीनी शिक्षा प्राप्त करने की कुदरत के बावजूद किस तरह आपस में लड़ झगड़ रहे हैं।

इमामत शिया धर्म के बुनियादी अकीदे में से है। अब पाठकगण सोचें कि मासूम इमामों का यह हाल है कि वह अपना सही धर्म शियों को बताना ही नहीं चाहते थे इमामों के रावियों का यह हाल कि वह इमामों से दीनी रहनुमाई प्राप्त नहीं करना चाहते फिर शियों तक उन्हीं इमामों से मंसूब और उन्हीं रावियों से मंकूल यह धर्म कैसे पहुंचा और इसका क्या एतबार है।

कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या?

☆☆☆

ग़दीरी अफ़साने की हक़ीक़त

पस मंज़र : इस्लामी अक़ीदों और तारीखी हक़ीक़तों के लिहाज़ से अमीरूम मोमिनीन हज़रत अली रज़ि० हुजूर अकरम स० के चौथे ख़लीफ़ा थे और उन्होंने अपने दौर–ए–ख़िलाफ़त में अपने से पूर्व के तीनों ख़लीफ़ाओं हज़रत अबू बक्र रज़ि०, हज़रत उमर रज़ि०, और हज़रत उस्मान रज़ि० ही के तरीक़ों पर चलने की कोशिश की अगरचे उनको इस सम्बंध में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा लेकिन शियों का इस बात पर ज़ोर है कि हज़रत अली रज़ि० ही रसूलुल्लाह स० के पहले ख़लीफ़ा थे और उनने पूर्व तीनों ख़लीफ़ा नऊज़ु बिल्लाह हक पर न होकर ख़िलाफ़त के गासिब थे।

इस अक़ीदे को पेश करने वालों के सामने सबसे बड़ा रोड़ा तारीख़ की यह कड़वी सच्चाई है कि ख़िलाफ़ते राशिदा के ३० वर्ष की अवधि में से शुरू के २५ वर्ष (जिनमें हज़रत अबू बक्र रज़ि०, हज़रत उमर रज़ि०, और हज़रत उस्मान रज़ि० एक एक करके ख़लीफ़ा होते रहे) ही पूरी इस्लामी तारीख़ का सबसे अंमूल पूंजी और इस्लामी शिक्षा के मुकम्मल लागू होने का दौर कहलाने के लायक़ हैं। और अगर तीनों ख़ालीफ़ाओं के ख़िलाफ़त काल को इस्लामी तारीख़ से अगल करके उसे नऊज़ु बिल्लाह गासिबों और बाग़ियों का दौरे हकूमत क़रार दे दिया जाये तो एक इंसाफ पसन्द मोर्रिख़ और दियानत दारी और

सच्चाई के साथ तज़ज़िया करने वाला इंसान यह कहने पर लाचार हो जायेगा कि मानने वालों से अच्छे तो यह बागी ही थे जिनके दम से इस्लामी निज़ाम को फैलने फूलने ही का मौक़ा नहीं मिला बल्कि जिन्होंने अपनी कथनी व करनी से इस्लामी शिक्षा और इस्लामी निज़ाम का एक ऐसा नमूना पेश किया कि जिससे ऊपर की बात आज तक दुनिया सोच भी न सकी। हक़ीक़त यह है कि हज़रत अली रज़ि० को खुदा के रसूल स० का हक़ीक़ी नायब और पलहा ख़लीफ़ा ज़बान से कह देना तो सरल है लेकिन उनके ख़िलाफ़त काल की पिछले तीनों ख़लीफ़ाओं के दौरे ख़िलाफ़त से तुलना करते हुए उन्हें पहली ख़िलाफ़त का हक दार बना देना और हक़ीक़त और वाक़िआत के प्रकाश में हज़रत अली रज़ि० को हज़रत अबू बक्र रज़ि०, हज़रत उमर रज़ि० और हज़रत उस्मान रज़ि० से बेहतर और अच्छा साबित करना नामुमकिन और मुश्किल है क्योंकि तारीख़ की बे रहम सच्चाइयां अक़ीदत और नफ़रत से बे न्याज़ हुआ करती हैं। इस मुश्किल की नय्या पार करने के लिए यह डगर निकाली गयी कि पैग़म्बर की ज़बान से अली रज़ि० की जानशीनी और पहली ख़िलाफ़त का ऐलान करा दिया जाये ताकि किसी विरोध की गुंजाइश ही न रह जाये, और पैग़म्बर की बात को बेहतर और नजात समझ कर मान लिया जाये .... यह है हदीस ग़दीर और इसकी वज़ाहतों का पस मंज़र जिसको समझ लेने के बाद आगे की कार्यवाहियों को समझने में कोई मुश्किल न होगा।

हदीसे गदीर और इसकी तशरीहात : शिया ''रसूल के जिस कथन'' को हज़रत अली रज़ि० के जांनशीने पैगम्बर और पहले ख़लीफ़ा होने के लिए असल करार देते हैं इसका विस्तार यूं है कि पैग़म्बरे इस्लाम स० ने हज्जतुल वदा

से वापसी में ''ग़दीरे ख़ुम'' के सथान पर अपने तमाम सहाबियों की भीड़ में एक भाषण दिया जिसमें सबसे पहले हज़रत अली रज़ि० की तारीफ़ की और फिर उनको अपने हाथों से उठा कर भीड़ की ओर उनका रूख करते हुए फ़रमाया जिसका साफ और ज़ाहिर अर्थ यह है कि जिसका मैं हाकिम और पैशवा हूं अली रज़ि० भी उसके हाकिम और पैशवा हैं'' और इस इरशादे पैग़म्बर का मंशा अली रज़ि० के मित्रों और शत्रुओं'' के भरे समूह में इस बात को साफ कर दिया कि मेरे बाद मेरे जांनशीन अली रज़ि० होंगे तो जिन लोगों ने मेरी बात मान ली है उन पर मेरे जांनशीन होने की हैसियत से अली रज़ि० की बात माननी अनिवार्य होगी।

हदीसे रसूल **मन कुन्तु मौलाहु फ अलिय्युन मौलाहु** की तशरीह या उसके पस मंज़र के सिलसिले में शियों की ओर से यह बयान किया जाता है कि जब कुरआन मजीद की आयत ياايها الرسول بلغ ما انزل اليك من ربك जिसका अर्थ यह है कि ऐ रसूल! अल्लाह की तरफ़ से जो कुछ आप पर नाज़िल किया गया है उसकी तबलीग़ कीजिए।'' उतरी। तो रसूलुल्लाह स० ने हज़रत जिब्रईल अलैहिस्सलाम से कहा कि मुझे बहुत डर लगता है। हज़रत जिब्रईल अ० ने पूछा कि किस बात का डर? फ़रमाया कि ख़िलाफ़ते अली का अली के शत्रुओं के सामने ऐलान और तबलीग़ से डर मालूम होता है, पैगम्बर का यह पैगाम लेकर जिब्रईल अल्लाह के निकट पहुंचे और उनका हाल बयान करते हुए कहा कि वह तो ख़िलाफ़त के ऐलान से डर रहे हैं तब अल्लाह ने जिब्रईल अ० को आयत का अगला भाग लेकर भेजा و ان لم تفعل فما بلغت رسالته जिसका अर्थ यह है ''और ऐ पैगम्बर अगर तुमने यह कार्य (अली की ख़िलाफ़त का ऐलान) न किया तो ख़ुदा का पैगमाम पहुंचाने का

हक ही न अदा होगा'' इसके यानी इतनी सख़्ती और धमकी के बावजूद भी खुदा के रसूल का डर खत्म न हुआ और उन्होंने जिब्राईल से अपने अंदेशों को ज़ाहिर करते हुए यही कहा कि मैं दुश्मनाने अली रज़ि० के डर से उनकी ख़िलाफ़त का ऐलान करने से बेबस हूं अब जिब्राईल दोबारा फिर ख़ुदा के निकट गये और उनसे पैगम्बर के डर की कैफ़ियत बयान करते हुए उनकी सिफ़ारिश की कि दुश्मनों से हिफ़ाज़त की ज़मानत के बगैर वह वाकई ऐसे ''मोहतम बिशशान'' ऐलान से मजबूर हैं, भले ही रिसालत का हक अदा न हो तब ख़ुदा को अपने पैग़म्बर पर रहम आया और उन्होंने जिब्राईल से कहा कि जाओ मेरे पैग़म्बर को आयत का अगला हिस्सा भी सुना दो कि ''**वल्लाहु यासिमुक मिनन्नास**'' जिसका अर्थ यह है कि अल्लाह लोगा (दुश्मनाने अली रज़ि०) से तुम्हारी हिफ़ाज़त करेगा और तुमको बचा लेगा'' इस ज़मानत और हिफ़ाज़त की जिम्मेदारी के बाद पैग़म्बरे खुदा ने ख़िलाफ़ते अली रज़ि० का ऐलान इन शब्दों में किया जिसका आर्थ यह है من كنت مولاه فعلى مولاه ''मैं जिसका मौला हूं उसके मौला अली हैं''

कुछ तवज्जू करने की बातें : (१) हज़रत अली रज़ि० के ख़िलाफ़त के ऐलान के संबन्ध में जो हदीस पेश की जाती है उसे हदीसे ग़दीर के नाम से याद किया जाता है और इसका कारण यह बयान किया जाता है कि मुहम्मद स० ने यह ऐलान हज करने के बाद मक्के से मदीना वापस जाते हुए ''ग़दीरे ख़ुम'' के स्थान पर किया था।

इस बयान से यही अंदाज़ा होता है कि गदीरे ख़ुम मक्का और मदीना के बीच कोई स्थान होगा हालांकि इस हक़ीक़त से इंकार की आज भी कोई हिम्मत नहीं कर सकता कि मक्के से मदीना जाने वाले किसी भी रास्ते पर ग़दीरे ख़ुम नामक को

स्थान है ही नहीं बल्कि यह स्थान मक्का से मदीना जाने वाले रास्तों से अलग हट कर बहुत दूरी पर है। फिर क्या रसूल स० मदीने जाने वाले रास्ते को छोड़ कर अपने हज़ारों सहाबियों के साथ केवल ख़िलाफ़ते अली रज़ि० का ऐलान करने के लिए ग़दीरे ख़ुम के स्थान पर गये थे? अगर ऐसा हुआ तो इसका कारण क्या हो सकता है? क्या इस अहम ऐलान के लिए अरफ़ात के मैदान से ज़्यादा कोई अच्छा स्थान हो सकता था जहां एक ही समय में तमाम हज करने वालों का इकट्ठा होना अनिवार्य है, और जहां रसूल स० ने अपना वह अहम और प्रमुख भाषण भी दिया था जिसे खुतबा–ए–हज्जतुल विदा के नाम से याद किया जाता है, लेकिन इस पूरे भाषण में इशारतन या किनायतन किसी भी तरह हज़रत अली रज़ि० की ख़िलाफ़त का कोई ज़िक्र नहीं है और अगर यह कहा जाये कि इस ख़ुतबे के बाद और अरफ़ात से रवाना होने के बाद पैग़म्बर को हज़रत अली की ख़िलाफ़त के ऐलान का हुकम दिया गया तो भी ग़दीर ख़ुम के स्थान के चुनने का कोई माकून कारण पेश नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह तो एक छोटा सा तालाब था जिसके निकट कोई बड़ा मैदान भी न था और फिर मक्का से लौटते समय मदीने के रास्ते को छोड़ कर ग़दीरे खुम तक पहुंचने और फिर वहां यह ऐलान करने का कोई कारण नहीं पेश किया जा सकता।

(२) जैसा कि शीई रिवायात से ज्ञात हुआ कि पैगम्बरे इस्लाम स० खुदा के साफ़ और स्टीक हुकम के बावजूद दुश्मनों के डर से ख़िलाफ़ते अली रज़ि० का ऐलान करने से कतरा रहे थे और खुदा की इस धमकी के बावजूद भी कि अगर तुमने ख़िलाफ़ते अली रज़ि० का ऐलान न किया तो फ़रीज़ा–ए–रिसालत का हक ही अदा न होगा। वह ऐलाने हक़

से कतरा रहे थे हत्ता कि अल्लाह ने दुश्मनों से हिफ़ाज़त का जिम्मा ले लिया तब ऐलान किया।

(३) ऐलाने हक करने और रिसालत के फ़रीज़े से ग़फ़लत बरतने की यह तोहमत उस पैगम्बर पर लगाई जा रही है जिसकी पूरी किताबे ज़िन्दगी खुली हुई है और जिसने अपने धर्म के दुश्मनों को साफ़ साफ़ और स्टीक शब्दों में कहा था :

انکم و ما تعبدون من دون الله حصب جهنم

अर्थ : तुम और तुम्हारे वह माबूद जिनको तुम अल्लाह के अलावा पूजते हो सब नर्क का ईंधन हैं।''

और जिसने सूरः काफ़िरून सुनाकर साफ ऐलान किया था कि धर्म के मामले में किसी तरह का कोई समझौता कुबूल नहीं है यह वही पैग़म्बर हैं जिन्होंने अपने शफ़ीक़ चचा अबू तालिब की सिफ़ारिश पर यह कह दिया था कि ''चचा खुदा की ओर से उसके बन्दों तक जो पैग़ाम पहंचाने की ज़िम्मेदारी मुझ पर डाली गई है उसमें किसी किसम की कोताही नहीं करूंगा चाहे आप भी मेरा साथ छोड़ दें।''

वह पैगम्बर जिसके दुश्मनों ने भी इस बात को कुबूला कि अगर वह मसलिहत से काम लेकर धर्म के मामले में मुश्रिकीने मक्का से सुलह कर लेते और ऐलानिया तौर पर इस्लाम धर्म के प्रचार से रूक जाते तो सारे मक्का के लोग उनकी लीडरी को मान लेते और उनसे ज़्यादा कोई दूसरी शख़्सियत महबूब नहीं होती।

अल्लाह के इस महान पैगम्बर की ज़िन्दगी और उसके कैरक्टर से क्या यह बात मेल खाती है कि वह ख़ुदा के इसरार के बावजूद सिर्फ़ दुश्मनों के डर से ख़िलाफ़ते अली रज़ि० के ऐलान का फ़रीज़ा अंजाम देने से इंकार करता रहे?

इस इसरार और इंकार और जिब्रईल अमीन के बार बार आने जाने और ख़ुदा की ओर से दुश्मनों से हिफ़ाज़त की गारंटी प्राप्त करने के बावजूद भी रसूले खुदा न साफ़ साफ़ यह ऐलान नहीं किया कि लोगो! सुन लो! मेरे बाद अली रज़ि० मेरे जांनशीन और ख़लीफ़ा होंगे लेहाज़ा तुम मेरी ही तरह उनकी बात मानना बल्कि ऐलान किया तो यूं कि मन कुन्तु मौलाहु फ अलिय्यु मौलाहु यानी जिसका मैं मौला हूं उसके मौला अली भी हैं?

(४) अरबी शब्द कौष में मौला के अनेक अर्थ बयान किये गये हैं मौला का अर्थ दोस्त, मददगार, आज़ाद शुदा गुलाम, मालिक व आक़ा और इसके अतिरिक्त और भी अर्थ हैं ..... लेकिन किसी भी शब्द कौष में मौला का अर्थ इमाम, हाकिम या ख़लीफ़ा नहीं बयान किया गया है फिर किस क़ायदे से यह तर्जुमा करना या यह माना मुराद लेना ठीक होगा कि **मन कुन्तु मौलाहु फ अलिय्युन मौलाहु** का मतलब यह है कि मैं जिसका हाकिम या इमाम हूं अली भी उसके हाकिम या इमाम होंगें?

और फिर एक प्रश्न यह भी है कि रसूल स० ने ख़िलाफ़ते अली जैसे महान विषय के ऐलान के लिए जिस पर रिसालत के फ़रीज़े की अदायगी का दारोमदार था मौला जैसे मुबहम और अनेक अर्थों वाले शब्द को कियों चुना। और क्यों न साफ़ साफ़ शब्दों में कह दिया कि मेरे बाद अली रज़ि० मेरे ख़लीफ़ा और जांनशीन होंगे? क्या रसूल स० अली रज़ि० को अपनी ख़िलाफ़त का जायज़ हक़दार नहीं समझते थे, और जबरन उनको इसका ऐलान करना ही पड़ा तो गोल मोल अंदाज़ में कर दिया कि साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे? या **मन कुन्तु मौलाहु फ अलिय्युन मौलाहु** का मफ़हूम और इसका पसमंज़र ही ग़लत बयान करके रसूल स० की बे दाग

शख्सियत पर बोहतान बांधा जा रहा है?

अस्ल हक़ीक़त : और अब आइये इस ग़दीरी अफ़साने की अस्ल हक़ीक़त भी समझ लें जिसके द्वारा यह बात बिल्कुल साफ़ हो जायेगी कि **मन कुन्त मौलाहु फ अलिय्युन मौलाहु** से ख़िलाफ़ते अली का कोई सम्बंध ही नहीं है।

इस कमज़ोर रिवायत की कमज़ोरियों को नज़र अंदाज़ करते हुए अगर इसको एक बिल्कुल सही रिवायत की हैसियत से मान भी लिया जाये तो भी इसका पसमंज़र मालूम होने से हक़ीक़त बिल्कुल साफ़ अंदाज़ में सामने आ जाती है।

वाक़िया यह है कि हज के मोसम से पूर्व रसूल स० ने हज़रत अली रज़ि० को यमन का क़ाज़ी बनाकर वहां भेज दिया था। जब हज का समय आया तो हुज़ूर स० ने हज़रत अली रज़ि० को ख़बर दी कि हम लोग मदीना से हज के इरादे से मक्का जायेंगे तुम यमन ही से सीधे मक्का पहुंच जाओ चुनांचे ऐसा ही हुआ कि हज़रत अली रज़ि० यमन से रवाना होकर मक्के में हुज़ूर स० और आपके सहाबियों से जा मिले उनके साथ यमन से कुछ और लोग भी आये थे, और उनमें से कुछ लोगों ने हुज़ूर स० के सामने हज़रत अली की कुछ शिकायात और काज़ी की हैसियत से उनके बरताव को बहुत सख्त और नारवा लहजे में बयान किया। हुज़ूर स० ने उन लोगों की शिकायात और लहजे की तलख़ी से इस बात का अंदाज़ा कर लिया कि यह लोग बिना कोई कारण अली रज़ि० से बुग्ज़ और कीना रखते हैं इसी लिए बात का बतंगड़ बना रहे हैं। उन लोगों के इस रवैये से हुज़ूर स० को बहुत तकलीफ़ हुई और आपने अली रज़ि० से अपना ताल्लुक़ बयान करते हुए फ़रमाया कि **मन कुन्त मौलाहु फ अलिय्युन मौलाहु** यानी जिसका दोस्त मैं हूं उसके दोस्त अली हैं'' इस फ़रमान से साफ़ और सही

और स्टीक मक़सद हज़रत अली रज़ि० से बेजा तौर पर बुग्ज़ और कीना रखने वालों को तंबीह करना था कि तुम लोग अली रज़ि० को बे सहारा न समझना, बल्कि हक़ीक़त यह है कि जो शख़्स मुझे दोस्त रखता होगा वह अली रज़ि० को भी दोस्त रखेगा। और जो अली रज़ि० से दुश्मनी रखे वह समझ ले कि उसको हक़ीक़त में मुझसे भी दुश्मनी है।

यह है इस रिवायत का हक़ीक़ी मफ़हूम और इसका पसमंज़र जिससे बिला शुबा हज़रत अली रज़ि० की बहुत बड़ी फ़ज़ीलत और रसूल स० के उनके साथ ताल्लुक़ का तो इल्म होता है लेकिन इसे तोड़ मरोड़ कर ऐलाने ख़िलाफ़त के लिए पेश करना और फिर इसके साथ इस आयत يـا ايها الرسول بلغ مـا انزل اليك من ربك الخ को पेश करना जो अरफ़ात के मैदान में ज़िलहिज्जा की ९ तारीख़ को उतारी गई थी और फिर इसके द्वारा ख़ुदा के अंतिम पैग़म्बर रसूल स० पर हक को छुपाने का इलज़ाम लगाना ऐसी गुस्ताखाना जुरअत है जिसका कोई मोमिन गुमान और ख़याल तक नहीं कर सकता।

और यह सारी दूर दराज़ की तावीलें और ला हासिल मेहनतें सिर्फ़ इसी लिए हैं कि किसी तरह हज़रत अली रज़ि० का पहला ख़लीफ़ा और जांनशीने पैगम्बर होना साबित किया जा सके।

نعوذ بالله من شرور انفسنا و من سيئات اعمالنا۔

☆☆☆

पंजतन पाक की हक़ीक़त

मुसलमानों की आम जिहालत और धर्म के सम्बंध में जानकारी न होने का फायदा उठाते हुए धर्म के अलावा की बातों को धर्म के नाम पर जिस तरह फैलाया गया खास कर हुजूर स० के साथ मुसलमानों के जज़बाती लगाव का नाजायज़ फायदा उठाते हुए हुजूर स० और आपकी औलाद के नाम पर जिस तरह मुसलमानों के अक़ीदों को नष्ट करके उन्हें गुमाराह करने की कोशिश की गईं उनकी तफसीलात बड़ी दर्दनाक और इबरत के लायक़ हैं।

मुसलमानों ने अपने खुले दुश्मनों को तो पहचान लिया और उनकी बातों को ऐतमाद के लायक़ नहीं जाना लेकिन वह अपने दोस्तनुमा दुश्मनों की शातिराना चालों को न समझ सके और उनके घोले हुए ज़हर को मुसलमान आबे हयात समझ कर बराबर पीते रहे और यह ज़हर बराबर अपना काम करता रहा और मुसलमान मोहब्बते रसूल के ख़ुशनुमा गिलाफ़ में लिपटी हुई हलाकत का बराबर शिकार होते रहे।

मुसलमानों को उनके बुनियादी अक़ीदों से हटाकर अपने गढ़े हुए अक़ीदों का मतवाला बनाने में जो किरदार शियों ने अदा किया उसका अगर मुताला किया जाये तो इस नतीजे तक पहुंचने में देर न लगेगी कि शियों का बुनियादी और प्रथल मक़सद यही रहा है कि मुसलमान किसी तरह ख़ुदा के अंतिम

पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद स० के लाये हुए सच्चे और और अंतिम धर्म से ग़ाफ़िल हो कर रास्ता भूल जाने वाले मुसाफ़िर की तरह भटकने लगें। चुनांचे मुसलमानों में मुसलमान बन कर इस समूह ने ऑल व अहले बैते रसूल के नाम से जिस जिस अंदाज़ में गुमराहियां फैलाई हैं और रसूल की मोहब्बत के नाम पर जिस प्रकार मुसलमानों के अक़ीद–ए–तौहीद को नष्ट करके उनके ईमानी दौलत को लूटने की नापाक मंसूबे जारी रखे हैं इससे मुसलमान जज़बाती तौर पर काफ़ी मुतासिर हुए और आज नौबत यहां तक पहंच चुकी है कि अगर सही सही इस्लामी शिक्षा के प्रकाश में शीई खुराफ़ात के विरूध कोई बात कही जाती है और खानदाने रिसालत मआब स० के सही स्थान के पूरे एहतराम को सामने रखते हुए उनके सिलसिले में बेजा गुलू से रोका जाता है तो उसे दुश्मनी अहलेबैत के नापाक लकब से याद किया जाता है क्योंकि इस सिलसिले में एक शातिराना कार्यवाही यह की गई है कि अपने गढ़े हुए अक़ीदों को हमारे ऐसे मुस्तनद बुजुर्गों के नाम से फैला दिया गया है। जिन पर मुसलमान मुकम्मल तौर पर ऐतमाद करते हैं। चुनांचे इस संदर्भ में एक शिया शायर की एक मश्हूर और गुमराहियत से भरपूर रूबाई को ताजुल औलिया हज़रत **ख्वाजा मुईनुद्दीन चिशती अजमेरी रह०** के नाम से रवाज दे दिया गया है। वह पंकति यह है :

शाह अस्त हुसैन व बादशाह अस्त हुसैन।
दीन अस्त हुसैन व दीन पनाह अस्त हुसैन।।
सर दाद न दाद दस्त दर दस्त यज़ीद।
हक्का कि बिनाए ला इलाह अस्त हुसैन।।

इस रूबाई का उर्दू अनुवाद रूबाई ही की शक्ल में एक उर्दू शायर **अजमल सुलतानपूरी** ने इसी शीई प्रोपेगण्डे से

मुतासिर हो कर किया है कि यह रूबाई हज़रत ख़्वाजा अजमेरी की है और अजमल साहब के लिए बस इतना सुन लेना सनद का दर्जा रखता था कि हज़रत ख्वाजा अजमेरी र० की यह रूबाई है उनको इस तहक़ीक़ से क्या गर्ज़ कि ख्वाजा साहब अजमेरी र० वाकई शायर भी थे या नहीं? और अगर वह शायर थे तो इस रूबाई के अलावा भी तो उन्होंने कभी कुछ कहा होगा, फिर क्या इस रूबाई के अतिरिक्त भी उनसे मंसूब कलाम हमको मुसतनद तरीक़े पर मिलता है? बहर हाल इस रूबाई का उन्होंने इस प्रकार उर्दू में अनुवाद किया है :

हुसैन शाह हैं शाहों के बादशाह हुसैन।
हुसैन दीन हैं और दीन की पनाह हुसैन।।
सर दिया न दिया हाथ में यज़ीद के हाथ।
कसम खुदा की हैं बुनियाद ला इलाह हुसैन।।

हक़ीक़त यह है कि फ़ार्सी की यह रूबाई जिसे हज़रत ख्वाजा मुईनुद्दीन अजमेरी रह० के नाम के साथ मंसूब किया जाता है हज़रत ख़्वाजा रह० की नहीं बल्कि एक शिया शायर **मुईनुद्दीन काशानी** की है मगर हज़रत ख़्वाजा साहब के नाम से ना जायज़ लाभ उठा कर उसे मुईनुद्दीन काशानी के स्थान पर मुईनुद्दीन चिशती अजमेरी रह० की ओर मंसूब कर दिया गया है ताकि मुसलमान अक़ीदत के जोश में इसको अपना लें।

इस सच्चाई से हट करके कि हज़रत ख़्वाजा अजमेरी रह० न कवि थे और न ही किसी मोबतर सनद के साथ उनके कवितायें मिलती हैं अगर वह कवि होते भी तो हज़रत हुसैन रज़ि० के साथ जज़बाती और रूहानी लगाव के बावजूद उनके धर्म और धर्म की पनाह और कलिमा ला इला ह इल्लल्लाह की बुनियाद कतई क़रार नहीं दे सकते थे।

हज़रत ख़्वाजा अजमेरी रह० जैसे महान व्यक्ति ऐसे मुश्रिकाना अक़ीदे को क्यों कर फैलावा दे सकते थे जबकि यह एक हक़ीक़त है कि हज़रत ख़्वाजा की ज़ात हिन्दुस्तान में तौहीद की सिम्बल की हैसियत से ज़ाहिर हुई और उनकी ईमानदाराना कोशिशों के द्वारा हज़ारों ख़ुदा के बन्दों को हिदायत की डगर नसीब हुई।

एक शिया कवि की इम गुमराह करने वाली रूबाई को हज़रत ख्वाजा अजमेरी रह० की ओर मंसूब करके दोहरा हमला किया गया कि एक ओर तो हज़रत ख्वाजा की फ़ैज़ पहुंचाने और तौहीद के मानने वाली हस्ती को जख्मी करके उनकी हैसियत उर्फी व एतबारी को पामाल यानी मलया मेट करने की कोशिश की गई दूसरी ओर आम मुसलमानों को हज़रत ख्वाजा अजमेरी रह० का नाम लेकर फुसलाया गया ताकि वह भी शियों के अकीदा–ए–इमामत के शिकार होकर अकीद–ए–तौहीद से हाथ धो बैठें।

इसी तरह ''पंजतन पाक'' का अक़ीदा भी शियों का गढ़ा हुआ है जिसकी हकीकत यह है कि पांच अहम तरीन शख़्सियतों यानी :

(१) हुजूर सरवरे कायनात स० (२) हज़रत अली रज़ि०. (३) हज़रत फ़ातिमा रज़ि० (४) हज़रत हसन रज़ि० (५) हज़रत हुसैन रज़ि० के मजमूए को शिया ''पंजतन पाक'' के नाम से मौसूम करते हैं उन्हें खुदाई इख़्तियारात देते हैं। चुनांचे इस संदर्भ में किसी कट्टर शिया शायर के इस शेर को भरपूर अंदाज़ में फैलाया गया है :

لی خمسة اطفی بها حر الوباء الحاطمة
المصطفیٰ والمرتضیٰ و ابناهما و الفاطمة

तर्जुमा : मेरे लिए पांच ऐसी शख़्सियतें हैं जिनकी बरकत से मैं कठोर मुसीबतों का तोड़ कर लेता हूं यानी हज़रत मुहम्मद स०, हज़रत अली मुर्तज़ा रज़ि० और उनके दोनो बैटे हसन रज़ी०, और हुसैन रज़ि०, और हज़रत फ़ातिमा रज़ि०।

किसी हिन्दुस्तानी लेकिर अरबी ज़बान के क़ायदों का ज्ञान न रखने वाले कवि के कहे हुए इस शेअ़र में ज़बान और बयान और क़ायदों के लेहाज़ से जो फूहड़ पन है इससे हट करके अगर उसके अर्थ पर ही गौर किया जाये तो यह समझने में समय न लगेगा कि यह किसी कट्टर शिया का कहा हुआ शेर ही हो सकता है और यह अक़ीदा कि मुसीबतों को खुदा के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति दूर सकता है और मुसीबतों की सख़्ती खुदा के पाक नाम के सिवा किसी इंसानी नाम की बरकत से खत्म हो सकती है शियों का ही हो सकता है।

वास्तव में शियों का यह अकीदा है कि इन पांच व्यक्तियों में ख़ुदा घुल मिल गया है। इसी कारण इन पांचों से मुराद मांगना और ज़रूरत पूरी करने के लिए उनको पुकारना खुदा ही को पुकारना है। यह अक़ीदा हिन्दुओं के **''अक़ीदा पंज जना''** और ईसाईयों के अक़ीदा **''तस्लीस''** की तरह है कि जिस तरह हिन्दू राम, लक्षमन, भरत, सत्रुघन और सीता को खुदा का औतार समझ कर उनको खुदाई इख़्तियारात वाला कहने का अक़ीदा रखते हैं या ईसाई अल्लाह, हज़रत मरयम, और ईसा या अल्लाह तबारक व तआला, हज़रत जिब्राईल अमीन अलैहिस्सलाम और हज़रत ईसा अ० के मजमूए के लिए खुदाई इख़्तियारात के मालिक होने का अकीदा रखते हैं इसी तरह शिया भी इन व्यक्तियों को खुदाई इख़्तियारात रखने वाला मानते हुए **''उनको पंजतन पाक''** के नाम से जानते हैं और

याद करते हैं और यह अकीदा रखते हैं कि इनमें खुदा घुल मिल गया है।

इन पांच व्यक्तियों का चुनना दूसरी पांच अहम और महान व्यक्तियों के विरूध और उनसे दुश्मनी को ज़ाहिर करने के लिए किया गया है और वह पांच महान व्यक्ति यह हैं :

हज़रत अबू बक्र रज़ि०, हज़रत उमर रज़ि०, हज़रत उस्मान रज़ि०, हज़रत मुआविया रज़ि०, और हज़रत अम्र बिन आस रज़ि०।

इसी कारण ''पंजतन पाक'' के इस शीई अक़ीदे के संदर्भ में अल्लामा इब्ने तैमिया हर्रानी रह० लिखते हैं :

يزعمون ان الله خمسة اشخاص فى النبى و على و الحسن و الحسين و فاطمة فهٰؤلاء عندهم و لهم خمسة اضداد ابوبكر و عمر و عثمان و معاوية و عمروبن العاص (منهاج السنه، ج ۱، ص۲۳۹)

तर्जुमा : यह लोग ख़याल करते हैं कि अल्लाह तआला पांच शख्सियतों यानी नबी स० और अली रज़ि०, और हसन रज़ि०, हुसैन रज़ि० और फ़ातिमा रज़ि० में घुल मिल गये हैं इस लिए यह लोग उनके निकट अहम हैं और पांच व्यक्तियों को उनकी ज़िद ख़याल करते हैं यानी अबू बक्र रज़ि०, उमर रज़ि०, उस्मान रज़ि०, मुआविया रज़ि०, और अम्र बिन आस रज़ि० को।

इन पांच व्यक्तियों के लिए ''पंज जना'' की तरह ''पंजतन पाक'' की परिभाषा एक ईरानी शिया धर्मगुरू सैय्यद सआदत हुसैन की गढ़ी हुई है जो आठवें दशक के अंत में दक्षिणी पंजाब काठियावाड़ा और गुजरात के इलाकों में आया था और अपने सियासी मकसद को प्राप्त करने के लिए अपने आपको

मुसलमानों में नूरूद्दीन और हिन्दुओं में ''नूर सत सागर'' के नाम से मश्हूर किया था। (रिसाला मुहर्रम स० ८५,८६)

इस विस्तार की दृष्टिकोड़ से यह बात सामने आ गई कि ''पंजतन पाक'' के अक़ीदे से मुसलमानों का कुछ संबन्ध नहीं है अगरचे इन पांचों व्यक्तियों की अहमियत का कोई भी मुसलमान इंकार करने की जुरअत नहीं कर सकता लेकिन इन सबको या इनमें से किसी को खुदाई इख़्तियारात का हामिल करार देना इस्लामी शिक्षा के सरासर खिलाफ और तौहीद के अकीदे पर एक चोट है।

एक ओर इस हक़ीक़त को देखिए दूसरी ओर मुसलमानों की आम गफलत और दीन से जानकारी न होने के इस काबिले इबरत पहलू पर नज़र कीजिए कि वह भी किसी हिन्दुस्तानी कट्टर शिया शायर के इस शेअ़र को

''ली ख़म सतुन उतफी बिहा हर्रल वबा इल हातिमा।
अल मुस्तफ़ा वल मुर्तज़ा व बनाहुमा वल फ़ातिमा।।

को मुसीबतों को दूर करने के लिए नक्श समझ कर इसे अपने घरों, दुकानों और कारखानों में लटकाते हैं।

यही नहीं बल्कि इस शेअ़र के लफ़्ज़ी और मानवी अर्थ पर नज़र किये बग़ैर प्रकाशक इसे अहम तरीन पुस्तकों में प्रकाशित करने लगे हैं। चुनांचे अभी कुछ ही दिन पूर्व मेरे एक खास और दीनी सूझ बुझ रखने वाले मित्र ने तवज्जो दिलाया कि दिल्ली के एक जिम्मेदार प्रकाशन की ओर से बच्चों का मश्हूर क़ायदा **''यस्सरनल कुरआन''** प्रकाशित हुआ है इसके अंतिम पृष्ठ पर इसी शेअ़र को मुसीबतों को दूर करने वाले नक़्श के तौर पर छापा गया है। गोया हम मुसलमानों की गैर जिम्मेदाराना रविश अब हमारे नन्हे मुन्ने और मासूम बच्चों के ज़हनों को शिर्क के कीटांणु से भरने का कारण बन रही है और

उनके ज़हनों में हम ज़हर घोलते समय इसका एहसास नहीं कर रहे हैं कि इसके नतीजे कितने भयानक हो सकते हैं।

शायर के लिए यह शेअ़र कहने का क्या करण थे या पंजतन पाक का अकीदा रखने वालों की सोच क्या है? इन तमाम बातों से दूर हट करके मुसलमानों के लिए यह बात तो बहर हाल समझने की है के उनका बुनियादी अकीदा यह है कि अच्छाई और बुराई के तमाम इख़्तियारात एक मात्र खुदा के हाथ में ही हैं फिर क्या मुसलमान ''पंजतन पाक'' को खुदाई इख़्तियारात का हामिल करार दे सकता है? और क्या ''पंजतन पाक'' को खुदाई इख़्तियारात का हामिल करार देना शिर्क नहीं है? और क्या मुसलमान तौहीद बारी तआला का अकीदा रखते हुए शिर्क गवारा कर सकता है?

☆☆☆

हुजूर स० की पुत्रियां

एक हक़ीक़त एक प्रश्न : हुजूर स० का सबसे बड़ा और सबसे ऊँचा वस्फ़ जो उनको विश्व के तमाम रहबरों से अलग करता है। वह उनकी बात के साथ साथ अमल की यकसानियत है। दुनिया जानती है कि नसीहत आमेज़ बात को ज़बान से निकालना, इंसानी अज़मत पर अच्छी बात कहना, अलमी भाई चारा की बात करना, मज़लूमों और कमज़ोरों की आवाज़ का चर्चा और सब्र, इंसाफ़ की तलक़ीन करना जिस तरह सरल है उसकी क़द्र उन आला अख़लाक़ी जौहरों का अपनी ज़िन्दगी की पुस्तक से अमली नमूना पेश करना कठिन है।

सोच विचार से कथनी व करनी तक यकसानियत का मुकम्मल नमूना दुनिया के सामने पहली मर्तबा नबी स० ही ने पेश किया है जिसे खुदा ने अपनी अंतिम पुस्तक कुरआन में बड़े फख्र के साथ ज़िक्र करते हुए कहा :

'لقد كان لكم فى رسول الله اسوة حسنة" (احزاب:٣)

तर्जुमा : तुम्हारे लिए अल्लाह के रसूल (मुहम्मद स०) की ज़िन्दगी में बहतरीन नमूना मौजूद है।

और ख़ुद ख़ुदा के उस पैगम्बर ने अपने दुश्मनों के इंकार और झुटलाने के जवाब में अपनी जिन्दगी का हवाला देते हुए ख़ुदा के हुकम पर यह चैलेंज किया था कि

﴿لقد لبثت فيكم عمرا من قبله افلا تعقلون﴾

तर्जुमा : मैं तुम लोगों ही के दरमयान एक उर्म बिता चुका हूं क्या तुम समझते नहीं हो?

यानी तुम्हारे सामने मेरी ज़िन्दगी की पुस्तक का एक एक वरक़ मौजूद है, फिर क्या है तुममें हिम्मत कि तुम मेरे बीती हुए रात व दिन से मुझे झूठा, या बद किरदार साबित कर सको?

तारीख़ इस बात की ग्वाह है कि इस भरपूर चैलेन्ज के जवाब में पैगम्बरे इस्लाम की नवूवत के मुंकिरों और उनके धर्म के दुश्मनों की ओर से छान बीन के वा वजूद एक आवाज़ भी न उठ सकी, और वे ख़ुदा के इस अंतिम पैग़म्बर को सच्चा कहने पर मजबूर हुए।

फिर आज अगर कोई व्यक्ति या समूह तारीख़ के कूड़ा घर के कुछ बेकार टुकड़ों को बटौर कर ख़ुदा के इस महान पैग़म्बर के क़ौल और अमल में तज़ाद पैदा करने की जानते हुए या अंजान बन कर कोशिश करे तो क्या उसे किसी भी कीमत पर कुबूल किया जा सकता है??

एक मूल प्रश्न : ज़माना–ए–जाहिलियत में लैयपालक, पुत्रों, पुत्रियों को उनके असल पिताओं के बजाय पालने वाले पिताओं की ओर निसबत करके पुकारने का चलन था। इस्लाम एक फ़ितरी धर्म है इस लिए उसने इस गैर फ़ितरी और ख़िलाफ़े वाक़िआ निसबत का विरोध करते हुए नसब की हिफ़ाज़त पर इस प्रकार बल दिया है :

﴿ادعوهم لابائهم هو اقسط عندالله﴾ (احزاب:١)

तर्जुमा : लेयपालकों को उनके पिताओं की ओर निसबत करके ही बुलाओ कि यही अल्लाह के निकट इंसाफ है।

कुछ व्यक्ति खुद पैग़म्बरे इस्लाम स० के लैपालक हज़रत

ज़ैद बिन हारिसा को उनके असल पिता के बजाय पैग़म्बर की ओर निसबत करके ज़ैद बिन मुहम्मद स० के नाम से पुकारने लगे तो कुरआन में इसको रोक दिया गया।

ما كان محمد ابا احد من رجالكم و لكن رسول الله و خاتم النبيين (احزاب:٥)

तर्जुमा : मुहम्मद (स०) तुममें से किसी पुरूष के पिता नहीं हैं लेकिन वह अल्लाह के रसूल और अंतिम नबी हैं।

पैगम्बरे इस्लाम स० ने ऐसे व्यक्ति के सिलसिले में जो अपने असली पिता के सिवा किसी अन्य की ओर पिता होने की निसबत कर रहा हो यह फ़रमाया :

من ادعىٰ الى غير ابيه و هو يعلم انه غير ابيه فالجنة عليه حرام۔ (ابوداؤد،ج٢، ص ٣٥٠)

तर्जुमा : जो व्यक्ति अपने पिता के सिवा किसी अन्य की ओर यह जानते हुए कि यह व्यक्ति उसका पिता नहीं है अपनी निसबत करे तो ऐसे व्यक्ति पर जन्नत हराम होगी। (अबू दाऊद)

एक अन्य हदीस में अपने ही पिताओं की ओर निसबत करने और उनके अलावा दूसरों की ओर पिता होने की निसबत न करने की हकीमाना वजह बयान करते हुए फ़रमाया :

انكم تدعون باسمائكم و اسماء اٰبائكم۔ (ابوداؤد، ج٢، ص٣٢٨)

तर्जुमा : बेशक क़यामत के दिन तुम लोग अपने नामों और अपने पिताओं के नामों से पुकारे जाओगे। (अबू दाऊद)

खुदा और उसके रसूल ने जिस असल को इस ताकीद के साथ पेश करके अपने पिता के अलावा किसी अन्य व्यक्ति

की ओर निसबत करने की जाहिली रसम पर पाबन्दी लगाई हो, क्या यह मुमकिन है कि अपने ही अहकाम के विरूध खुदा और रसूल इस रसम का ज़िन्दा रहना पसन्द कर लें और खुद पैगम्बर ही की ओर ''दूसरों की औलाद'' की निसबत की जाती रहे पैग़म्बर इस पर कोई पाबन्दी न लगायें।??

एक बेहूदा इलज़ाम : ऊपर के दोनों प्रश्नों को दिमाग़ में रखते हुए शियों के इस बेहूदा इलज़ाम पर गौर कीजिए कि पैग़म्बरे इस्लाम स० की इन चारों पुत्रियों हज़रत ज़ैनब रज़ि०, हज़र रूक़ैय्या रज़ि०, हज़रत उम्मे कुलसूम रज़ि०, और हज़रत फ़ातिमा रज़ि० में से केवल हज़रत फ़ातिमा रज़ि० ही उनकी हक़ीक़ी पुत्री थीं अन्य तीनों उम्मुल मोमिनीन हज़रत ख़दीजा रज़ि० के किसी अन्य पतियों की पुत्रियां, या उनकी भांजियां, या हज़रत उम्मे सलमा रज़ि० की पुत्रियां होने के कारण पैग़म्बरे इस्लाम स० की पालन पोषण में थीं यानी उनमें से कोई भी नबी स० की पुत्री नहीं बल्कि हर एक लैपालक थी, इसी कारण इन तीनों की निसबतें अपने असल पिताओं के बजाय नबी करीम स० की आरे की जाने लगी। और यह ज़ैनब पुत्री मुहम्मद स०, रूक़ैय्या पुत्री मुहम्मद स०, और उम्मे कुलसूम पुत्री मुहम्मद स० के नामों से मशहूर हो गई।

इस बेहूदा इलज़ाम की दलीलों द्वारा काट तो आप आने वाली कुछ लाइनों में ही देख लेंगे। लेकिन इससे पहले इलज़ाम लगाने वालों की इस हिम्मत को दाद दीजिए कि एक ओर तो यह लोग अपने को मुसलमान कहलाते हुए खुदा और उसके रसूल स० पर ईमान का दावा करते हैं और दूसरी ओर उसी ख़ुदा और रसूल स० की बातों में इतना खुला हुआ इख़्तिलाफ़ साबित करने के पीछे लगे हुए है कि दौरे जाहिलियत की एक रसम की तबदीली के आम ऐलान के बावजूद वही रसम खुद

नबी के घराने में पलती रही और उनकी एक दो नहीं बल्कि तीन तीन लैपालक पुत्रियां अपने पिताओं के बजाय उनकी ओर मंसूब होती रहीं और इस रसम के विरोध करने वाले खुदा और उसके नबी ने उसे इस तरह गवारा कर लिया कि आज दुनिया केवल यही जानती है कि यह तीनों खुदा के अंतिम पैगम्बर मुहम्मद पुत्र अब्दुल्लाह स० की हक़ीक़ी पुत्रियों थीं। इन तीनों के अपने असल पिताओं का उनकी निसबत से नाम व निशान तक मिट गया।

سبحانك هذا بهتان عظيم۔

पर्दा उठता है : हज़रत ज़ैनब रज़ि०, हज़रत रूक़ैय्या रज़ि०, और हज़रत उम्मे कुलसूम रज़ि० के महान नसब को जख़्मी करने की इस नापाक साज़िश की हकीकत जानने से पूर्व इस समूह यानी शिया के बारे में यह जान लेना भी ज़रूरी है कि इसकी यह कार्यवाही केवल हुजूर स० की पुत्रियों ही के साथ नहीं है बल्कि उसने नबी की बीवियों में से केवल हज़रत ख़दीजा रज़ि० के, और उनके दामादों मेंसे केवल हज़रत अली रज़ि० के, और उनके नवासे, नवासियों मेंसे केवल हज़रात हसनैन रज़ि० और हज़रत ज़ैनब रज़ि० के, और उनके चचाओं मेंसे केवल हज़रत अब्बास रज़ि० के और उनके एक लाख से ज़्यादा सहाबा–ए–किराम रज़ि० मेंसे केवल हज़रत अली रज़ि०, हज़रत सलमान रज़ि०, हज़रत अबू ज़र रज़ि०, हज़रत अम्मार रज़ि०, और हज़रत मिक़दाद रज़ि० के ही को सम्मानित व स्वीकार करने का दावा कुबूल किया है और बाक़ी तमाम से नबी के रिश्ते और ताल्लुक़ के बावजूद अपनी बराअत का ऐलान करते हुए उनके हक में बहुत बुरा भाला कहने को अपनी ईमानदारी का सिम्बल करार दिया है। पाठकगण के ध्यान देने के लिए यह बात बहुत ही अहम है कि नबी के घराने से लेकर

उनके मानने वालों तक ''बन्दर बांट'' का यह कार्य बेकार नहीं है बल्कि यह एक सोची समझी साज़िश के तहत है जिसके नुक़सानात से मिल्लते इस्लामिया को दोचार होना पड़ा है।

दलीलों के प्रकाश में : नबी स० की हक़ीक़ी एक मात्र पुत्री हज़रत फ़ातिमा रज़ि० ही थीं या इनके अलावा भी पुत्रियां थीं? इस प्रश्न का साफ़ और स्टीक उत्तर कुरआन मजीद की आयते हिजाब (पर्दा वाली आयत) से मिल जाता है जिसमें ख़ुदा तआला ने अपने नबी को मुख़ातब करते हुए कहा :

يا ايها النبى قل لازواجك و بناتك و نساء المومنين
يدنين عليهن من جلابيبهن (احزاب:٨)

तर्जुमा : ऐ नबी! आप अपनी पत्नियों और बैटियों और मुसलमानों की महिलाओं से कह दीजिए कि वह अपनी चादरें अपने ऊपर लटका लिया करें (पर्दा किया करें)

इस आयत में साफ तौर पर नबी की बीवियों, पुत्रियों और मुसलामनों की महिलाओं को पर्दा का हुकम दिया गया है। अगर नबी की केवल एक पुत्री होती तो उसके लिए बनात न लाया जाता। बल्कि बिन्त फ़रमाया जाता, और यह बात तैय है कि अरबी ज़बान में जमा का सैग़ाा कम से कम तीन के लिए बोला जाता है।

इतने साफ़ शब्द बनात की तावील करते हुए शियों की ओर से यह बात कह दी जाती है कि इस आयत में एक पुत्री के लिए बिन्त के बजाय बनात यानी जमा का सैग़ा अज़मत के लिए लाया गया है। हालांकि यह तावील चलने वाली नहीं है कि फिर अगर कोई व्यक्ति यह कहे कि ज़ोज के बजाय अज़वाज भी अज़मत के लिए लाया गया है और यह दावा करे कि नबी की पत्नी केवल एक ही थीं तो कोई बात बनये न

बनेगी जब कि यह बात सब ही मानते हैं कि नबी की एक नहीं ६ पत्नियां थीं .... लेकिन अब हम शियों ही की वह रिवायात पेश कर देना सही समझते हैं जिनमें साफ साफ न केवल नबी की एक से ज़्यादा पुत्रियों का इक़रार किया गया है बल्कि ज़रत ज़ैनब रज़ि०, हज़रत रूक़ैय्या, और हज़रत उम्मे कुलसूम रज़ि० का नाम लेकर उनको नबी की पुत्रियां माना गया है।

इन रिवायतों को लिखने से पूर्व पाठकगण की दिलचसपी के लिए यह बता देना भी अनिवार्य है कि शिया धर्म की यह इम्तियाज़ी खुसूसियत हे कि उसके हर हर मसले में ख्वाह उसका ताल्लुक़ अक़ाएद से हो या आमाल से, अलग अलग रिवायात मौजूद हैं। और उनके अंतिम वालों को उनके पूर्व वालों को झूठा करार देना उनका फ़ेशन बन चुका है। इसी कारण इस मसले में भी उनकी धार्मिक पुस्तकों में दोनों तरह की रिवायतें मिलती हैं वह भी जिनमें नबी की सिर्फ एक पुत्री होने का दावा किया गया है और वह भी जिनमें चार पुत्रियों का इकरार किया गया है .... लेकिन सोचने वाली बात यह है कि दोनों तरह की रिवायतों में से किस किसम की रिवायतों को सही और स्टीक समझा जा सकता है?

हमारा दावा यह है कि इस समय के ज़ाकरीन और मुज्तिहिदीन अपनी जिस किसम की मज़हबी रिवायात को पेश करके हज़रत फातिमा रज़ि० को नबी स० की अकेली पुत्री होने का दावा पूरे ज़ोर के साथ करते हैं वह उनके अपने ही धर्म के हिसाब से ''दो नम्बर की'' रिवायात हैं, और उन रिवायात को ग़लत क़रार देने की जुरअत ''यह हजरात'' भी नहीं कर सकते जिनमें नबी स० की चार पुत्रियों का साफ साफ ज़िक्र किया गया है .... और हम अपने इस दावे के सुबूत में शीई रिवायात उनकी मोतबर पुस्तकों के हवाले के साथ पेश कर रहे हैं :

(١) و تـزوج الـخديجة و هو ابن بضع و عشرين سنة فـولـد لـه مـنهـا قبل مبعثه القاسم و رقية و زينب و ام كلثوم و ولد له بعد المبعث الطيب و الطاهر و فاطمة عليهم السلام۔ (اصول كافى، كتاب الحجة، ص٢٧٩)

(१) **तर्जुमा** : और नबी स० ने खदीजा रज़ि० से उस समय निकाह किया जब आप कुछ ऊपर बीस वर्ष के थे फिर आपकी उनसे बेसत से पूर्व कासिम और रूकैया और ज़ैनब और उम्मे कुलसूम औलाद पैदा हुईं और बेसत के बाद तैयब और ताहिर और फातिमा अलैहिमुस्सलाम पैदा हुए।

इस रिवायत में नबी स० की हज़रत खदीजा रज़ि० के कोख से पैदा होने वाली तमाम औलाद का ज़िक्र है और बताया गया है कि आपके एक पुत्र क़ासिम और तीन पुत्रियां रूकैया, ज़ैनब, उम्मे कुलसूम बेसत से पूर्व पैदा हुए और दो पुत्र तैयब और ताहिर और एक बेटी फातिमा बेसत के बाद पैदा हुए।

यह रिवायत शिया धर्म की चार मौलिक पुस्तकों में से सबसे मोतबर यानी मानी जानी वाली पुस्तक उसूले काफी में मौजूद है और यह वह पुस्तक है जिसके संदर्भ में यह दावा किया गया है कि शियों के १२वीं मासूम इमाम ''इमाम गायब'' ने इसका मुताला करने के बाद इसे भरोसे के लायक़ बताते हुए कहा था कि هـذا كـاف لشيعتنـا ''यह पुस्तक हमारे शियों के लिए काफी है'' और इसी बुनियाद पर इस पुस्तक का नाम अल जामिउल काफ़ी रखा गया।

(٢) عـن ابى عبدالله عليه السلام قال ولد لرسول الله (ص) مـن خديجة القاسم و الطاهر و هو عبدالله و ام كـلثـوم و رقية و زيـنـب و فاطمة و تزوج على ابن ابى طـالـب (ع) فاطمه(ع) و تزوج ابو العاص بن الربيع و

هـو رجـل من بنى امية زينب و تزوج عثمان ابن عفان ام كلثوم و ماتت و لم يدخل بها و لما ساروا الى بدر زوجـه رسـول الـله (ع) رقية۔ (كتاب الخصال، باب السبعة، ص ٣٧٥)

(२) **तर्जुमा :** इमाम जाफ़र सादिक़ से रिवायत है कि उन्होंने कहा कि रसूलुल्लाह स० की औलाद में खदीजा के कोख से यह पैदा हुए कासिम और ताहिर कि यही अब्दुल्लाह हैं और उम्मे कुलसुम रज़ि० और रूकैय्या रज़ि० और ज़ैनब रज़ि० और फ़ातिमा रज़ि०। और अली बिन अबी तालिब ने फ़ातिमा से निकाह किया और अबुल आस बिन रबी ने जो बनो उम्मिया के एक व्यक्ति थे ज़ैनब से निकाह किया और उस्मान बिन अफ़्फ़ान ने उम्मे कुलसुम से निकाह किया और अभी रूख़सती नहीं हुई थी कि उम्मे कुलसुम की मृत्यु हो गई और जब ब़द्र की ओर चलने लगे हैं तो रसूलुल्लाह स० ने उस्मान का निकाह रूक़ैय्या से कर दिया।''

इर रिवायत में भी न केवल नबी स० की चार पुत्रियों हज़रत ज़ैनब रज़ि०, हज़रत रूकैय्या रज़ि०, हज़रत उम्मे कुलसुम रज़ि० और हज़रत फ़ातिमा रज़ि० का ज़िक्र है बल्कि उनके पतियों यानी नबी के दामादों हज़रत अबुल आस रज़ि०, हज़रत उस्मान रज़ि०, और हज़रत अली रज़ि० का भी विस्तार के साथ ज़िक्र मौजूद है। एक अहम बात यह है कि हज़रत उस्मान रज़ि० के साथ हज़रत रूक़ैय्या रज़ि० के निकाह की निसबत ख़ूद नबी करीम स० की ओर ही की गई है और उनके जुन्नूरैन होने का भी बयान किया गया है। अलबत्ता अहलेसुन्नत और ख़ुद शियों की भी इन बाज़ रिवायात के लेहाज़ से तरतीब

उलट दी गई है जिनमें यह ज़िक्र है कि हज़रत उस्मान के साथ पहले हज़रत रूक़ैय्या का निकाह हुआ था फिर उनकी मृत्यु के पश्चात हज़रत उम्मे कुलसुम रज़ि० का निकाह हुआ था।

(٣) كـانت خديجةاذ تزوجها رسول الله بنت اربعين سنة و ستة اشهر و كان رسول الله يومئذ ابن احدىٰ و عشـريـن سـنة و ولـدت لـه اربـع بنات كلهن ادركن الاسـلام و هـاجـرن و هـن زينب و فاطمة و رقية و ام كلثوم۔ (تنقيح المقال، ج٣، ص٧٣)

(३) **तर्जुमा :** नबी स० ने जिस समय ख़दीजा से निकाह किया उस समय ख़दीजा की आयु ४० वर्ष और ६ महीने की थी और रसूलुल्लाह स० की आयु उस समय २१ वर्ष की थी और ख़दीजा से हुजूर स० की ४ पुत्रियां पैदा हुईं इन तमाम पुत्रियों ने इस्लाम पाया और हिजरत भी की और यह पुत्रियां ज़ैनब और फातिमा और रूकैय्या और उम्मे कुलसुम हैं।

मशहूर और मोतबर शीई आलिम अब्दुल्लाह मामकानी के इस बयान में भी विस्तार के साथ नाम ब नाम चार पुत्रियों का ज़िक्र है और उनकी फज़ीलत में यह बयान भी है कि चारों को इस्लाम कुबूल करने और मदीने की ओर हिजरत करने की तौफीक़ मिली।

(۴) ابن بابویہ بسند معتبر از آنحضرت روایت کردہ است کہ از برائے رسول متولد شد از خدیجہ قاسم وطاہر و نام طاہر عبداللہ بود و ام کلثوم و رقیہ و زینب و فاطمہ (حیات القلوب، ج۲، ص۷۱۸)

(४) **तर्जुमा :** इब्ने बाबवैह ने मोतबर सनद के साथ आंहज़रत (इमाम जाफ़र सादिक़) से रिवायत किया

है कि रसूलुल्लाह (स०) के हज़रत ख़दीजा से यह बच्चे हुऐ क़ासिम और ताहिर, और ताहिर ही का नाम अब्दुल्लाह था और उम्मे कुलसूम और रूक़ैय्या और ज़ैनब और फ़ातिमा।

मशहूर और महान शीई आलिम मुल्ला बाक़र मजलिसी ने इब्ने बाबवैह कुम्मी की मोतबर सनद के साथ मासूम शीई इमाम जाफ़र सादिक़ का भी यही बयान लिखा है कि नबी स० की चार पुत्रियां थीं जो उम्मुल मोमिनीन हज़रत खदीजा रज़ि० के कोख से पैदा हुईं थीं।

चार पुत्रियों की मुनासिबत से ऊपर की चार शीई रिवायात के हवालों ही को काफ़ी समझा जाता है और यह चारों बयानात चार ऐसी पुस्तकों से लिए गये हैं कि जिनके मोतबर होने का शिया किसी तरह इंकार नहीं कर सकते तथा उसूली तौर पर भी इन रिवायात में किसी तरह का झोल नहीं बताया जा सकता है।

इन चारों रिवायतों में जो चीज़ किसी तरह एक ही है वह यही है कि नबी स० की चार पुत्रियां थीं जो उम्मुल मोमिनीन हज़रत ख़दीजा रज़ि० के कोख से पैदा हुईं। अब या तो शिया उसूली तौर पर अपनी इन मोतबर रिवायात को सही समझते हुए रसूलुल्लाह स० की पुत्रियों की नसबी शराफत को दागदार करने की कोशिशों से रूक जायें और यह तस्लीम करें कि आजके बे इल्म और जज़बाती ज़ाकिरों के मुक़ाबले में उनके मोतबर उलमा, मशहूर लेखकों, चारों मौलिक पुस्तकों के मुसन्निफीन और मासूम इमामों का यह बयान सही है कि नबी स० की चार पुत्रियाँ हज़रत ज़ैनब रज़ि०, हज़रत रूक़ैय्या रज़ि०, हज़रत उम्मे कुलसुम रज़ि० और हज़रत फ़ातिमा रज़ि० के नाम से हैं और इन चारों ने नबी के यहां परवरिश पाई और उनको

ईमान और हिजरत की दौलत मिलीं ..... या फिर मौजूदा ज़ाकिरों की बे सनद बात को स्वीकार करके न केवल चार मौलिक पुस्तकों बल्कि किताबुल इख़लास, अमाली शैख सदूक़, मुंतहल मक़ाल, हयातुल कुलूब, और कशफ़ुल गुम्मा जैसी मोतबर पुस्तकों की दर्जनों रिवायात को झुठला कर और इसके कारण इन पुस्तकों के मुसन्निफ़ीन, रिवायतों, और रिवायत करने वालों को गलत बताते हुए उन पर अपने अद्मे ऐतमाद को ज़ाहिर करे।

उधर जाता है देखें या इधर परवाना आता है?

☆☆☆

अहले सुन्नत पर शीयई असरात

इस हक़ीक़त को अनेक बार ज़ाहिर किया जा चुका है कि शिया एक साज़िशी गिरोह है जिसके बानी ने इस्लाम का लेबल खूब सोच समझ कर इस लिए लगाया कि इस तरह घुस पैठ के द्वारा इस्लाम को नुक्सान पहुंचाया जा सके। अहले बैत नबी स० के साथ सम्बंध का इज़्हार, हज़रत अली रज़ि० की "ख़िलाफ़ते बिला फ़स्ल" के लिए इसरार और हज़रात हसनैन रज़ि० के नाम पर मातम व रोना यह सब इसी गहरी साज़िश के हिस्से हैं जिनके द्वारा मुसलमानों को ग़लत फ़हमी में फंसा कर उनकी ईमानी दौलत को लूटना मक़्सूद है।

इस लेख में हम शीयई अक़ाएद और आमाल को जांचना नहीं चाहते हैं बल्कि हम यह दिखाना चाहते हैं कि शीयई साज़िश और अहले सुन्नत की "सादा लौही" ने मिल कर न जाने कितनी शीयई रसमों और कितने शीयई अक़ीदों को अहले सुन्नत में दाखिल कर दिया और मुसलमान गैर महसूस तरीक़े पर बिला इरादा एक इस्लाम दुश्मन शिया धर्म को ताक़त पहुंचा रहे हैं।

अहले सुन्नत पर शीयई असरात को चिन्हित करने के पूर्व हम तमहीदी तौर पर यह बता देना अनिवार्य समझते हैं कि शियों ने हमारी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में बहुत सी ऐसी बातें

शामिल कर दी हैं कि हमको इसका एहसास तक नहीं होता कि हम क्या कर रहे हैं और क्या कह रहे हैं? मगर जिन व्यक्तियों ने साजिश रचा कर और कोशिश करके अपने अक़ीदों और अपनी बेहूदा रसमों को हमारी रोज़ाना की ज़िन्दगी में घुसा दिया है उनको अपने मिशन की सफलता पर यक़ीनन ख़ुशी होती होगी और हमारी ला परवाही, कम इल्मी या हद से बढ़ी हुई रवादारी शिया धर्म को बल पहुंचाने का सबब है।

आम मुसलमानों को तो जाने दीजिए कि वह धर्म की शिक्षा और धर्म के जानकारी प्राप्त करने की ज़रूरत ही नहीं समझते, एक मुस्लिम घराने में पैदा हो जाने के कारण रिवायती तौर पर वह मुसलमान होते हैं और अपने बड़ों बूढ़ों को दीन के नाम से जिन बातों पर कार्य करते देखते हैं वह उसे "ख़ालिस दीन" समझ कर उसी पर अमल कर लेना दीनदारी समझते हैं लेकिन हैरत तो उन धर्म के ज्ञानियों पर होती है जो दीनी समझ रखते हैं और धर्म को समझ कर उसके तक़ाज़ों पर अमल करने की सलाहियत रखते हैं इसके बावजूद खरे खोटे के फ़र्क़ किये बिना अपनी ज़बान और अपने कलम की ला परवाहियों से ऐसा ज़हर घोल देते हैं जो इस्लाम धर्म के मानने वालों के लिए हलाक करने वाला साबित होता है। उदाहरण के तौर पर :

(१) हज़रात हसनैन रज़ि० और हज़रत अली रज़ि० के नामों के साथ अलैहिस्सलाम का प्रयोग जबकि तमाम ज्ञानी इस बात से सहमति हैं कि "अलैहिस्सलाम" नबियों के लिए, "रज़ि०" सहाबियों के लिए और अतिरिक्त तमाम बुज़ुर्गों के लिए रहमतुल्लाह अलैह या दूसरे दुआइया कलिमात लिखे और बोले जाते हैं फिर क्या कारण है कि सहाबा किराम में से सिर्फ हज़रत अली रज़ि० और हज़रात

हसनैन रज़ि० के नामों के साथ अलैहिस्सलाम का प्रयोग अनेक दानिशवरों के लेखों व भाषणों में मिल जाता है जबकि हज़रत अबू बक्र अलैहिस्सलाम और हज़रत उमर अलैहिस्सलाम वगैरह कभी सुन्ने में न आया होगा? इसका कारण साफ़ और ज़ाहिर है कि इन तीनों व्यक्तियों को शिया अपने अकीदे के मुताबिक़ मासूम इमाम समझते हैं और उनके लिए अलैहिस्सलाम का प्रयोग करते हैं। उन्हीं की देखा देखी कुछ सोचे समझे बिना अलैहिस्सलाम लिख दिया जाता है और इस पर विचार नहीं किया जाता कि इस मामूली सी चूक के द्वारा किस शीयई अक़ीदे को बिना जाने बूझे सहयोग दिया जा रहा है।

(२) जुमा और इदैन के आम तौर पर जो ख़ुतबे सुन्नी मस्जिदों में पढ़े जाते हैं उनमें हुजूर अलैहिस्सलाम की पत्नीयिों का तो आम तौर पर ज़िक्र ही नहीं होता और आपकी बेटियों में से केवल हज़रत फ़ातिमा ज़ेहरा का ही ज़िक्र होता है। ऐसा क्यों? क्या अकेली हज़रत फ़ातिमा रज़ि० ही हुजूर अलैहिस्सलाम की पुत्री थीं? यह तो शीयई अक़ीदा है कि वह आपकी दूसरे तीनो पुत्रायों हज़रत ज़ैनब रज़ि०, हज़रत रूकैय्या रज़ि०, और हज़रत उम्मे कुलसुम रज़ि० को आपकी पुत्रियां ही नहीं मानते फिर क्या आपकी पुत्रियों के ज़िक्र के समय केवल हज़रत फ़ातिमा रज़ि० ही का नाम लिया जाना और दूसरी पुत्रियों को नज़र अंदाज़ कर देना। सुन्नी अवाम को बे ख़बर रखने के साथ साथ शीईयत को बल देना नहीं है? इसी ग़फ़लत और ला परवाही का नतीजा यह हुआ कि आज अगर एक आम सुन्नी मुसलमान से हुजूर अलैहिस्सलाम की पुत्रियों के नाम पूछे जायें तो वह हज़रत फ़ातिमा

ज़ेहरा रज़ि० के अलावा दूसरी तीनों पुत्रियों के नाम बहुत मुश्किल से बता सकेगा।

फिर क्या करण है कि जब खुतबों में हुजूर अलैहिस्सलाम के ख़ुलफ़ाए राशिदीन रज़ि०, आपकी एक पुत्री, आपके नवासों और चाचाओं का ज़िक्र आ रहा हो तो आप की पत्नीयों और पूरे विश्व के मुसलमानों की माताओं का ज़िक्र न हो?

(३) सहाबा किराम रज़ि० के सिलसिले में शियों के जो ग़लत और बेहूदा अक़ीदे हैं उनसे पाठकगण जानकारी रखते हैं। और अल्लाह के करम से अवाम अहलेसुन्नत भी शियों की सहाबा दुश्मनी से ख़बरदार हैं इसके बावजूद बराबर होने वाले शीयई प्रोपेगण्डे के असर से रसूल के कुछ सहाबियों खुसूसन कातिबे वही, हादी और मेहदी सय्यदना मुअविया बिन अबी सुफ़ियान रज़ि० के सिलसिलें में बाज़ सुन्नी दानिशवरों का ज़हन भी साफ नहीं रहा और उनेंने अपनी ज़बान और क़लम से एक सहाबी–ए–रसूल के किरदार को जख़्मी भी किया।

जिसका नतीजा यह हुआ कि कुछ निडर और ख़ुदा फ़रामोश सुन्नियों के दिमाग़ में भी हज़रत मुआविया रज़ि० की बड़ाई के बारे में वह सोच नहीं रही जो होना चाहिए और आज अगर खुतबओं में हज़रत मुआविया का नाम लिया जाता है तो उनको अचम्भा सा होता है। ऐसा क्यों? क्या कोई सुन्नी हज़रत मुआविया रज़ि० की ओर से मामूली बदगुमानी रख करके सुन्नी रह सकता है? यह शीयई प्रोपेगण्डा ही का तो असर है कि हज़रत मुआविया रज़ि० का नाम अजनबी सा मालूम होता है और जो लोग शीयई जाल को जानते नहीं हैं उनको उनकी कम इल्मी

ही में सही, हज़रत मुआविया रज़ि० से वह अक़ीदत नहीं है जो आम सहाबा किराम रज़ि० से है।

(४) मुहर्रम के महीने में हज़रत हुसेन रज़ि० की शहादत का हादसा पेश आया जो यक़ीनन इस्लामी तारीख़ का एक दर्दनाक भाग है लेकिन इसके बावजूद मुहर्रम को गम का महीना क़रार देकर इस महीने में शादी बयाह या और कोई ख़ुशी की तक़रीब न करना कहां तक ठीक है? क्या हज़रत हुसैन रज़ि० की शहादत का गम हुज़ूर अलैहिस्सलाम की वफ़ात के ग़म से भी बढ़ कर है?

फिर रबीउल अव्वल के महीने में हर प्रकार की खुशी और तक़रीब को जायज़ समझना और मुहर्रम के महीने में ख़ुशी को अपने पास भी न फटकने देना किस फ़लसफ़ा की बुनियाद पर है, यह भी इसी शीयई प्रोपेगण्डा का असर है जिसने हज़रत हुसैन रज़ि० की बा मक़सद शहादत को एक अफसाना बना कर रख दिया है और दुनिया के सामने शहादते हुसैन रज़ि० को इस तरह पेश किया जाता है कि जैसे यह इस्लामी तारीख़ की एकलौती शहादत हो, जबकि इस्लामी वर्ष का कोई महीना ऐसा नहीं है जिसमें इस्लाम की ख़ातिर अपनी जानों का नज़राना पेश करने वालों की एक बड़ी तादाद मौजूद न हो फिर ..... क्या हज़रत अली रज़ि०, हज़रत हसन रज़ि०, और हज़रत हमज़ा रज़ि० की शहादत के महीनों को भी गम का महीना कहा है? अगर नहीं तो फिर केवल मुहर्रम को गम का महीना क़रार देकर इस महीने में हर प्रकार की ख़ुशी से दूर रहना शीईयत को बल पहुंचाना नहीं तो और क्या है?

(५) इसी तरह हज़रात हसनैन रज़ि० के नामों के साथ

लाज़मी तौर पर ''इमाम'' के शब्द के प्रयोग का मामला भी है कि कोई भी सुन्नी व्यक्ति या ज्ञानी और धर्मगुरू कभी भी न इमाम अबू बक्र रज़ि०, इमाम उमर रज़ि०, इमाम उस्मान रज़ि० वगैरह लिखता है और न बोलता है, क्योंकि शिया इन हज़रात के लिए कभी भी शब्द इमाम प्रयोग नहीं कर सकते। इसके विरूध हज़रात हसनैन रज़ि० को वह मासूम इमाम करार देते हैं और लाज़मी तौर पर उनके नामों के साथ शब्द इमाम लगाते हैं। लेहाज़ा सुन्नी भी बे सोचे समझे इन दोनों बुज़ुर्गों के नामों के साथ शब्द इमाम लगाते हैं। यह सही है कि यह दोनों हमारे रहबर हैं और इस प्रकार उनके नामों के साथ शब्द इमाम लगाने में कोई हरज नहीं होना चाहिये लेकिन दूसरे किसी भी सहाबी रज़ि० के नाम के साथ शब्द इमाम न लगाना और हज़रात हसनैन रज़ि० के साथ शब्द इमाम ज़रूर लगाना यक़ीनी तौर पर शियों के अकीदे ''इमामत'' को बल पहुंचाना है।

(६) आज भी बहुत से सुन्नी घरानों के बच्चों के नाम परवेज़ और फ़ीरोज़ होते हैं, जबकि परवेज़ उस रूसियाह ईरानी बादशाह का लक़ब था जिसने हुज़ूर स० की उस चिटठी की तौहीन करके उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये थे जिसमें आपने उसको इस्लाम कुबूल करने का न्योता दिया था। इसी तरह फीरोज़ अमीरूल मोमिनीन ख़लीफ़ाए सानी सैय्यदना उमर बिन ख़त्ताब रज़ि० के क़ातिल का नाम है। मुसलमानों को अपनी दीनी हमियत और मिल्ली ग़ैरत के कारण इन नामों से बहुत ज़्यादा घिन होना चाहिए। मगर आज भी इन नामों का मुस्लिम घरानों में किसी न किसी दर्जे में मौजूद रहना इसी लिए है कि शिया अबू

लूलू फ़ीरोज़ से अपनी मोहब्बत का इज़हार केवल इसी लिए करते हैं कि इसका एक कारनामा यह है कि वह फ़ारूक़े आज़म का क़ातिल है, और उसे अपना कौमी हीरो क़रार देकर उसके नाम से मंसूब ''ईद बाबा शुजा'' भी मनाते हैं। शियों को तो अपनी इस्लाम दुश्मनी और सहाबा रज़ि० की दुश्मनी के जज़्बे से सरशार होकर जो करना चाहिये वह करते हैं। और न सिर्फ़ फ़ीरोज़ बल्कि उसके नाम से मुनासबत के कारण फ़ीरोज़ा पत्थर तक को ख़ुशबख़्ती का सिम्बल मानते हैं। मगर सुन्नी मुसलमानों की यह ग़फ़लत इबरत के लायक है कि वह भी अपने बच्चों का नाम फ़ीरोज़ रखने से नहीं हिचकचाते हैं जबकि सुन्नी घरानों में भी अबू सुफ़ियान और मुआविया (रज़ि०) जैसे नाम बहुत ही कम रखे जाते हैं क्योंकि इन नामों से शियों को अपनी इस्लाम दुश्मनी के कारण नफरत है।

(७) रसम व रिवाज में जकड़े हुए कुछ सुन्नी घरानों में शादी ब्याह के मौके पर दुल्हा, दुल्हन के, या सफर पर जाते हुए अपनी किसी रिश्तेदार के बांह पर ''इमाम ज़ामिन'' बांधने का चलन आज भी देखने को मिल जाता है, यह ''इमाम ज़ामिन'' क्या है? शियों का ख़ुदा–ए–क़ादिर के बजाये ''इमाम'' की ज़मान मांगना तो समझ में आता है। क्योंकि शिया धर्म में खुदा और रसूल स० का तसव्वुर बराय नाम और धोखा देने के मक़सद से ही है वर्ना सारी ताकतों का अस्ल मरकज़ ''इमाम मासूम'' ही होता है, मगर शियों की देखा देखी सुन्नी मुसलमानों का ''इमाम ज़ामिन'' बांध कर इमाम की ज़मान में देने का मुश्रिकाना कार्य किसी भी तरह माफ़ी के लायक़ नहीं क़रार दिया

जा सकता न ही यह अमल उनके अक़ीदे से मेल खाता है।

यह चंद रस्में उदाहरण के तौर पर पेश की गईं जिनसे इस बात का अंदाज़ा हो सकता है कि शीयई साज़िश की जड़ें कितनी गहरी हैं और मुसलमान अपनी बेख़बरी के द्वारा एक इस्लाम दुश्मन ताक़त के हाथों को किस तरह मज़बूत करने में सहयोग दे रहे हैं।

ज़रूरत है कि सुन्नी मुसलमान अपने धर्म और अपने अकीदों की हिफ़ाज़त के लिए इन बातों और हक़ीक़तों पर ठण्डे दिल और दिमाग़ से सोचें और रिवायत परस्ती के ख़तरनाक बीमारी से छुटकारा हासिल करके अपने मुआशरे की तामीर धर्म की सही लाइनों पर करें।

हक तआला तमाम मुसलमानों की हर प्रकार के शर और फितने से हिफ़ाज़त फ़रमाकर अपनी मर्ज़ियात पर चलने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये। (आमीन या रब्बल आलमीन)

☆☆☆

मुहर्रम के महीने की हक़ीक़त

इस्लामी वर्ष की शुरूआत मुहर्रमुल हराम के महीने से होता है और इस महीने की अहमियत इस्लाम में मानी हुई है इसी कारण नबी स० ने इस महीने की अहमियत बयान करते हुए कहा :

افضل الصيام بعد رمضان شهر الله المحرم۔(مسلم شریف)

तर्जुमा : अल्लाह के महीने रमज़ान के बाद सबसे अफज़ल रोज़े मुहर्रम के महीने के हैं।

इसी तरह एक व्यक्ति ने आपसे प्रश्न किया कि रमज़ान के अतिरिक्त किस महीने के रोज़े रखूं? आपने कहा कि मुहर्रम के महीने के।

आशूरा के दिन के रोज़े के संदर्भ में हुजूर स० से कहा :

من صام عاشوراء غفر له سنة۔

तर्जुमा : जो व्यक्ति आशूरा के दिन का रोज़ा रखे उसके वर्ष भर के पाप धुल दिये यानी माफ कर दिये जाते हैं''

मुस्लिम शरीफ़ की रिवायत है कि हुजूर स० जब मदीना आये तो देखा कि यहूद आशूरा का रोज़ा रखते हैं, आपने उनसे इस रोज़े का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि इस दिन हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम और उनकी कौम बनी इस्राईल को फ़िरऔन के जुल्म से अल्लाह ने नजात दी और फ़िरऔन डूब

गया जिसके शुक्रिये में इस दिन हज़रत मूसा अ० ने रोज़ा रखा। इस लिए उनकी पैरवी में हम भी रोज़ा रखते हैं। आपने यह सुन कर कहा कि हज़रत मूसा से सबसे ज़्यादा हमारा सम्बन्ध है और हम उनके ज़्याद हक़दार हैं फिर आपने ख़ुद भी उस दिन का रोज़ा रखा और अपने सहाबियों रज़ि० को भी रोज़ा रखने का हुकम दिया। बल्कि रमज़ाम के रोज़ों की फ़रज़ियत से पहले तो हुज़ूर अ० इर रोज़े की बड़ी ताकीद करते थे और ख़ुद आपने कभी भी इस रोज़े को नहीं छोड़ा अपनी उम्र के अखरी वर्ष में जब हुज़ूर अ० को यह एहसास हुआ कि इस रोज़े में हक़ीक़तन मुसलमानों की यहूदियों के साथ पैरवी हो रहे हैं तो आपने कहा था कि अगर में अगले वर्ष ज़िन्दा रहा तो इस एक दिन के साथ एक और दिन का रोज़ा रखूंगा। मगर उसी वर्ष हुज़ूर स० की वफ़ात हो गई। इसी लिए बेहतर तरीक़ा यह है कि मुसलमान दो रोज़े रखें। ९–१० मुहर्रम को या १०–११ मुहर्रम को। बहर हाल १० मुहर्रम से पहले या उसके बाद एक रोज़ा जोड़ लें ताकि हुज़ूर स० की मंशा के मुताबिक़ यहूदियां से मुशाबहत समाप्त हो जाये।

इस्लाम से पूर्व मुहर्रम के महीने की अहमियत : मुहर्रम का महीना वह महीना है जिसकी अहमियत इस्लाम के आने के पूर्व ही से मौजूद है। इसी लिए इसी महीने में हज़रत नूह अलैहिस्सलाम की नाव जूदी पहाड़ पर रूकी। हज़रत याक़ूब अलैहिस्सलाम अपने बिछड़े हुए पुत्र युसूफ अलैहिस्सलाम से चालीस वर्ष के बाद इसी महीने में मिले, हज़रत दाऊद अलैहिस्सलाम की इसी महीने में माफी हुई, हज़रत सुलेमान अलैहिस्सलाम को इसी महीने में अपना छिना हुआ देश वापस मिला, हज़रत अय्यूब अलैहिस्सलाम को इसी महीने में मुसीबतों और आज़माइशों से छुटकारा मिला। हज़रत यूनुस

अलैहिस्सलाम को इसी महीने में मछली के पेट से नजात मिली। हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम और उनकी क़ौम बनी इस्राईल को इसी महीने में फ़िरऔन के नदी में डूब जाने के बाद उसके जुल्म से नजात मिली।

यही कारण है कि इस्लाम के आने से पूर्व भी यहूद, नसारा, और मुश्रिकीन सब इस महीने की अहमियत को तस्लीम करते थे। चुनांचे रिवायात में आता है कि १० मुहर्रम (आशूरा के दिन) को मक्का के कुफ्फार काबे का गिलाफ बदला करते थे।

शहादते हुसैन रज़ि० और मुहर्रम का महीना : इसी महीने की दस्वीं तारीख़ को रसूल के नवासे शहीद मज़लूम सय्यदना हुसैन रज़ि० की दर्दनाक शहादत का वाक़िया भी पेश आया। अगरचे पूरी इस्लामी तारीख हमारे शहीदों के खून से लाला ज़ार है और सिर्फ इस्लाम की तारीख के पहले दशक के शहीद मुसलमानों की फ़हरिस्त तैय्यार की जाये तो एक दफ़तर चाहिये मगर इन शहीदों में बहर हाल मतर्बे का अन्तर तो है ही। उदाहरण के तौर पर इस्लाम की पूरी तारीख़ में जितनी मज़लूम शहादत तीसरे ख़लीफ़ा, दामादे रसूल स० सैय्यदना उस्मान ग़नी रज़ि० की हुई दूसरी कोई शहादत नहीं हुई। यह दर्दनाक हादसा १८ ज़िलहिज्जा को पेश आया।

इसी तरह अमीरूल मोमिनीन दूसरे खलीफा सैय्यदा उमर फ़ारूक़ की शहादत से इस्लाम को जितना बड़ा नुक़सान हुआ इसकी नज़ीर पूरी इस्लामी तारीख में नहीं मिलती। क्योंकि उनकी मृत्यु के बाद इस्लामी तरक़्क़ी का सिलसिला रुक गया गया। फ़ारूक़े आज़म रज़ि० की शहादत का हादसा भी इसी महीने मुहर्रमुल हराम की पहली तारीख़ को पेश आया।

इसी तरह मुसलमान रसूलुल्लाह स० के चचा हज़रत हमज़ा रज़ि० की शहादत को कैसे भूल सकते हैं जो ३ हिजरी

में गज़्व–ए–उहद में शहीद हुए और रसूलुल्लाह स० की ज़बान ने उनको ''सैय्यदुश्शोहदा'' के ख़िताब से नवाज़ा और जिनकी याद को हुज़ूर स० आख़िर तक भूल न सके।

इसी तरह स० हुसैन बिन अली रज़ि० की शहादत को भी मुसलमान भुला नहीं सकते, उनकी शहादत मुसलमानों के लिए दो कारणों से खास और अहमियत की हामिल है। एक अपनी मज़लूमियत के एतबार से और दूसरे नबी स० की क़राबत के कारण।

मगर इन तमाम बातों के बावजूद मुहर्रम की तमाम तर अहमियत का रिश्ता स० हुसैन रज़ि० की महान शहादत से जोड़ना और यह कहलाने की कोशिश करना कि मुहर्रम को जो कुछ अहमियत हासिल है वह केवल इस कारण से कि इस महीने में स० हुसैन मज़लूम रज़ि० की शहादत हुई। सरासर गुमराही और तारीख़ी हक़ीक़तों से दूर भागना है।

जैसा कि पाठकगण ने इन बातों से समझ लिया होगा कि मुहर्रम का महीना और आशूरा–ए–मुहर्रम (१० मुहर्रम) की अहमियत हज़रत हुसैन रज़ि० की शहादत का हादसा पेश आने से बहुत पहले ही से इस्लाम में मौजूद थी और हुज़ूर अलैहिस्सलाम न केवल इस महीने को अहमियत देते थे बल्कि अपने सहाबियों को भी इसकी ताकीद करते थे।

यहीं नहीं बल्कि इस्लाम के आने से पहले भी मुहर्रम के महीने को एक ख़ास स्थान मिला हुआ था। इसी कारण यहूद और नसारा यहां तक कि कुफफार और मुश्रिकीने मक्का भी इसकी अज़मत और एहतराम के मानने वाले थे।

इन हक़ीक़तों की मौजूदगी में माहे मुहर्रम का तमाम तर सम्बंध सिफ़ हज़रत हुसैन रज़ि० से जोड़ना हक़ीक़त से मुंह चुराने और तारीख़ी घपले बाज़ी के सिवा और क्या हो सकता

है?

क्या मुहर्रम ग़म का महीना है? अजीब हैरतनाक बात है कि वह महीना जो इतनी फ़ज़ीलतें रखता हो और जिसकी अहमियत तारीख़ के हर दौर में ना काबिले इंकार रही हो, आज इस महीने को गम का महीना क़रार दिया जाता है। राफ़िज़ियों ने तो सैय्यदना हुसैन रज़ि० की शहादत के हादसे को पेच दर पेच दास्तान इस कारण बना दिया कि हुसैन मज़लूम रज़ि० के क़त्ल का दाग उनके दामन से छूट जाये मगर हैरत तो अहले सुन्नत पर होती है कि वह शीयई प्रोपेगन्डे के इस दर्जा शिकार हैं कि माहे मुहर्रम के फ़ज़ाएल को भुला करके उसे गम का महीना कहने पर क्यों तुले हुए हैं? पहली बात तो इस सिलसिले में यह है कि शहादत बहुत बड़े दर्जा की चीज़ है और इसको हासिल करना सआदत की दलील है। चुनांचे खुद रसूल स० ने शहादत की तमन्ना इस तरह की है :

لوددت ان اقاتل فی سبیل الله ثم اُحییٰ ثم اقتل ثم
احییٰ ثم اقتل ثم احییٰ ثم اقتل۔

तर्जुमा : मैं तमन्ना करता हूं कि खुदा के रास्ते में क़त्ल किया जाऊँ फिर ज़िन्दा किया जाऊँ फिर क़त्ल किया जाऊँ फिर ज़िन्दा किया जाऊँ फिर क़त्ल किया जाऊँ फिर ज़िन्दा किया जाऊँ फिर क़त्ल कर दिया जाऊँ।''

इसी तरह दूसरे खलीफा अमीरूल मोमिनीन सैय्यदना फ़ारूक़ आज़म रज़ि० दुआ किया करते थे :

اللهم ارزقنی شهادة فی سبیلك و اجعل موتی
ببلدرسولك۔

तर्जुमा : ऐ अल्लाह तु मुझे अपने रास्ते में शहादत दे और मुझे अपने रसूल के नगर (मदीना) में मौत

अता कर।''

खुदा ने उनकी इन दोनों दुआओं को कुबूल फ़रमाया और नमाज़ की हालत में मस्जिदे नबवी के अन्दर आप पर क़ातिलाना हमला हुआ जिसके कारण आपने शहादत हासिल की। फिर आपकी मौत भी मदीनतुर रसूल स० में हुई और मरने के बाद रसूल स० की कुरबत हासिल हुई और आज तक आपकी कुरबत का शर्फ़ हासिल है।

इसी तरह चौथे ख़लीफ़ा स० अली मुर्तुज़ा रज़ि० पर जब क़ातिलाना हमला हुआ और आप गिरे तो फ़रमाया :

فزت و رب الكعبة۔

तर्जुमा : काबे के रब की क़सम मैं सफ़ल हो गया।''

इन तमाम बातों से पता चलता है कि मोमिन का हदफ़ अल्लाह के रास्ते में शहादत है तो जब शहादत इतनी अहम चीज़ है तो इस पर आहो बुका और गिरया व ज़ारी और रोना पीटना कैसे अच्छा लग सकता है?

सैय्यदना हुसैन की शहादत अपनी मज़लूमियत के एतबार से कितनी ही अहम सही, मगर इसकी इजाज़त तो इस्लाम धर्म से मिल ही नहीं सकती कि जिस महीने में उनकी शहादत हुई उसे गम का महीना क़रार देकर इसमें शादी ब्याह और दूसरी ख़ुशी के कार्य करने को अपने ऊपर हराम कर लिया जाये।

और अगर सिर्फ़ शहादत ही के कारण किसी महीने को ग़म का महीना क़रार दिया जा सकता है तो शव्वाल के महीने में कैसे ख़ुशियां मनाई जाती हैं और क्यों शादी ब्याह की तक़रीबात मुनाक़िद होती हैं जबकि इसी महीने में हुज़ूर स० के चहीते चचा हज़रत हमज़ा रज़ि० की शहादत हुई। हुज़ूर स० इस दिलदोज़ मंज़र को देख कर बेचेल हो उठे और ऐलान कर

दिया :

عمی سیدالشہداء

तर्जुमा : मेरे चचा शहीदों के सरदार हैं''

यही नहीं बल्कि हुजूर अलैस्सिलाम, चचा की शहादत और उनकी लाश की बे हुरमती के सदमे को पूरी उम्र न भुला सके। और हज़रत हमज़ा रज़ि० के क़ातिल वह्शी को इस्लाम कुबूल कर लेने के बाद यह ताकीद फ़रमा दी थी कि :

तर्जुमा : वह्शी! तुम मेरे सामने न आया करो। क्यों कि तुम्हें देख कर मरहूम चचा की याद ताज़ा हो जाती है।''

वह शहादत जिससे हुजूर अलैहिस्सलाम इस तरह मुतास्सिर हुए हो क्या मुसलमानों की तवज्जोह की हक़दार नहीं है। और क्या हज़रत हमज़ा रजि० हुजूर स० के चहीते चचा नहीं थे? इसी तरह अगर शहादत ही के कारण किसी महीने को गम का महीना क़रार दिया जा सकता है तो इसका हक़दार सबसे ज़्यादा ज़िल हिज्जा का महीना है जिसकी १८ तारीख़ को ज़िननूरैन सय्यदना उस्मान गनी रज़ि० की शहादत का दर्दनाक वाक़िया पेश आया। जिनकी शहादत बिला शुबा इस्लामी तारीख़ की सबसे ज़्यादा मज़लूम शहादत थी। और सत्ता होने के बावजूद सैय्यदना उस्मान गनी रज़ि० ने जिस तरह सब्र का मुज़ाहिरा किया है इसकी पूरी तारीख में दूसरी मिसाल नहीं मिल सकती। क्योंकि सेय्यदना हुसैन रज़ि० ने ब हालते मजबूरी ही सही, मगर हमला हो जाने के बाद तलवार तो निकाल ली और दुश्मन से मुक़ाबला भी कर लिया। लेकिन उस्मान गनी रज़ि० ने अख़ीर तक इसको कुबूल नहीं किया कि उन की वजह से मदीनतुर रसूल की हुरमत पामाल हो, और किसी कलिमा गो की नकसीर टूटे। जबकि उन्हें पूरी तरह सत्ता

प्रयाप्त था। और सिर्फ़ एक इशारे पर बागियों की मामूली सी टोली का किस्सा खत्म यानी नष्ट हो जाता?।

जहां तक रसूल स० से सम्बन्ध का प्रश्न है तो अगर स० हुसैन रज़ि० हुजूर अलैहिस्सलाम के नवासे और आपकी बेटी स० फ़ातिमा ज़हरा रज़ि० के बेटे थे तो स० उस्मान ग़नी रज़ि० भी हुजूर स० के दामाद थे, और एक के बाद एक हुजूर स० की दो बेटियां सय्यद रुक़ैया और सय्यद उम्मे कुलसुम रज़ि० उनके निकाह में आयीं। और हुजूर स० के एतमाद का आलम यह था कि दूसरी बेटी की मृत्यु के बाद कहा कि अगर मेरी तीसरी बेटी होती तो मैं इनका भी निकाह उस्मान रज़ि० से कर देता।

तो जब मुसलमान शव्वाल को गम का महीना नहीं करार देते जबकि इस महीने में हज़रत हमज़ा रज़ि० की शहादत हुई, ज़िलहिज्जा के महीने को गम का महीना नहीं क़रार देते जबकि इस में स० उस्मान गनी रज़ि० की शहादत हुई। रमज़ान को गम का महीना नहीं कहते जबकि इसमें स० हुसैन रज़ि० के पिता और रसूल स० के दामाद हज़रत अली रज़ि० की शहादत हुई तो फिर मोहर्रम को गम का महीना क्यों कर करार दे सकते हैं?

यह तो सिर्फ कुछ उदाहरण थे। वर्ना इस्लामी वर्ष का कौन सा महीना है जिसमें इस्लाम के शैदाई शहीद न हुऐ हों तो अगर इसे ही ग़म की बुनियाद करार दिया जाये तो मुसलमान गम की तस्वीर बन कर रह जाये और उनकी जिन्दगी में खुशी नाम की कोई चीज़ बाकी न रहे।

मुहर्रम और ताज़िया : ताज़िया ख़ालिस शीयई ईजाद है जिसे सैय्यदना हुसैन रज़ि० की कब्रे मुबारत की शबीह कहा जाता है। मज़े की बात यह है कि तारीखी तैर पर स० हुसैन

की क़ब्र की सही तहक़ीक़ भी नहीं हो पाती कि वह किस स्थान पर है और किस अंदाज़ की बनी है, मगर इसकी शबीह बन कर तैय्यार हो गई फिर इसमें भी यह कैद नहीं कि तमाम ताज़िये एक ही तरह के हों, बल्कि हस्बे हैसियत जो जितना कीमती चाहे ताज़िया बनवा ले और उसे शबीह रौज़ा इमाम हुसैन के नाम से मौसूम कर दे।

ताज़िये का वजूद ६वीं सदी हिजरी से पहले कहीं नहीं मिलता जब कि सै० हुसैन की शहादत ६१ हिजरी में हुई है। ६वीं सदी हिजरी के आखिर में शिया बादशाह अमीर तैमूर लंग ने सबसे पहले ताज़िये की बुनियाद डाली, इसके बाद हुमायूं बादशाह के हुकम से बेरम खां कर्बला से पत्थर का ताज़िया बनवाकर हिन्दुस्तान लाया और फिर यह सिलसिला चल पड़ा और आज शिया इसे अपने धर्म का एक अंक गिनते हैं।

जहां तक शियों का मामला है तो हमको उनसे इस सिलसिले में कुछ नहीं कहना है मगर हां उन अहले सुन्नत भाइयों से जो आज तक जिहालत के कारण ताज़िया दारी करते हैं या ताज़िये को अच्छी चीज़ समझते हैं। यह ज़रूर कहना है कि अगर ताज़िये की कुछ अस्ल होती तो हुजूर स० का ताज़िया उनके पवित्र सहाबा या उनके बाद के व्यक्ति बनवाते या इसी तरह सहाबा–ए–किराम रज़ि०, ताबईन या अन्य दूसरे इस्लाम के शहीदों के ताज़िये बनते। और अगर किसी ख़ास वजह से सिर्फ़ स० हुसैन रज़ि० ही का ताज़िया बनना था तो उनकी शहादत और तैमूर लंग के दरमयान बीते हुए तक़रीबन ८०० वर्षों के बीच मुसलमान अवश्य बनाते। क्या तैमूर लंग से पहले किसी भी मुसलमान को सै० हुसैन रज़ि० से मुहब्बत न थी कि उनकी याद को ताज़िये के नाम से जिन्दा रखने की कोशिश करता? इस अवसर पर एक अंग्रेज़ अफसर

का वाकिया लिखना दिलचस्ती से खाली नहीं कि एक मर्तबा उसने एक ताज़िया के साथ कुछ लोगों को रोते धोते जुलूस की शकल में जाते देख कर अपने साथ के लोगों से पूछा कि यह क्या है? किसी ने बताया कि पैगम्बरे इस्लाम के नवासे आज से १३०० वर्ष पहले कर्बला में शहीद हो गये थे। यह लोग उन्हीं के याद में रो रहे हैं और यह उनकी क़ब्र की नक़ल है। यह सुन कर उस अंग्रेज़ अफसर ने बड़े दुःख भरे लहजे में कहा ''अफ़सोस कि इन लोगों को काफ़ी देर में ख़बर मिल सकी''

हक़ीक़त यह है कि यह अमीर तैमूर लंग की एक साज़िश थी जिसके द्वारा उसने मुसलमानों को एक गलत और अपना बनाई हुई बिदअत पर चलाने की कोशिश की और अपने सत्ता से नाजायज़ फायदा उठा कर उसे रवाज दिया जिसका इस्लाम की पाक और मुक़द्दस शिक्षा से दूर का भी वास्ता नहीं था।

खुदा तआला तमाम मुसलमानों को जाहिलाना रसमों से नजात देकर अपने ठीक और सच्चे दीन पर चलने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये। आमीन

☆☆☆☆

हज़रत मुआविया बिन अबू सुफ़ियान रज़ि०

जिनसे बातिल प्रस्तों को दुश्मनी है

इस्लाम के दुश्मनों ने इस्लाम के अच्छे और महान व्यक्तियों पर कीचड़ उछालने और उनकी बेदाग़ सीरत को दागदार करने की जो मुहिम चलाई थी और आज तक इस पर लगे हुए हैं। इसका निशाना ख़ास तौर पर उन पवित्र व्यक्तियों की ओर बहुत ज़्यादा रहा है जो इस्लाम के सच्चे सहयोगी होने के साथ साथ ज्ञान और बुद्धि, तदबीर व सियासत की दौलत से मालामाल थे क्योंकि उन लोगों पर न केवल यह कि फसादियों की गुमराह कुन और शर अंगेज़ कारवाइयों का असर न हुआ बल्कि बराबर उन लोगों ने उन मुफ़्सिदीन के राज़ो को बेनकाब करके उम्मत को उनके फ़ितनों से महफ़ूज़ रहने के लिए आगाह कर दिया।

मुदब्बिरे आज़म सय्यिदना मुआविया बिन अबू सुफ़ियान रज़ि० की ज़ात भी उसी पाक और पवित्र सिलसिले की एक कड़ी है जिसने न केवल अपनी ज़िन्दगी को इस्लामी शिक्षाओं को बढ़ोतरी देने में लगा दी बल्कि इस्लाम के मुक़ाबले पर आने वाले फ़ितनों को भी बन्द किया। फ़सादियों के रास्ते बन्द किये और हिकमते अमली और सियासत के द्वारा उनको ऐसा बेनकाब

किया कि उनके तमाम साज़िशी मंसूबे को नष्ट और भंग कर दिया।

जहां तक शियों का ताल्लुक़ है तो उनको हज़रत मुआविया से दुश्मनी होना ही चाहिए क्योंकि यह उनके मिशन के बिल्कुल मुताबिक़ है। क्या शिया लोगों के हज़रत मुआविया से दुश्मनी रखने के लिए यह काफी नहीं है कि वह नबी स० के हकीकी साले और आपके करीबी रिश्तेदार होने के साथ साथ ही आपके पवित्र सहाबी भी हैं? हुजूर स० ने आपके लिए दुआ की कि اللهم اجعله هادياً و مهدياً ऐ अल्लाह! तू मुआविया को हिदायत देने और हिदायत पाने वाला बना दे।'' और सबसे बढ़कर हुजूर स० के इस तरह विश्वासपात्र थे कि आपने उनको ''कातिबे वही'' (वही लिखने वाला का पवित्र सम्मान) दिया। हुजूर स० से खुद उनको इतनी मोहब्बत थी कि आपके कटे हुए बाल और नाखुन को बड़ी हिफाज़त के साथ पूरी जिन्दगी रखे रहे और जब वफात का समय आया तो वसीयत की कि जब मैं मर जाऊँ तो पवित्र बाल मेरी नाक में और नाखुन मेरी आंखों में रख दिये जायें। मगर रवाफ़िज़ के प्रोपेगंडे से मुतासिर हज़रात अहलेसुन्नत जब हज़रत मुआविया रज़ि० को शक व शुबहे की निगाहों से देखते हैं तो बहुत ही हैरत होती है। हज़रत मुआविया रज़ि० की बुलन्द और महान शख़्सियत कतई किसी के मानने और न मानने से मुतासिर होने वाली नहीं है। लेकिन हां यह ज़रूर है कि उनकी शख़्सियत पर कीचड़ उछालने वाले और उनकी शान में गाली देने वाले अपने अन्दर छुपी हुई गंदगी को उजागर करते हैं। हम यहां उन व्यक्तियों के बारे में कुछ टिप्पणी नहीं करना चाहते जिनका यही मक़सद है कि रसूल स० के सहाबियों को गाली दें बल्कि मेरा मक़सद यह है कि हमारे वह सुन्नी भाई जो ख़राब और गुमराह कुन प्रोपेगन्डे

से प्रभावित होकर केवल सुनी सुनाई पर एतमाद करके हज़रत मुआविया बिन अबू सुफ़ियान की ओर से किसी किस्म की हसद रखते हैं, उन पर यह हक़ीक़त वाज़ह कर दी जाये कि मुआविया का क्या स्थान है और उनसे दुश्मनी या किसी क़िसम की कुदूरत रखना कितना हानिकारक है।

हुजूर स० का सम्बंध हज़रत मुआविया रज़ि० के संग

हुजूर स० का हज़रत मुआविया रज़ि० से बहुत गहरा सम्बन्ध था, इसी कारण आपने कई बार उनके लिए दुआयें कीं। इब्ने सअद की रिवायत है कि एक बार हुजूर स० ने दुआ मांगी ऐे अल्लाह! तू मुआविया को अपनी पुस्तक का ज्ञान दे और मुल्कों पर सत्ता दे।'' इसी तरह हुजूर स० ने आपके ''हादी और महदी'' होने की दुआ फरमाई।

हुजूर स० ने ख़ुद अपनी ज़बान से हज़रत मुआविया रज़ि० को सत्ता की ख़ुशख़बरी सुनाई। चुनांचे हज़रत हसन रज़ि० रिवायत करते हैं कि हुजूर स० ने फरमाया कि यह दिन समाप्त न होंगे जब तक मुआविया बादशाह न हो जायें। इसी तरीक़े पर हुजूर स० ने हज़रत मुआविया को दुनिया के साथ साथ आख़िरत की भी कामयाबी ही ख़ुशख़बरी सुनाई। चुनांचे हुजूर स० ने फ़रमाया कि मेरी उम्मत का सबसे पहला लश्कर जो समुद्र पार करके जिहाद करेगा उस पर जन्नत वाजिब होगी। और यह बात तैय है कि सबसे पहला लश्कर जिसने समुद्र पार जाकर जिहाद किया वह वही लश्कर है जिसकी बागडोर हज़रत मुआविया रज़ि० के हाथ में थी।

सहाबा का हज़रत मुआविया रज़ि० के साथ ताल्लुक

हुजूर स० के नवासे सय्यदना हसन रज़ि० को हज़रत मुआविया रज़ि० पर इस तरह एतमाद था कि सत्ता उनको देकर खुद सत्ता से हट गये और हज़रत मुआविया रज़ि० को

हाकिम बनाया। और खुद इसका ऐलान किया। अगरचे रवाफ़िज़ इस मौक़े पर हज़रत हसन रज़ि० के किरदार को दागदार करने की कोशिश करते हैं और केवल ''इसी एक जुर्म'' के कारण बावजूद हज़रत हुसैन रज़ि० की तरह रसूल के नवासे होने के। रवाफ़िज़ न उनका रोना रोते हैं और न ही उनपर मातम करते हैं मगर यह एक हक़ीक़त है कि रसूल स० के नवासे से हरगिज़ इसकी उम्मीद नहीं की जासकती है कि वह किसी नालायक़ के हाथ पर बैअत कर लेंगे। और उनके साथ अपनी इताअत और वफ़ादारी का ऐलान कर देंगे। इसी तरह अमीरूल मोमिनीन हज़रत उमर फ़ारूक़ रज़ि० ने उनकी सलाहियतों को जांच परख कर उनको शाम का गवर्नर बनाया ४ वर्ष उमर फ़ारूक़ रज़ि० के दौर में हज़रत मुआविया शाम के हाकिम रहे इसके बाद तीसरे ख़लीफ़ा हज़रत उस्मान गनी रज़ि० और चौथे ख़लीफ़ा हज़र अली रज़ि० ने भी अपने अपने दौर में हज़रत मुआविया रज़ि० को हत़रत उमर रज़ि० की ओर से दिये गये पद पर बाक़ी रखा।

हज़रत उमर फ़ारूक़ रज़ि० ने जब हज़रत उमेर बिन सअद अंसारी रज़ि० को हम्स की सत्ता से बे दख़ल यानी बर्ख़ास्त करके यह इलाक़ा भी हज़रत मुआविया ही को दे दिया तो लोगों ने इधर उधर की बातें करनी शुरू कर दीं कि देखो उमेर रज़ि० को बर्ख़ास्त करके यहां की सत्ता भी मुआविया रज़ि० को दे दिया, जब हज़रत उमेर रज़ि० ने यह सुना तो कहा :

لا تذكروا معاوية الا بالخير فإني سمعت رسول الله
صلى الله عليه وسلم يقول اللهم اهدبه۔

तर्जुमा : मुआविया का ज़िक्र भलाई ही के साथ किया करो क्योंकि मैं ने रसूल स० को यह कहते

हुए सुना है कि ऐ अल्लाह! उसे हिदायत का ज़रिया बना दे। (तिर्मिज़ी)

अल्लामा इब्ने कसीर ने अपनी तारीख़ में हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस रज़ि० का यह कौल लिखा है।

"ما رأيت رجلاً اسود من معاوية"

तर्जुमा : मैंने मआविया से ज़्याद किसी अन्य में सरदारी नहीं देखी।

लोगों ने प्रश्न किया कि क्या उमर रज़ि० में भी नहीं? फ़रमाया कि उमर रज़ि० उनसे बेहतर थे मगर सरदारी में मुआविया उनसे भी बेहतर हैं।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ि० का इरशाद ''अल बिदायतु वन निहाया'' में इस तरह लिखा है

"ما رأيت رجلاً اخلق من معاوية''

तर्जुमा : मैंने किसी व्यक्ति में सत्ता की सलाहियत मुआविया से अधिक नहीं देखी।

हज़रत सअद बिन अबी वक़ास रज़ि० कहते हैं :

"ما رأيت احداً بعد عثمان اقضیٰ بالحق من صاحب هذا الباب يعنى معاوية''

तर्जुमा : मैंने उस्मान के बाद किसी को ऐसा सही फैसला करने वाला नहीं देखा जैसा इस दर्वाज़े वाला है यानी मुआविया।

हम ज़माना व्यक्तियों का अच्छा गुमान : जिन व्यक्तियों ने आपका समय पाया है उनकी भी राय आपके संबन्ध बहुत ही अच्छी है। चुनांचे अबू इस्हाक़ रबीई के सम्बंध में हज़रत अब्दुल्लाह बिन अहमद बिन हंबल रिवायत करते हैं :

"انه ذكر معاوية فقال لو ادركتموه او ادركتم ايامه لقلتم كان المهدى"

तर्जुमा : अबू इस्हाक़ रबीई ने हज़रत मुआविया रज़ि० का तज़किरा करते हुए कहा कि अगर तुमने इनको देखा होता या उनका ज़माना पाते तो कहते कि महदी यही हैं।

अबू इस्हाक़ रबीई अमीरूल मोमिनीन हज़रत अली रज़ि० के बहुत ख़ास लोगों में से थे और हर आंदोलन के मौके पर हज़रत अली रज़ि० को सहयोग देकर हज़रत मुआविया का विरूध किया। इस लिए हज़रत मुआविया रज़ि० की शख़्सियत के सम्बंध में जो टिप्पनी वह कर रहे हैं उसकी क़द्र व क़ीमत ज़ाहिर है।

हज़रत मुआविया रज़ि० की खिदमात : हज़रत मुआविया रज़ि० ने हाकिम की हैसियत से एक लम्बे समय तक धर्म व मिल्लत की खिदमात अंजाम दीं, फारूक़ आज़म रज़ि० के समय से लेकर हज़रत हसन रज़ि० तक बीस वर्ष गर्वनर के तौर पर खिदमत की और फिर हज़रत हसन रज़ि० की दस्तबरदारी के बाद २० वर्ष तक अमीरूल मोमिनीन और बादशाहे वक़्त के तौर पर ख़िदमत की। इस तरह कुल ४० वर्ष तक सत्ता संभाले रहे। और इस मुद्दत में ख़ुदा की दी हुई सलाहियतों के द्वरा हज़रत मुआविया रज़ि० ने बड़ी ख़िदमत की। हज़रत मुआविया रज़ि० ने फ़ारूके आज़म रज़ि० से ही समुद्री बेड़े की तय्यारी की इजाज़त मांगी ताकि बाज़िनतीनी फ़ौजों का समुद्र में मुक़ाबला किया जा सके। मगर चूंकि उस समय इस्लामी फौजें ज़मीन में चारों ओर फैली हुई थीं इस लिए मस्लहतन फ़ारूके आज़म रज़ि० ने इजाज़त नहीं दी। मगर हज़रत उस्मान रज़ि० के दौर में हालात जब ठीक ठाक हो गये तो हज़रत उस्मान गनी रज़ि० ने हज़रत मुआविया रज़ि० को समुद्री बेड़े की तैय्यारी की इजाज़त दे दी। चुनांचे मुआविया रज़ि० ने सबसे पहले समुद्री बेड़ा तैयार कराया

और फ़ौजों के लिए समुद्री जंग की तैय्यारी का इंतज़ाम कराया इस तरह सबसे पहले समुदी बेड़े का इंतिज़ाम करने का सेहरा हज़रत मुआविया रज़ि० के सर बंधा आपने इस ख़िदमत को इस तरह अंजाम दिया कि २७ हिजरी में जज़ीरा कबरस पर हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने कैस हारसी के तत्वाधान में पहला समुद्री हमला हो गया और २८ हिजरी में इस प्रकार फ़तह भी हो गयी कि क़बरस वाले को जिज़या कुबूल करना पड़ा गोया क़बरस में अधोरी हुकूमत बन गई।

हज़रत मुआविया के विरूध साज़िश : चूंकि हज़रत मुआविया रज़ि० की तदबीर और आपकी सूझ बूझ और खुदा की दी हुई सलाहियों से इस्लाम को बहुत बल प्राप्त हो गया था। और ख़िलाफ़ते इस्लामिया उस समय पूरे उरूज पर थी। ईरान जैसी सबसे बड़ी ताक़त नष्ट हो चुकी थी। दूसरी ओर हज़रत मुआविया रज़ि० की अच्छी तदबीरों के कारण समुद्री रास्ता भी खुल चुका था और बाज़िंतीनियों में भी मुक़ाबले की हिम्मत नहीं रह गयी थी। गर्ज़ेकि हर ओर बुलन्दी ही बुलन्दी थी और इस्लाम के उरूज का सितारा पूरी तहर बुलन्दी पर था। यह चीज़ भला इस्लाम के दुश्मनों और धर्म और मिल्लत के विरोधियों को कैसे अच्छी लगती इसी लिए उन्होंने इस ताकत को समाप्त और नष्ट और टुकड़े टुकड़े कर देनी की ठान ली यह तो उनको यक़ीन हो चुका था कि मुकाबला नहीं कर सकते लेहाज़ा चोर दरवाज़े से प्रवेश होना आरम्भ किया और इब्ने सबा और उसके सहयोगियों का एक गिरोह जिसका मक़सद केवल इस्लाम की बुनियादों को खोकला करना था। चुनांचे इन सबाइयों ने हज़रत उस्मान रज़ि० और उनके जांबाज़ हुक्काम ख़ास कर हज़रत मुआविया रज़ि० के विरूध प्रोपेगन्डा शुरू कर दिया और भीतर ही भीतर उनके विरूध ज़हर घोलना

शुरू करने लगे। शाम में तो उनकी दाल नही गली। मगर अन्य दूसरे स्थानों पर सबाइयों को अपने कार्य करने के लिए कुछ सहयोगी मिल गये। शाम खुद अब्दुल्लाह बिन सबा पहुंचा। और वहां पहुंच कर उनसे ज़ाहिदीन और तारिकीने दुनिया से मुलाक़ातें करके उनको मुआविया रज़ि० की ओर से बदगुमान करने की कोशिश कीं चुनांचे सबसे पहले हज़रत अबू ज़र ग़िफ़ारी रज़ि० के पास आया और उनसे कहा :

يا اباذر الا تتعجب من معاوية يقول المال مال الله الا
ان كل شىء لله كأنه يريد أن يحتجنه دون المسلمين
و يمحو اسم المسلمين۔

तर्जुमा : ऐ अबू ज़र! क्या आपको यह सुन कर ताजुब नहीं होता कि मुआविया रज़ि० इस माल को अल्लाह का माल कहते हैं यूं तो हर चीज़ अल्लाह ही की है, लेकिन ऐसा लगता है कि वह खुद क़ाबिज़ होकर इस माल पर से मुसलमानों का नाम मिटा देना चाहते हैं।

यह सुन कर हज़रत अबू ज़र रज़ि० हज़रत मुआविया के पास पहूंचे और कहा कि क्या बात है कि आप मुसलमानों के माल को अल्लाह का माल कहते हैं, हज़रत मुआविया रज़ि० ने उत्तर दिया "ऐ अबू ज़र! अल्लाह आप पर रहम रके, क्या हम अल्लाह के बन्दे नहीं हैं, क्या यह माल उसका नहीं है, यह मख़लूक़ उसकी नहीं है, और क्या केवल उसी का हुकम नहीं चलता है?" हज़रत अबू ज़र रज़ि० ने यह सुनकर कहा कि बहर हाल ऐसा मत कहा कीजिए। हज़रत मुआविया रज़ि० ने इस पर कहा मैं यह तो नहीं कहूंगा कि माल अल्लाह का नहीं है, हां इस माल को मुसलमानों का माल कह दिया करूंगा। गर्जेकि अब्दुल्लाह बिन सबा ने हज़रत अबू ज़र के दिल में

हज़रत मुआविया रज़ि० की ओर से बुराई पैदा करने की कोशिश की थी मगर हज़रत अबू ज़र रज़ि० के फौरी पूछने और हजरत मुआविया रज़ि० के जवाब ने बात को यहीं समाप्त कर दिया और आगे बढ़ने से बचा लिया।

जब इब्ने सबा को यहां पूरी तहर सफलता नहीं मिली तो हज़रत अबू दर्दा रज़ि० के निकट पहूंचा और उनसे भी यही बात कही। हज़रत अबू दर्दा रज़ि० जहां आबिद और ज़ाहिद थे वहीं वह महान फकीह भी थे जल्द ही इस बात की गहराई तक पहुंच गये और जवाब में कहा ''तुम हो कौन?'' मुझे तू यहूदी लगते हो'' इतना सुनते ही इब्न सबा मायूस हो गया और तीसरे बुजुर्ग और ज़ाहिदे शब बेदार हज़रत उबादा बिन सामित रज़ि० के पास पहुंच कर उनसे यही बात कही, उन्होंने उसकी अस्ल हक़ीक़त को समझ लिया और उसे पकड़ कर हज़रत मआविया रज़ि० के पास ले गये और कहा कि खुदा की कसम यही वह व्यक्ति है जिसने अबू जर रज़ि० को आपके पास भेजा'' तब उसको शाम से निकाल बाहर किया गया।

बे बुनियाद तोहमत : हज़रत अली रज़ि० और हज़रत मुआविया रज़ि० के दरमयान कुछ ग़लत फ़हमियां उतपन्न हो गईं उन गलत फहमियों के कारण मुनाफ़िक़ीन को अपना कार्य करने का अवसर मिल गया। जिसके कारण दोनों के दरमयान एक ख़ून आशाम जंग ''सिफ़्फ़ीन'' के नाम से हुई जो इस्लामी तारीख़ का एक बद नमु‍ा दाग और मिल्लते इस्लामिया के लिए बहुत ही तकलीफ़ देने वाली है। लेकिन एक ओर तो इब्न सबा के लोगों ने अपने नापाक मिशन की तकमील के तौर पर यह खून आशाम जंग कराई और दूसरी ओर इस्लामी तारीख को दाग़दार करने के लिए अनेक प्रकार की अफ़वाहें और दोनों के दरमयान इलज़ामात लगाना शुरू किये। इसी कारण हज़रत

मुआविया रज़ि० पर यह बे बुनियाद तोहमत इन्हीं शियों ने लगाई कि ''सिफ्फीन'' के लिए रवानगी से पूर्व हज़रत मुआविया रज़ि० ने ईरान के बादशाह को रूपये पैसे देकर सुलह कर ली थी, यही नहीं बल्कि जंग के बाद भी आप उसे बराबर रूपया देते रहे। और उससे मित्रता बाकी रखो। यह सरासर इस्राईली रिवायत और शियों की मन घड़त है, हक़ीक़त इसके बिल्कुल ख़िलाफ़ है और वह यह है कि जब हज़रत मुआविया रज़ि० को ख़बर मिली कि रूम के बादशाह हमारी अपसी दुश्मनी से फ़ायदा उठा कर हमला करना चाहता है और उसकी फौजें एक जुट होकर सरहदों पर आ रही हैं तो उसको आपने लिखा :

والله لئن لم تنته و ترجع الى بلادك يا لعين!
لاصطلحن انا و ابن عمى و لأخرجنك من جميع
بلادك و لأضيقن عليك الأرض بما رحبت

तर्जुमा : खुदा की कसम ऐ कमीने! अगर तू फौरन न रूका और अपने एलाके में वापस न गया तो मैं अपने चचेरे भाई से सुलह कर लूंगा और तुझे तेरी पूरे देश और सत्ता से निकाल दूंगा और फैली पृथर्वी को तुझ पर समेट दूंगा।

यह थी असल बात कि हज़रत मुआविया रज़ि० से साफ़ साफ़ कह दिया कि इस भूल में न रहना कि हमारे और अली रज़ि० के दरमयान दुश्मनी है अगर तूने हमले के हिम्मत की तो मैं अपने चचेरे भाई (अली रज़ि०) के साथ मिलकर तुझसे जंग करूंगा। हज़रत मुआविया रज़ि० की इस धमकी का यह नतीजा हुआ कि रूम के बादशाह डर कर अपनी तमाम फौजें लेकर वापस चला गया।

हमारा अक़ीदा : इन बातों के संदर्भ में यह बात साफ हो

गई कि हज़रत मआविया रज़ि० के विरूध मुनज्ज़म तौर पर साज़िश करके उनको बदनाम करने की कोशिश की गई ताकि उनके मिसाली किरदार को दाग़दार किया जा सके और अफ़सोस की बात है कि शियों और सबाइयों के इस प्रोपेगन्डे में हमारे कुछ सीधे सादे सुन्नी भाई भी आ गये जबकि हक़ीक़त यह है कि हज़रत मआविया रज़ि० रसूले खुदा स० के पवित्र मित्र और आपके ख़ास और इस्लाम के सच्चे ख़िदमत गार थे।

☆☆☆

शिया धर्म के चुटकुले

शिया एक ऐसा लतीफ़ों का धर्म है जिसकी सबसे बड़ी ख़ुसूसियत यह है कि इसका कोई भी मसला ऐसा नहीं है जिसके सिलसिले में एक ही हुकम बयान किया गया हो बल्कि हर हुकम की ज़िद भी मौजूद मिलेगी। मिसाल के तौर पर इमामों के सिलसिले में एक ओर तो यह रिवायात और उनकी फ़जीलत का इस तरह बयान कि वह मासूम होते हैं उनकी बात को मानना फ़र्ज और ज़रूरी होता है। वह हर बात खुका के हुकम के मुताबिक़ करते हैं। उनका चुनना अल्लाह की जानिब से होता है। उनके पास तमाम नबियों के खास मोजिज़ात और ख़ास आयात का ज़ख़ीरा रहता है वगैरह वगैरह। दूसरी ओर इनहीं इमामों के बारे में यह भी बयान शिया पुस्ताकों में मौजूद है कि वह झूठ से काम लेते थे और शरअी अहकाम सही सही तरीक़े से नहीं बयान करते थे एक ही मसले के अनेक प्रकार से अलग अलग उत्तर देते थे और जब उस पर टिप्पणी होती तो वे उत्तर देते कि हमारे और तुम्हारे हक में बेहतर यही है कि इसी तरह धोखा दिया जाता रहे और ठीक एवं स्टीक बात किसी को न बताई जाये इसी तरह दूसरे मसलों का भी मामला है कि कोई हुकम ऐसा न मिलेगा कि उसके बिल्कुल खिलाफ उसी मसले का दूसरा हुकम मौजूद न हो।

दूसरी अनेक चीज़ों के इस अतिरक्त धर्म का एक बहुत

अहम और एतक़ादी मसला हज़रत अली रज़ि० और दूसरे तीनों ख़लीफ़ाओं यानी हज़रत अबू बक्र रज़ि०, हजरत उमर रज़ि० और हज़रत उस्मान रज़ि० के दरमयान ताल्लुक़ात का है कि एक तरफ शिया धर्म के बयान के मुताबिक़ उनके ताल्लुक़ात आपसमें अच्छे न थे और हज़रत अली रज़ि० जो हुजूर अ० की वफ़ात के बाद आपकी ख़िलाफ़त के सबसे पहले हक़दार थे उनको इन तीनों ने बारी बारी से सत्ता से दूर रखा जिसका हज़रत अली के दिल में रंज था यही नहीं बल्कि शिया इन तीनों ख़लीफ़ाओं के ईमान को भी नहीं मानते और उनका बयान है कि ऐसा ही ख़याल हज़रत अली रज़ि० का भी था।

दूसरी ओर इन खुराफ़ाती रिवायात के साथ साथ ऐसी रिवायात भी उनहीं शिया पुस्तकों में मिलती हैं जिनसे यह पता चलता है कि हज़रत अली रज़ि० और तीनों ख़लीफ़ाओं के दरमयान अच्छे सम्बन्ध थे। दोनो ओर से एक दूसरे का ख़याल रखा जाता और उनकी इज्ज़त की जाती थी अगर हज़रत अबू बक्र रज़ि० फिर हज़रत उमर रज़ि० फिर हज़रत उस्मान रज़ि० अमीर और अल्लाह के रसूल स० के खलीफा की हैसियत से रहे तो हज़रत अली रज़ि० उन लोगों के ज़माने में न केवल एक वफ़ादार व्यक्ति थे बल्कि उनके मंत्री, राजदूत और उनकी ओर से बनाये गये हाकिम भी रहे। जंग और अम्न के मौक़े पर यह ख़लीफ़ा हज़रत अली रज़ि० से मश्वरा मांगते थे और हज़रत अली रज़ि० पूरी ईमानदारी के साथ अपनी पूरी सलाहियतों और सूझ बूझ को इस्तेमाल करके मश्वरा देते थे बल्कि आपने कभी कभी बिना मश्वरा मांगे न केवल मश्वरा दिया यही नहीं बल्कि अपने ताल्लुक पर एतमाद करते हुए ख़लीफ़ाओं के फैसले पर अमल करने को रोक दिया और इन ख़लीफ़ाओं ने इसका विरोध नहीं किया और उनकी ओर से

एलान आम और अपने उत्तराधिकारियों को ख़ुसूसी हिदायत थी कि अगर अली रज़ि० हमारे हुकम के ख़िलाफ़ कोई हुकम दें तो अली रज़ि० के हुकम पर कार्य किया जाये और हमारे हुकम पर अमल दर आमद रोक दिया जाये। चुनांचे इस सिलसिले में सिर्फ एक रिवायत चुटकुले के तौर पर पेश करके हम इस पर टिप्पणी करेंगे और इस रिवायत में छिपे लतीफ़ों से अपने पाठकों को जानकारी देंगे। यह रिवायत जो फ़ुरूए काफी के बाबुन नवादिर स० २३१ से नक़ल की जा रही है बहुत लम्बी है और इसमें दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर रज़ि० के ज़माने ख़िलाफ़त के हज़रत अली रज़ि० के एक फ़ैसले का हाल बयान किया गया है। रिवायत का ख़ुलासा यह है :

एक बार मदीने में एक लड़का अवाज़ लगाता घूम रहा था कि ऐ अल्लाह मेरे और मेरी मां के दरमयान इंसाफ कर। हज़रत उमर रज़ि० ने उस लड़के की ज़बान से यह सुन कर उससे पूछा कि ऐ लड़के! तू अपनी माता के बारे में ऐसी दुआ क्यों कर रहा है? लड़के ने उत्तर दिया कि अमीरूल मोमिनीन! मेरी मां ने मुझे ६ महीने कोख में रखा और २ वर्ष तक दूध पिलाया फिर जब मुझमें कुछ ज्ञान हुआ तो मुझे निकाल दिया। और अब यह कहती है कि तू मेरा बेटा नहीं है मैं तुझे पहचानती भी नहीं हूं। हज़रत उमर रज़ि० ने यह सुन कर उस महिला को बुलवाया। महिला के साथ उसके चार भाई और चालीस अन्य रिश्तेदार भी आये, उस महिला ने भी और उसकी तायीद में उसके साथ आने वालों ने भी यह बात कही कि यह लड़का झूट बोलता है और एक कुंवारी औरत पर तोहमत बांधता है क्यांकि अभी इस औरत की शादी भी नहीं हुई है फिर लड़के का क्या सवाल?

लड़का अपनी बात पर अड़ा रहा लेकिन महिला ने यही

कहा कि वह ख़ानदाने कुरैश की एक बा इस्मत और कुंवारी महिला है यह लड़का उस पर यूं ही तोहमत बांध रहा है। हज़रत उमर रज़ि० ने दोनों की बातें सुनने और महिला की ओर से चालीस गवाहियों के गुज़रने के बाद महिला के बयान की तस्दीक़ की और यह हुक्म दिया कि उस लड़के को जेल घर में ले जा कर डाल दो। हम इन गवाहों के हालात की तहक़ीक़ात यानी छान बीन करेंगे, और अगर यह गवाह ठीक और सही रहे तो उस लड़के पर झूठ की सज़ा होगी। और उस पर हद जारी होगी। चुनांचे लोग उस लड़के को लेकर जेल की ओर चले रास्ते में हज़रत अली रज़ि० से मुलाक़ात हुई उस लड़के ने उनको देख कर उनसे मदद मांगी कि ऐ रसूल के चचेरे भाई! मैं एक मज़लूम लड़का हूं और मेरे साथ यह जुल्म हो रहा है, यह सुन कर हज़रत अली रज़ि० ने लोगों को हुकम दिया कि इस लड़के को हज़रत उमर रज़ि० के पास वापस ले चलो, जब यह लोग उसको हज़रत उमर रज़ि० के पास लाये तो उन्होंने देख कर कहा कि मैंने तो इसे कैद खाना ले जाने का हुकम दिया था तुम वापस क्यों लाये? तो लोगों ने कहा कि अमीरूल मोमिनीन हमको अली बिन अबी तालिब ने यही हुकम दिया है कि हम इसे आपके पास वापस लायें और आप हमसे यह कहते हैं कि अली रज़ि० की किसी बात का इंकार मत किया करो। अभी यह लोग बात कर ही रहे थे कि हज़रत अली रज़ि० आ गये और उन्होंने उस औरत को बुलवाया फिर उससे पूछा कि तुम इस सिलसिलें में क्या कहती हो, उसने उत्तर में वही बात कही जो पहले हज़रत उमर रज़ि० से कह चुकी थी पस इस बयान को सुन कर हज़रत अली रज़ि० ने हज़रत उमर रज़ि० से कहा कि अगर आप इजाज़त दें तो इन लोगों का फ़ैसला मैं कर दूं? तो हज़रत उमर रज़ि० ने कहा सुबहानल्लाह!

मैं क्यों इजाज़त न दूंगा जबकि मैंने रसूल स० को यह कहते हुए सुना है कि तुम में ज़्यादा ज्ञानी हज़रत अली बिन अबी तालिब रज़ि० हैं?

इसके बाद हज़रत अली रज़ि० ने उस महिला से पूछा कि तुम्हारा कोई वली है? महिला ने कहा कि मेरे यह चारों भाई मेरे वली हैं, तब हज़रत अली रज़ि० ने महिला के भाईयों से पूछा कि क्या मेरा हुकम जो तुम्हारे या तुम्हारी बहन के लिए हो सही होगा? भाईयों ने जवाब दिया कि ऐ अल्लाह के रसूल के भाई! बेशक आपका हुकम हम लोगों के लिए सही होगा। हज़रत अली रज़ि० ने इजाज़त हासिल करने लेने के बाद यह फ़ैसला किया कि उसी लड़के के साथ इस महिला का निकाह पढ़ा दिया और ४०० दिरहम महर मुक़रर्र कर के खुद अपने घर से मंगवा कर लड़के के हवाले किया और कहा कि यह महर अपनी पत्नी को दे दो और मेरे पास उस समय आना जब तुम अपनी पत्नी से संभोग कर लेना और तुम्हारे जिस्म पर गुस्ल के निशान मौजूद हों। चुनांचे उस लड़के ने यह रूपये उसी समय महिला के गोद में डाल कर उससे कहा कि चलो उठो! तब मजबूर हो कर उस महिला ने कहा कि यह स्वीकार किया कि यह मेरा पुत्र और मैं इसकी माता हूं। मेरा निकाह इस लड़के के साथ जायज़ नहीं है। उस समय हज़रत उमर रज़ि० ने कहा कि मुझ पर अफ़सोस है कि अगर इस समय अली रज़ि० न होते तो (ग़लत फ़ैसले के कारण) उमर रज़ि० हलाक हो जाता।

इस रिवायत से निम्न कुछ बातें मालूम होती हैं।

(१) हज़रत उमर रज़ि० के सत्ता के समय हज़रत अली रज़ि० और हज़रत उमर रज़ि० के दरमयान बहुत अच्छे ताल्लुक़ात थे और हज़रत उमर रज़ि० हज़रत अली रज़ि०

को इस तरह ख़ायाल करते थे कि उनकी अपने अधिकारियों और आम मुसलमानों को यह हिदायत थी कि अली रज़ि० की किसी बात की अनदेखी न की जाए चुनानचे लोग इस हुक्म को इस कद्र पाबन्द थे कि खुद हज़रत उमर रज़ि० के हुकम के मुक़ाबले में भी हज़रत अली रज़ि० ही के हुक्म को वरीयता देते थे और अमीरूल मोमिनीन हज़रत उमर रज़ि० इस पर किसी तरह की नाराज़गी का इज़हान न करते थे।

(२) हज़रत अली रज़ि० हज़रत उमर रज़ि० को पूरी दियानत दारी के साथ मशवरे देते थे और हज़रत उमर रज़ि० उन्हें कुबूल करते थे यही नहीं बल्कि अमीरूल मोमिनीन की ओर से हज़रत अली रज़ि० को इतनी छूट मिली थी कि वह अमीरूल मोमिनीन उमर रज़ि० के हुकम पर अमल रोक कर अपना हुकम लागू करा दें।

(३) हज़रत अली रज़ि० हज़रत उमर रज़ि० को सही और सच्चा ख़लीफ़ा समझते थे तब ही मुक़द्दमे का फ़ैसला करने से पूर्व क़ानूनी तौर पर उनसे आज्ञा मांगते क्योंकि अमीर के आज्ञा के बिना उनके फैसलो को कोई कानूनी हैसियत हासिल नहीं हो सकती थी।

(४) हज़रत उमर रज़ि० इतने बड़े हक परस्त थे कि बावजूद अमीरूल मोमिनीन और हुकमराने आला होने के जब उन पर अपने फ़ैसले की गलती ज़ाहिर हो गई तो बगैर किसी हीला हवाले के इस बात को मान लिया और अपने मुक़ाबले में हज़रत अली रज़ि० के फैसले को न केवल स्वीकार कर लिया बल्कि उनके फ़ैसले के सही होने और अपने फ़ैसले के गलत होने का इज़हार भी इन शब्दों में बड़ी जुर्रात के साथ किया कि इस समय अली रज़ि० न

होते तो उमर हलाक हो जाता।

पाठको! इस मान्यता प्राप्त शिया रिवायत के खुलासे और इससे पैदा होने वाले नतीजों पर नज़र डालने के बाद अब इस रिवायत में छिपे लतीफों पर नज़र डालें और शिया धर्म की खूबी की दाद दें।

(१) सोचिए कि हज़रत अली रज़ि० ने किस तरह महिला के भाइयों से शादी की इजाज़त हासिल की? क्या महिला के भाइयों के दिल में यह ख़याल भी आ सकता था कि हमसे हमारी बहन के निकाह की इजाज़त हासिल की जा रही है? और क्या इस तहर चालाकी के साथ शादी की इजाज़त हासिल करने से जिसमें शादी की बात तक न हो इजाज़त हासिल हो जायेगी और इस तरह इजाज़त प्राप्त करने वाला वकील बन जायेगा और उसका किया हुआ निकाह मुंअक़िद हो जायेगा? हज़रत अली रज़ि० जैसे महान व्यक्ति की शान के लायक़ क्योंकर हो सकता था कि वह इस तरह चालाकी को ज़ाहिर करें? मगर वाह रे शिया धर्म कि एक ओर हज़रत अली रज़ि० की अज़मत के वह बयान तो दूसरी ओर ये बे इज्ज़ती!

(२) हज़रत अली रज़ि० ने महिला की शादी उस लड़के के साथ कर दिया जो महिला को अपनी मां कह रहा था और फिर उसे यह भी हुकम दे दिया कि जाओ उसके साथ संभोग करो और महर की रक़म भी खुद अपने पास से दे दी। क्या यह निकाह ठीक हुआ? और अगर यह कहा जाये कि निकाह करना मक़सूद ही नहीं था बल्कि यह सब कुछ तो महिला से उगलवाने की तदबीर थी तो प्रश्न यह है कि वह लड़का इस बात पर कैसे तैय्यार हो गया कि जिस महिला को वह अपनी मां कह रहा है उसी

को महर का रूपया देकर उससे यह भी कह रहा है कि चलो संभोग के लिए उठो। क्या कोई पुत्र अपनी मां से इस तरह का शब्द कहना या अपनी ख़्वाहिश का इज़हार करना किसी बड़ी मस्लिहत के पेशे नज़र करना भी गवारा करेगा?

इससे तो लड़के ही का झूठा होना ज़ाहिर होता है जबकि हज़रत अली रज़ि० पहले ही अपनी जगह यह फैसला कर चुके थे कि लड़का सच्चा है और महिला झूठी है इसी लिए महिला से सच बात का इकरार कराना चाहते थे।

(३) महिला तो इतनी बड़ी फ़ासिक़ और फ़ाजिर थी ही कि अपने पेट से पैदा बेटे को पहचानने से इंकार कर बैठी, यही नहीं बल्कि अपने कुंवारा होने का एलान किया और इस पर चालीस शहादतें भी लाईं फिर अगर यह महिला अपने फिस्क के कारण और अपने को सच्चा साबित करने के लिए इस निकाह पर राज़ी होकर लड़के की तहरीक पर संभोग के लिए तैय्यार हो जाती तो क्या होता? बेटे तो पहले ही तैय्यार हो चुके थे अगर मां भी तैय्यार हो जाती और मां बेटे के दरमयान यह हराम कारी होती तो इसका ज़िम्मेदार कौन होता? क्या हज़रत अली रज़ि० जिम्मेदार न होते जिन्होंने बड़ी होशियारी के साथ पहले महिला के भाइयों से इजाज़त ली, फिर शादी करके खुद ही मेहर की रकम भी अपने पास से दे दी और फिर लड़के को यह हुकम भी दे दिया कि जाओ अपनी मां से संभोग करो और मुझसे इस हालत में मिलो कि संभोग के बाद नहाने के असर तुम्हारे जिस्म से ज़ाहिर हों?

(४) जब महिला ने उस लड़के के अपने बेटे होने का इंकार किया और इस दावे पर एक दो नहीं बल्कि चालीस गवाह पेश कर दिये कि वह इस समय तक कुंवारी ही है इसके मुकाबले में लड़का खुद ही अपने लिए उस महिला का बेटा होने का दावेदार था और उसके पास कोई शहादत न थी तो क्या कारण है कि हज़रत अली रज़ि० ने महिला की बात पर एतबार न करके लड़के की बात पर एतबार किया और हज़रत उमर रज़ि० के फैसले को नष्ट कर के महिला से इकरार कराने की तदबीरें सोचने लगे? उस लड़के से हज़रत अली रज़ि० की क्या हमदर्दी थी और महिला से क्या दुश्मनी थी? इसके बारे में शिया लोग ही बतायेंगे।

(५) इस रिवायत की रौशनी में महिला ने अपने मां होने को मजबूर होकर मान ही लिया और हज़रत अली रज़ि० ने अपनी सूझ बूझ के द्वारा गलत फैसले को सही से बदल दिया मगर यह बात समझने की है कि क्या यह ज़रूरी है कि महिला ने मां होने की जो बात मानी थी क्या वह बात सही थी यह भी मुमकिन है कि उस लड़के से शादी करने और उसके साथ ज़िन्दगी गुज़ारने से उसको आपत्ति हो और उससे छुटकारे के लिए उसने यह रास्ता अपनाया हो कि उसको अपना बेटा कह दो कि इस मुसीबत से नजात मिल जाये फिर क्या यह मजबूरी का इक़रार मोतबर होगा?

(६) हज़रत उमर रज़ि० ने अभी कोई फैसला कहां किया था कि उनको अपने फैसले पर पछतावा होता और वह यह कहते कि अगर उस अली रज़ि० न होते तो उमर हलाक हो जाता? उन्होंने तो वक्ती तौर पर लड़के को कैद करने और गवाहों के हालात की तहक़ीक़ात करने का हुकम दे

दिया था और यह तैय किया था कि अगर महिला की ओर से पेश किये हुए गवाह ठीक और सच्चे साबित हुए तो उस लड़के को झूठा कह दिया जायेगा और उस पर हद यानी सज़ा जारी होगी यह तो बहुत ही जिम्मेदाराना कार्य था इस पर हज़रत उमर रज़ि० के पछताने का क्या प्रश्न था और कोई फैसला हुआ ही कहां था जिसके गलत होने पर हज़रत उमर रज़ि० को पछतावा होता?

(७) यह लतीफा भी हंसने का है कि एक ओर तो शिया हज़रत अली रज़ि० की माली तंगी का इस तरह चर्चा करते हैं कि उनके पास एक समय के बाद दूसरे समय के खाने पीने की कोई वस्तु न होती थी दूसरी ओर इस रिवायत से पता चलता है कि दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर रज़ि० के शासन काल में हज़रत अली रज़ि० इतने धनी थे कि दूसरे के मामले में ४०० दिरहम की बड़ी रक़म यूंही ख़र्च कर दी जबकि इस मामले से उनका कोई वास्ता भी न था।

(८) जब हज़रत उमर रज़ि० इतने बड़े हक प्रस्त और अल्लाह वाले थे कि अपने फैसले की ग़लती मालूम होते ही झट से इसका इकरार कर रहे हैं और हज़रत अली रज़ि० के साथ अपनी मोहब्बत को ज़ाहिर कर रहे हैं फिर उन्हीं हज़रत उमर रज़ि० के बारे में यह कहना कि उन्होंने हज़रत अली रज़ि० की ख़िलाफ़त छीन ली। हज़रत अली रज़ि० की पत्नी और नबी स० की पुत्री फ़ातिमा ज़हरा रज़ि० पर दर्वाज़ा गिरा दिया कि जिससे हमल गिर गया। हज़रत अली रज़ि० की पुत्री हज़रत उम्मे कुलसुम रज़ि० को ज़बरदस्ती ग़सब करके अपने निकाह में कर लिया वगैरह क्या हक़ीक़त रखता है? और क्या यह एक ओर

हज़रत उमर रज़ि० की हक परस्ती और हक़ीक़त पसन्दी के चर्चे करना और दूसरी ओर उनको नऊज़ुबिल्लाह ग़ासिब और ख़ाइन कहना शिया धर्म के अलावा कोई अन्य धर्म मानेगा?

शिया धर्म में चुटकुले से भर पूर कोई यह एक ही रिवायत नहीं है बल्कि इस प्रकार के चुटकलों ही का नाम शिया धर्म है।

☆☆☆

सात प्रश्न

पाठकगण! इस हक़ीक़त को अच्छी तरह जान चुके हैं कि शिया धर्म की बुनियाद इस्लाम दुश्मनी पर है यही कारण है कि इस धर्म में रिसालते मुहम्मदी को बड़ी होशियारी और चालाकी के साथ मशकूक किया गया है और उसके हर गवाह को मजरूह करके रिसालते मुहम्मदी को अविश्वसनी माना गया है। इसी लिए अगर एक ओर तहरीफ़े कुरआन के अकीदे के द्वारा खुदा के अंतिम कलाम यानी कुरआन को गैर महफूज़ माना गया तो दूसरी ओर सहाबा–ए–किराम के बेदाग किरदार को दागदार बनाने और उन्हें इस्लाम से ख़ारिज करने की कोशिश भी केवल इसी लिए की गई कि अंतिम नबी मुहम्मद स० का महान इंकलाब और उनके इसलाही कारनामे दुनिया के सामने न आ सके। कुरआन मजीद और सहाबा रज़ि० दोनों के ना काबिले इतबार हो जाने का नतीजा इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि रसूल स० की रिसालत ही मशकूक हो जाये और रिसालते मुहम्मदी की हैसियत दावा बिला दलील के हो कर रह जाये।

कुरआन मजीद को ख़ाना साज़ तहरीफ़ के चक्कर में डालने और सहाबा रज़ि० को बे एतबार बनाने के लिए शियों ने जो कार्यवाइयां की है उनकी तफ़सीलात शियों की पवित्र पुस्कतों की रौशनी में और शिया धर्म की इस्लाम दुश्मनी के उदाहरण कुरआन और हदीस की वाज़ह और साफ़ शिक्षा के

संदर्भ में अल–बद्र में समय समय पर प्रस्तुत की जाती रही हैं। आज हम सात अकली प्रश्न पेश कर रहे हैं जिनके उत्तर शिया क़यामत तक न दे सकेंगे और यही उनके धर्म के बातिल और इस्लाम दुश्मन होने की रौशन दलील है। पाठक इन प्रश्नों को अच्छी तरह समझ लें और किसी भी बड़े से बड़े शिया बुद्धिमान गुरू के सामने यह प्रश्न करके उनके हैरत के दरिया में डूबने का नज़्ज़ारा करें।

(१) जिन सहाब किराम रज़ि० को शिया नअूजुबिल्लाह काफ़िर व मुनाफ़िक़ कहते हैं उनके निफ़ाक़ का हाल ख़ुदा के इल्म में था या नहीं? अगर था तो फिर खुदा ने अपने रसूल स० को दूसरे कुफ्फार और मुनाफ़िक़ीन की तरह उनसे भी जिहाद करने और उनसे बरात करने का हुकम क्यों नहीं दिया? बल्कि इसके बरअक्स अपने कलाम मजीद में उनकी तारीफ और प्रशंसा करके खुदा ने अपने रसूल को नअूजुबिल्लाह धोखे में क्यों डाला जबकि रसूल की बेसत मखलूक की हिदायत ही के लिए हुई थी? और अगर नअूजुबिल्लाह खुदा को उनके निफाक का ज्ञान नहीं था तो ऐसी सूरत में यह बात बिल्कुल साफ़ और ज़ाहिर है कि खुदा आलिमुल ग़ैब न था जब कि तमाम मुसलामन यहां तक कि शिया भी इसका अकीदा रखते हैं कि खुदा आलिमुल ग़ैब है और उसके ज्ञान से कोई चीज़ छिपी नहीं है।

(२) अल्लाह ने अपने रसूल स० को उनके कुफ़्र और निफ़ाक़ का हाल बताया था या नहीं जिनके कुफ्र और निफ़ाक़ का शिया अक़ीदा रखते हैं? अगर अल्लाह ने अपने रसून स० को बता दिया था तो फिर रसूल स० ने उनके साथ मोमनीन कामिलीन वाला मामला करके उनके कुफ़्र और निफ़ाक़ पर हमेश पर्दा क्यों डाले रख जिसके कारण आपकी उम्मत को

उनके ईमान और इख़लास का यकीन करना पड़ा? क्या यह नबूवत के ओहदे के विरूद्ध नहीं है कि नबी के कार्य के कारण उम्मत नऊज़ुबिल्लाह गुमराही में मुतबला हो? और अगर अल्लाह ही ने अपने रसूल को उन व्यक्तियों के निफ़ाक़ और कुफ़्र का हाल नहीं बताया और उन लोगों के दिली हालात की इत्तेला नहीं दी तो क्यों? रसूल के लिए तो यह बात बहुत ही ज़रूरी है कि उसको दीन व धर्म की तमाम ज़रूरियात का ज्ञान हो, ताकि वह मंसबे रिसालत और नबूवत के कार्य को मुकम्मल तरीक़े से अंजाम दे सके। फिर क्या ऐसी सूरत में रसूल के मंसबे रिसालत में बड़ा नहीं होता?

(३) अगर यह कहा जाये कि ख़ुदा को भी उनके निफ़ाक़ का ज्ञान था और ख़ुदा ने अपने रसूल स० को भी बता दिया था मगर रसूल स० ने किसी कारण उम्मत के सामने साफ साफ़ इसको नहीं बताया और न ही ब्यान किया तो यह कहना भी बहुत ही बेकार और लचर बात होगी। क्योंकि मसलेहत या तो उन लोगों की रिआयत और मुरव्वत में हो सकती है या उनके डर के कारण। और इन दोनों मेंसे किसी भी मस्लिहत के कारण रसूल हक को कभी नहीं छिपा सकता। क्योंकि अल्लाह ने अपने रसूल को हर तरह की बुराई से बचाने का वादा किया था फिर किसी भी तरह की बुराई के डर से रसूल ने हक और सही बात को छिपाया तो क्या यह रिसालत और नबुव्वत के कार्य से भागना और ख़ुदा के वादे पर यकीन न करने वाला जुर्म न होगा? तो फिर क्या रसूल ने अपने सहाबा के अन्दरूनी हालात को न बयान करके नबमवत के कार्य से नऊज़ुबिल्लाह ग़फ़लत बरती? और अगर उन व्यक्तियों के निफाक़ का हाल न बयान करने की कोई और मस्लिहत हो सकती है तो वह क्या है?

(४) कुरआन मजीद जो पैगम्बरे इस्लाम स० पर उतरा था वह बगैर किसी कमी और ज़्यादती और तहरीफ़ के इस समय हमारे पास मौजूद है या नहीं? अगर मौजूदा कुरआन उसी तरह है जो नबी स० पा उतरा था तो फिर शियों के इस अक़ीदे का क्या मतलब है कि कलामुल्लाह उसी तरह अइम्मा मासूमीन के अलावा किसी और के पास नहीं रहा और अब १२वीं इमाम गायब के पास है और जब वह ज़ाहिर होंगे तो अपने साथ लेकर आयेंगे? और अगर मौजूदा कुरआन वहीं कुरआन नहीं है जो नबी स० पर उतरा था तो फिर हुजूर स० की रिसालत से आपकी उम्मत को क्या फ़ायदा पहुंचा? और इस्लाम आसमानी धर्म कैसे हो सकता है और कौन इसको मानेगा?

(५) कुरआन मजीद के सिलसिले में शिया भी यह कहते हैं कि यह सहाबा किराम रज़ि० ख़ासकर तीनों ख़लीफ़ा रज़ि० का जमा किया हुआ है जिनके बारे में शियों का यह अक़ीदा है कि वह नऊज़ुबिल्लाह धर्म के दुश्मन और मुनाफ़िक़ थे फिर दुश्मनों के जमा किये हुए कुरआन पर यकीन क्योंकर किया जस सकता है और हक और बातिल का फ़ैसला मौजूदा कुरआन के द्वारा कैसे किया जा सकता है जबकि इसके जमा करने वाले ही यकीन करने के लायक नहीं रहे?

(६) कुरआन मजीद के जमा करने वाले की हैसियत से सहाबा रज़ि० ने कुरआन मजीद में तहरीफ़ और तबदीली और कमी, ज़्यादती की या नहीं? अगर नहीं की और ठीक वहीं कुरआन जमा करके उम्मत के सामने पेश कर दिया जो रसूल स० पर उतरा था तो यह चीज़ उनके मुकम्मल ईमान और ईमानदारी की दलील है जिसका शिया इंकार करते हैं। इसी कारण उनका अक़ीदा है कि कुरआन के जमा करने वालों ने कुरआन में तब्दीली की है।

अगर इस बात को मान भी लिया जाये कि सहाबा रज़ि० ने कुरआन में तब्दीली कर दी और अपनी मज़म्मत और अहले बैते रसूल की मंकबत की आयात निकाल दीं तो फिर शियों का कुरआनी आयात ही से अहले बैत की मंकबत और सहाबा रज़ि० की मज़म्मत पर दलील क़ायम करना क्योंकर ठीक हो सकता है? एक बहुत बड़ी जमाअत के अपनी मज़म्मत और अहले बैत की मंकबत की आयात को कुरआन से निकाल देने पर तुले हुए होने और अपने मक़्सद में सफल होने के बावजूद भी ऐसी आयतें क्यों मिल जाती हैं जिनको शिया अपने लिए दलील के तौर पर पेश करने की हिम्मत करते हैं? क्या यह सूरते हाल इस बात के लिए काफ़ी सुबूत नहीं है कि मौजूदा कुरआन मुक्कल तौर पर मौजूद है और उसी तरह है जिस तरह नबी करीम स० पर उतरा था?

(७) ख़लीफ़ा–ए–रसूल हज़रत सिद्दीक़ अकबर रज़ि० ने हज़रत फ़ातिमा ज़हरा रज़ि० के बागे फिदक मांगने पर जो उत्तर दिया था कि ''नबियों के माल में मीरास नहीं जारी होती'' और फिर बागे फिदक स० फातिमा ज़हरा रज़ि० को न देकर क़ौमी मिलकियत क़रार दे दिया था। और इसी फैसले के मुताबिक़ स० उमर फ़ारूक़ रज़ि० और स० उस्मान गनी रज़ि० ने भी उसी पर अमल दरामद किया था। इस उत्तर और फैसले से स० फ़ातिमा ज़हरा रज़ि० और स० अली रज़ि० और उनके परिवार के दूसरे लोग मुतमइन हो गये थे या नहीं? अगर मुतमइन हो गये थे तो तीनों ख़लीफ़ा (हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़, हज़रत उमर फ़ारूक़, हज़रत उस्मान ग़नी रज़ियाल्लाहु अंहुम) को फिदक के बाग का छीनने वाला कह कर अपने छिपे हुए बुग्ज़ का इज़हार करना कहां का इंसाफ़ है? और अगर यह लोग मुतमइन नहीं हुए थे और तीनों ख़लीफ़ा

की ताक़त और हकूमत के कारण चुप्पी साध कर अपने ऊपर जुल्म को कुबूल कर लिया था तो तीनो ख़लीफ़ाओं के बाद जब ख़िलाफ़त और हकूमत खुद स० अली रज़ि० के हाथों आ गयी तो उन्होंने फिदक के बाग के वारिस होने की हैसियत से उसको अपने और स० फातिमा ज़हरा रज़ि० की औलाद पर तक़्सीम क्यों न कर लिया और तीनों खलीफा ही की तरह उसे कौमी मिलकियत में क्यों बाकी रखा? अगर यह कहा जाये कि सै० अली रज़ि० की सखावत ने उसको गवारा नहीं किया कि जो चीज़ जबरन ही सही उनसे छीन कर आम मुसलमानों की मिलकियत में चली गई उसे फिर वापस लेते तो क्या शिया यह साबित कर सकेंगे कि हज़रत अली रज़ि० ने अपने शासन काल में सै० फातिमा ज़हरा रज़ि० के दूसरे वारिसों को जमा करने और उनसे मश्वरा लेने के बाद यह फ़ैसला फरमाया था कि बागे फिदक अगरचे हमारी मिलकियत है मगर अब उसे हम वापस नहीं लेंगे? और अगर शिया यह साबित नहीं कर सकते और उसे अकेला हज़रत अली रज़ि० ही का फैसला करार देते हैं तो तंहा हज़रत अली रज़ि० को इस फैसले का किया हक था जबकि वह इस्लाम के विरासत के कानून के लेहाज़ से सै० फातिमा ज़हरा रज़ि० की मीरास में केवल ४ आने के हिस्सेदार थे?

ख़ुमैनियात

यानी

ईरानी इंक़िलाब हुकूमत के बानी, और इस दौर के इसना अशरी शियों की सबसे अहम और मुस्तनद शख्सियत ''आयतुल्लह इमाम ख़ुमैनी'' की दावते इत्तेहाद की हक़ीक़त और उनके इंहिराफ़ात व अक़ाएद का खुद उनके अपने क़लम से बयान .... और इस पर माक़ूल व मुदल्लल टिप्पणी

हरम की दास्ताने अलम
मंज़र और पस मंज़र

३१ जूलाई १९८७ ई० को जुमा के दिन हरम की हुदूद में और मस्जिदुल हराम के पड़ोस में ईरानी आंदोनकार और शिद्दत पसन्दों के द्वारा जो अफसोसनाक वाक़िया ज़ाहिर हुआ और सारी दुनिया से आये हुए २२ लाख से अधिक हाजियों को दारूल अम्न में जिस तकलीफ़ का सामना करना पड़ा उसकी तफ़सीलात सऊदी हुकूमत के द्वारा इस हादसे के तैय्यार कराये गये वेडियो केसेट और अन्य दूसरे मीडिया के द्वारा विश्व के सामने आ चुकी हैं और ईरान को अपने यहूदी मीडिया प्रोपेगंडे में नाकामी का सामना करना पड़ा है।

ईरानी ज़ाइरीन के इस आंदोलन में मरने वालों के सिलसिले में अस्ल प्रश्न यह नहीं है कि वह भगदड़ में कुचल कर मरे या सऊदी पुलिस की फ़ायरिंग से मरे? बल्कि असल प्रश्न यह है कि इस हलाकत और अम्न को बिगाड़ने का ज़िम्मेदार कौन है।

ईरान की इंकलाबी हकूमत के लीडर आयतुल्लाह खुमैनी पूरे इस्लामी दुनिया को ललकार रहे हैं और उनका यह निशाना है कि हरमेन शरीफेन को सऊदी अरबिया की हमूमत से निकल लें दूसरी ओर वह सबसे ''बड़े शैतान'' अमेरिका, बर्तानिया और फ्रांस और दूसरी यूरपी ताकतों के मुकाबले में भी खम ठोंक रहे

हैं। महा शैतान रूस और उसके ममदगारों को भी वह अहमियत नहीं दे रहे हैं। रह गया इस्राईल तो उसका वह अपने को दुश्मन नं० १ बताते हैं और उसको नष्ट करना अपना सर्व प्रथम कर्तव्य बताते हैं।

विश्व की सियासत पर नज़र डालिए और फिर सोचये कि ईरान के अलावा क्या कोई दूसरा देश भी है जो इस तरह की चोकड़ी लड़ने का दावा कर सके? फिर क्या ईरान वास्तविक रूप से इतना ताक़तवर है कि अमेरिका और रूस से लेकर इस्राईल तक सब उसके सामने बेबस हैं? जहां तक इस प्रश्न का उत्तर है तो इसकी हकीकत इससे ज़ाहिर है कि सात वर्ष से अधिक समय से कोशिश करने के बा वजूद ईरान इराक की सत्ता का तख्ता पलट नहीं सका और इराक़ी राष्ट्रीपति सद्दाम हुसैन को बर्खास्त करके मुकम्मल फ़तह हासिल करने की ईरानी ख्वाब आसमान के तारे तोड़ने जैसी बचकाना ज़िद से आगे न बढ़ सका जबकि दुनिया जानती है कि इराक ईरान की तुलना में हर तरह से कमजूर और छोटा देश है फिर असल हक़ीक़त क्या है, और ईरान के यह महाल लीडर क्या चाहते हैं?

इस बुनियादी प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए यहूदी साजिशी ज़हनियत और इस्लाम दुश्मनी पर निगाह रखना ज़रूरी है।

यह एक ना क़ाबिले इंकार हकीकत है कि सारी दुनिया में मुसलमानों और इस्लाम के वजूद के पहले दिन से सबसे बड़े दुश्मन यहूदी रहे हैं और कुरआनी फैसले के मुताबिक यहूद की यह दुश्मनी कभी खत्म न होने वाली है इस्लामी तारीख़ इस बात की गवाह है कि यहूद ने हमेशा खुल कर मैदान में आने के मुक़ाबले में छुप कर हमला करने और चोर दर्वाज़ों से प्रवेश

करने को ज़्यादा पसन्द किया है क्योंकि यह रास्ता जहां एक ओर महफ़ूज़ होता है तो दूसरी ओर उसमें कामयाबी के इमकानात भी ज़्यादा होते हैं।

पहले दौर में जबकि मुसलमान इस्लाम के मामले में बहुत ज़्यादा बेदार और सीसा पिलाई दीवार की तरह थे। अबू जह्ल, अबू लहब, मुसेलमा कज़्ज़ाब, और असवदे अंसी को शिकस्त हुई मगर अब्दुल्लाह बिन उबेय, मालिके अशतर और इब्ने सबा को बहुत ज़्यादा कामयाबी मिल गई। क्योंकि यह ऐसे ''मुसलमान'' थे जिनके सरों पर यहूदियों का ''खुफ़िया हाथ'' था।

इस पस मंज़र में ईरान के इस्लामी इंकलाब पर निगाह डालिये जहां पहले ही दिन से यह फैसला हो चुका कि ईरान की हुकूमत तो इस्लामी होगी मगर इस्लामी अहकाम की पाबन्दी न होगी। गोया लेबिल इस्लामी होगा और अन्दर माल .... ?

कल जब हम ईरान की कठ पुतली हकूमत को यहूदी नज़ाद कहते थे तो न जाने कितनी पेशानियों पर बल पड़ जाया करते थे? मगर आज ...... ? जब कि यह हक़ीक़त बिल्कुल साफ़ है कि ईरान के हाकिमों ने ''महान शैतान अमेरिका'' के हथियार अपने ''दुश्मन नं० १ इस्राईल'' की बिचवाई से हासिल किये है तो क्या ईरान की मौजूदा हुकूमत के सिलसिले में यहूदियों के ऐजन्ट होने में किसी शक और शुबे की गुंजाइश बाकी रह गई है?

अमेरिका हथियारों का सौदागर है उसने अगर ईरान के हाथ भी हथियार बेचे हैं तों कोई हैरत की बात नहीं है। रह गया ''महान शैतान'' का मामला तो कभी कभी मुंह का मज़ा बदलने के लिए दोस्तों से भी अबे तबे कर ली जाती है लेकिन यह इस्राईल की बचवाई क्यों और कैसे?

इस्राईल एक ''इस्लामी हुकूमत'' को जो उसकी दुश्मन

नं० १ भी हो, अपने आक़ा अमेरिका से हथियार दिलवाये यानी अपने हाथों से अपने पैरों पर कुलहाड़ी मारे क्या इसका गुमान करना मुमकिन है?

आइये अब आंखे खोल कर इस सच्चाई को मान लीजिये कि ईरान की ''इस्लामी हुकूमत'' यहूद का वह खेल है जिसके मोहरे बदल गये हैं अब बाग डोर अब्दुल्लाह बिन सबा के बजाये इमामे अकबर आयतुल्लाह रूहुल्लाह खुमैनी के हाथों में है यानी मुल्क खुदा का ज़मीन अवाम की और हुक्म? हुकम इस्राईल बहादुर का!

इस हक़ीक़त को समझ लेने के पश्चात ईरान के तमाम दावे और कत्ले आम की कारवाईयां और हरमैन शरीफ़ैन के तक़द्दुस को पामाल या नष्ट करने की कोशिशें सब बिल्कुल फितरी मालूम होती हैं।

आज से २० वर्ष पहले १९६७ ई० में इस्राईल ने हरमेन पर कब्ज़ा करने के जिस मंसूबे का एलान किया थ उसकी आवाज़ २० वर्ष बाद १९८७ ई० में इस्राईल के भोंपू ईरान से सुनी जा रही है।इस्राईल किब्ला अव्वल मस्जिदे अक़सा की हुरमत को नष्ट कर रहा है तो ईरान हरमे इलाही की हुरमत पर कारी जख्म लगा रहा है।

इस्राईल अपने सधाये हुए प्रदर्शन कारियों के द्वारा मस्जिदे अकसा में आग लगवाता है तो ईरान अपने सधाये हुए प्रदर्शन कारियों के द्वारा दारूल अमान को दारूल जिदाल में बदलने की कोशिश कर रहा है।

इस्राईल मस्जिदे अक़सा को शहीद करके उसकी जगह हेकले सुलेमानी बनवाना चाहता है और ईरान .... ?

ईरान कहता है कि प्रदर्शन की अनुमति सऊदी हकूमत से पहले ले ली गई थी तो फिर हज से बहुत पहले सऊदी हकूमत की तरफ से हर किस्म के प्रदर्शन पर रोक किसके लिए लगाई थी? क्या ईरानी ज़ाइरीन के अलावा और भी कोई प्रदर्शन करता रहा है?

इरान कहता है कि प्रदर्शनकारियों पर एक समूदाय की जानिब से गोलियां चलाई गईं तो फिर ईरान के अलावा दूसरे अन्य देशों के हाजियों और ख़ुद सऊदी के नागरिकों की शहादत क्यों कर हुई?

ईरान कहता है कि उसके प्रदर्शन कारी अम्न में किसी तरह ख़लल नहीं डाल रहे थे तो फिर एहराम में मलबूस उन सैंकड़ो हाजियों को जो मिना जाने की तैय्यारी कर रहे थे किसके अमल के रद्दे अमल में शहादत हुई?

ईरान कहता है कि इसका प्रदर्शन महा शैतान अमेरिका के विरूद्ध था तो फिर इसके लिए अमेरिका के बजाय हज के पवित्र दिवस और हुदूदे हरम का इंतेखाब क्यों किया गया? क्या अमेरिका को हरम का तकद्दुस नष्ट होने पर कुछ दुःख हो सकता है?

ईरान कहता है कि यह प्रदर्शन सऊदी हुकमरानों पर उनकी अमेरिका नवाज़ पालीसी छुड़ाने की ख़ातिर दबाव डालने के लिए था तो फिर यह प्रदर्शन विश्व भर से आये हुए तमाम मुसलमानों के सामने क्यों हुआ? सऊदी हुकूमत के जिम्मेदारों के सामने क्यों नहीं, और हरम मक्की के बजाय राजधानी रियाज़ में क्यों नहीं?

ईरानी ज़ाइरीन हज वीज़े पर हज के लिए भेजे गये थे या प्रदर्शन करके माहौल बिगाड़ने के लिए? हरम की व पृथ्वी जहां की घास फूस तौड़ना मना है जहां शिकार खेलने पर

पाबन्दी है और इहराम की वह हालत जिसमें जुवें तक मारना पाप है। इसी हरम में और इहराम की हालत में क्या किसी हाजी के लिए लब्बैक अल्लाहुम्म लब्बैक की आवाज़ बुलन्द करने के स्थान पर हंगामा करने और ख़ुमैनी की बड़ाई के गीत गाने की इजाज़त हो सकती है?

ईरान फिर भी बड़े ढहटाई के साथ यही कह रहा है कि उसके प्रदर्शन कारियों ने कोई गैर इस्लामी कार्य नहीं किया इसी से समझ लीजिए कि कैसी है यह ईरानी शरीअत और कौनसा है ईरानी इस्लाम?

ईरान की मांग है कि हरमैन शरीफ़ैन को मौजूदा जिम्मेदारों से निकाल कर विश्व के तमाम देशों के जिम्मेदारें को दे दिया जाये यानी हरमैन शरीफैन के मौजूदा खुद्दाम अपने इस सबसे बड़े ऐजाज़ को ईरान के हवाले कर दें। जिसे वह बादशाही से बढ़ कर समझते हैं। इसी लिए सऊदी अरब के मौजूदा बादशाह फ़हद बिन अब्दुल अज़ीज़ इस बात का ऐलान कर चुके हैं कि उनको शाह फ़हद के बजाये खादिमुल हरमैन फहद कहा जाये।

ईरान इस एजाज़ को सऊदी सम्राटों से छीन लेना चाहते हैं ताकि विश्व के तमाम मुसलमानों को अपने अपने मस्लक के मुताबिक़ हरमैन शरीफैन में इबादत की आज़ादी मिल सके और एक इमाम की इक्तिदा में नमाज़ें अदा करने और एक अमीर की इमारत में हज अदा करने की पाबन्दी न रहे।

दुनिया जानती है कि इस्लाम की इजतेमाई इबादत का हसीन मंज़र इस्लाम के दुश्मनों के दिलों में कांटे की तरह चुभता रहा है दुनिया के तमाम धर्मों के मुक़ाबले में इस्लाम ही वह धर्म है जिसने इजतेमाई इबादत का तसव्वुर दिया है और

इस खूबसूरत मंज़र के तुफ़ैल में न जाने कितने खुदा के बन्दों को हिदायत मिली है उदाहरण के तौर पर प्रसिद्ध फरानसीसी नौ मुस्लिम मुहम्मद असद (ल्यू पोटडवेस) ने नमाज़ बा जमाअत के प्रभावशाली दृष्य से प्रभावित होकर इस्लाम कबूल करने का ज़िक्र विस्तार के साथ अपनी पुस्तक रोड टू मक्का में किया है।

दुनिया की सबसे बड़ी नमाज़ बा जमाअत मस्जिदुल हराम के इमाम की इक्तिदा ही में अदा की जाती है। जहां एक समय में लाखों मुसलमान एक ही इमाम के इशारे पर अपने हक़ीक़ी खुदा के सामने सजदा करते हैं।

यह वह मंज़र है जिसे देखकर अगर एक ओर मुसलमानों के दिलों में गर्मी पैदा होती है तो दूसरी ओर इस्लाम दुश्मनों के सीनों पर सांप लोट जाते हैं।

ईरान चाहता है कि किसी तरह दुनिया की इस सबसे बड़ी इजतेमाई इबादत को टुकड़े टुकड़े कर दिया जाये और इख़्तिलाफ़े मसलक के नाम पर मुसलमानों को इस तरह बांट दिया जाये कि वह हरमे इलाही में पहुंच कर भी अलग अलग समय में अलग अलग इमामों की इक़्तिदा में नमाज़ें पढ़ें और हज का यह आलमगीर इजतेमा भी मुसलमानों के बिखराव की जीती जागती तस्वीर बन कर रह जाये।

बड़े मज़े की बात यह है कि धर्म की आज़ादी का यह एलान उन ईरानी हाकिमों की तरफ़ से किया जा रहा है जिन्होंने अपने देश ईरान के सुन्नी मुसलमानों की धर्म की आज़ादी को छीन रखा है यहां तक कि कुर्दिस्तान राज्य के अलावा पूरे देश ईरान में एक मस्जिद भी ऐसी नहीं है जहां का इमाम सुन्नी हो और सुन्नियों को अपने धर्म के मुताबिक नमाज़ पढ़ने की इजाज़त हो।

अपने देश के सुन्नी मुसलमानों से यह दुश्मनी और हरमैन

शरीफ़ैन को इख़्तिलाफ़े मसलक के नाम पर बैनुल अक़वामी इंतेज़ाम में देने की मांग यहूदियों का सहयोगी ईरान ही कर सकता है।

ईरान की इस शर्मनाक दुश्मनी की जिसके कारण हरमे इलाही के तक़द्दुस पर चोट लगी। और विश्व के कोने कोने से जमा हुए हाजिों को ज़ेहनी और जिस्मानी तकलीफ़ों का सामना करना पड़ा। ईरान के हममज़हब कुछ जोशीले हामियों के अलावा पूरी इंसानी बिरादरी ने मज़म्मत की है।

हज जैसी अच्छी इबादत को नष्ट करने की इस ईरानी साज़िश और यहूदी काज़ को ताक़त पहुंचाने की इस बेहूदा हिम्मत की न केवल विश्व के मुसलमानों बल्कि इंसाफ पसन्द गैर मुस्लिमों यहां तक कि ईरानी हाकिमों के धर्म ही को मानने वाले पाकिस्तानी शियों ने इसे इंतहाई हिक़ारत की नज़र से देखा है। और सऊदी हुकूमत से इस बात की मांग की गई है कि वह ईरान की बढ़ती हुई शोरापुश्ती पर लगाम लगाने के लिए आइंदा ऐसा कार्य और बन्दोबस्त करे कि ईरान और उसके सहयोगी यहूदियों को कभी इस तरह करने की हिम्मत न हो सके।

यह सच और सही है कि हरमैन शरीफ़ैन पर किसी की इजारा दारी नहीं कायम हो सकती और सारी दुनिया के मुसलमानों का इन बा बरकत स्थानों से जज़बाती ताल्लुक़ है इस लिए हरमैन शरीफ़ैन के द्वार किसी भी कलिमा पढ़ने वाले के लिए बन्द नहीं किये जा सकते मगर इसी के साथ साथ सऊदी हुकूमत और हरमैन शरीफ़ैन के मुतवल्लियों की यह भी ज़िम्मेदारी है कि वह विश्व के मुसलमानों के इन दोनो रूहानी स्थलों की हिफ़ाज़त को अपना अव्वलीन फ़रीज़ा समझें और हरमैन शरीफ़ैन के तक़द्दुस को नष्ट करने की हर साज़िश को

नाकाम बनाने बल्कि साज़िश की जड़ों को काटने में अपनी जान की बाज़ी भी लगा दें।

अब जबकि ईरानी मंसूबा और उसको अंजाम देने की कोशिशें सामने आ चुकी हैं तो भविष्य में हरमैन के खादिमों को ऐसा मंसूबा बनाना होगा जिसके द्वारा ईरानी बलवाइयों की हौसला शिकनी हो और वह यह भी यकीन करने पर मजबूर हों कि उनका हरमैन शरीफ़ैन को फ़तह करने का ख़्वाब इंशाअल्लाह कभी मुकम्मल न होगा। हरमेन के ख़िदमत गुज़ारों का खुदा हामी है और विश्व के मुसलमानों की हमदर्दियां उनके साथ हैं।

ख़ुमैनी और रूशदी

आवाज़ दो इंसाफ को इंसाफ कहां है?

एक बहुत पुरानी कहावत है कि किसी व्यक्ति से कहा गया कि कव्वा तुम्हारा कान ले गया और वह इतना सुनते ही कव्वे के पीछे दौड़ लिया, जब कव्वा हाथ न लगा तो वह हार पछता कर अपने कान का गम मनाने लगा। किसी बुद्धिमान मनुष्य ने उसे कान का सोग मनाते देख कर टोका ''अरे भाई! हाथ रख कर तो देखो तो सही तुम्हारे तो दोनों कान मौजूद हैं'' और फिर उसने हाथ रख कर देखा तो उसे अपने कान के जाने का गम नहीं रहा। और अब उसे बेवक़ूफ़ी के हम मानी समझ कर कहा जाता है कि कव्वा कान ले गया खबर पाने के बाद कव्वे के पीछे दौड़ने से पूर्व अपना कान नहीं देखा'' कहा तो यही जाता है मगर अजीब इत्तफ़ाक़ है कि इस ज़माने के मुस्लिम लीडरान इसी तरह ''कव्वा कान ले गया'' की ख़बरें सुनाया करते हैं और मुस्लिम अवाम कव्वे के पीछे दौड़ा करते हैं। समझ में नहीं आता कि ग़लत किसे समझा जाये। जान बूझ कर झूठी ख़बर देने वाले मुस्लिम नेताओं को या कान देखने के बजाय कव्वे के पीछे दौड़ने वाले मुस्लिम अवाम को।

एक इण्डियन ब्रिटिश नागरिक सलमान रूशदी ने शैतानी आयात नामक एक बेहूदा नाविल लिखा जिसमें इस्लाम, पैग़म्बरे इस्लाम स० और इस्लामी धर्म गुरूओं के बारे में ग़लत ग़लत

बातें लिखीं उपन्नयास के प्रकाशित होने पर ही बर्तानिया के मुसलमानों ने इस पर धरना प्रदर्शन किया और फिर उसकी ख़बर जैसे जैसे दुनिया के और देशों में पहुंचती गयी मुसलमानों की ओर से धरना प्रदर्शन का सिलसिला बढ़ता ही गया। हिन्दुस्तानी मुसलानों ने भी इस नाविल के प्रकाशित होने पर धरना प्रदर्शन करते हुए हुकूमत से मांग की कि इस पुस्तक पर बान्दी लगाई जाये। ख़ुदा का शुक्र है कि हमारी हुकूमत से हालात की संगीनी को और मुसलमानों के जज़बात का ख़याल करते हुए बिल्कुल शुरू ही में इस पुस्तक पर पाबन्दी लगा दी।

हिन्दुस्तानियों की मांग पूरी हो गयी इस लिए उनका गम व गुस्सा भी थम गया अगर कुछ विद्रोही और तकलीफ़ देने वाले किस्म के व्यक्तियों ने इस पुस्तक पर पाबन्दी लगाने की वजह से भारतीय हुकूमत को लताड़ा तो मुससमानों के अलावा अन्य दूसरे कुछ अहम गैर मुस्लिम दानिशवरों और धर्म गुरूओं ने हुकूमत के इस कदम की भरपूर हिमायत करते हुए उसे सही और क़ानूनी कहा।

बरतानिया में यह नाविल १६८८ में प्रकाशित हुई और फिर धरना प्रदर्शन से गुज़र कर हिन्दुस्तान के अलावा दुनिया के बहुत से देशों में इस पुस्तक के प्रकाशित होने पर पाबन्दी लगने का कार्य १६८८ के आखिर से पहले ही मुकम्मल हो गया।

अब विश्व के मुसलमानों का केवल यह मतालबा था कि बरतानवी हकूमत इस तकलीफ़ देने वाली किताब के लेखक और उसके प्रकाशक को इस पर दण्ड दे और बरतानवी कानून में मुनासिब तबदीली करके इस बात की गारन्टी दे कि बर्तानिया में जिस तरह ईसाइयों को मुकम्मल मज़हबी आज़ादी हासिल है उसी तरह मुसलमानों को भी उनके धर्मानुसार हर प्रकार की हिफ़ाज़त हासिल हो ताकि भविष्य में कोई सलमान रूशदी पैदा

न हो।

फरवरी १६८६ ई० के दरमयान में इस प्रदर्शन ने एक नया मोड़ उस समय लिया जब ईरानी पेशवा आयतुल्लाह ख़ुमैनी ने यह फ़तवा जारी किया कि सलमान रूश्दी मुरतद है और इस्लामी नियामानुसर उसका क़त्ल वाजिब है इस लिए वह जहां मिले उसे मार दिया जाय यहीं नहीं बल्कि ख़ुमैनी के इस फतवे की ताईद में ईरानी हुकूमत की तरफ़ से सलमान रूशदी के सर पर भारी इंआम का एलान भी कर दिया गया।

आयतुल्लाह ख़ुमैनी का यह फतवा मुसलमानों के मौजूदा आम जज़्बाती मिज़ाज के बिल्कुल मुताबिक़ था इस लिए हर ओर से इसकी ताईद शुरू हो गई और मुरतद और उसकी सज़ा के इस्लामी क़ानून की आख्या किये बिना सलमान रूशदी के क़त्ल की तैयारिया शुरू हो गईं।

ख़ुमैनी के इस फ़तवे के पीछे कौन सी ज़हनियत काम कर रही है और ख़ुमैनी को इस तरह का फ़तवा जारी करने का हक़ है या नहीं? इस पर हम बाद में बात करेंगे पहले तो इस फ़तवे का जायज़ा लेना ज़रूरी है।

सलमान रूशदी पैग़म्बरे इस्लाम की तौहीन का जुर्म करने के कारण मुरतद हो गया। मुरतद होने के कारण वह वाजिबुल क़त्ल है यह भी तस्लीम! लेकिन दो बातें सोचने की है।

पहला यह कि इस्लाम ने मुरतद की यही सज़ा रखी है कि उसकी ओर से यह बात ज़ाहिर होते ही यह हुकम है कि मुरतद जहां कहीं मिले उसे पकड़ कर क़त्ल कर दो या इस लिससिले में कोई क़ानून और ज़ाबता मुक़र्रर किया है?

दूसरा यह कि बर्तानिया के रहने वाले को सज़ा देने का हक बर्तानिया हुकूमत का है या ईरान को? इस्लाम ने किसी दूसरे गैर मुल्की व्यक्ति के जुर्म करने पर सज़ा देने के

सिलसिले में किया उसूल बनाया है?

पहले प्रश्न का साफ उत्तर यही है कि किसी मुफ़्ती को अपने फ़तवे के द्वारा या किसी हाकिम को अपने हुकम के द्वारा मुरतद को क़त्ल कराना जंगल राज तो हो सकता है इस्लाम जैसे सभ्य धर्म का यह क़ानून और नियम नहीं हो सकता।

इस सिलसिले में इस्लामी क़ानून यह है कि मुरतद की ओर से इरतिदाद ज़ाहिर होने के बाद उसे गिरफ़्तार कर लिया जायेगा फिर उसके शक को दूर करके उसे इस्लाम की ओर लाये जाने का प्रयन्त किया जायेगा और उसे सोच विचार करके तौबा करने और दोबारा इस्लाम कुबूल करने के लिए समय दिया जायेगा। इस दौरान अगर उसने तौबा करके माफ़ी मांग ली और दोबारा इस्लाम कुबूल करते हुए अपने इरतेदाद पर शर्मिन्दा हुआ तो उसे माफ़ करके इस्लामी बिरादरी में शामिल कर लिया जायेगा। और अगर वह अपने इरतेदाद पर कायम रहा और शर्मिन्दगी ज़ाहिर किये बिना अपने कुफ्र पर अड़ा रहा तो उसे कत्ल कर दिया जायेगा।

इस तफ्सील की रौशनी में यह बात अहम है कि क्या सलमान रूशदी के क़त्ल का हुकम इस्लामी कानून की पूरी रिआयत के साथ दिया गया है? क्या उसे गिरफ्तार करके तौबा करने और अपने इरतिदाद पर शर्मिन्दी ज़ाहिर करके दोबारा इस्लाम कुबूल करने का समय दिया गया? अगर नहीं और यकीनन नहीं तो फिर खुमैनी या किसी दूसरे व्यक्ति को इस्लाम का नाम लेकर इस्लामी कानून का मज़ाक उड़ाने और अपनी दहशतगर्दियों को इस्लामी लिबास उढ़ाने का हक़ कैसे हासिल हो गया?

हक़ीक़त तो यह है कि न सलमान रूशदी अब तक गिरफ्तार हो सका और न ही उस पर किसी इस्लामी अदालत

में बा ज़ाब्ता मुक़द्दमा दायर किया गया और न ही किसी इस्लामी जज या क़ाज़ी ने इस्लामी क़ानून के मुताबिक उसके मुकद्दमे की सुनवाई करके सज़ा का एलान किया हो बल्कि उसके लिए तौबा के दरवाज़े भी यह कह कर बन्द कर दिये गये हैं कि अगर वह माफी मांगेगा तो भी उसे माफ नहीं किया जायेगा। गोया मक्सद विश्व के मुसलमानों के जज़बात से खेल कर उनसे दाद वसूल करना है।

दूसरे प्रश्न का बिल्कुल सही और इस्लामी उत्तर यह है कि इस्लामी हाकिम को इस्लामी सज़ा के नाफिज़ करने का हक अपने देश के अन्दर ही है किसी बरतानवी को वहां की हुकूमत या अदालत में जाये बगैर मुल्की या गैर मुल्की व्यक्तियों के द्वारा कत्ल कराने का यह मतलब होगा कि क़ातिलों ने कानून अपने हाथ में ले लिया और ज़ाहिर है कि यह एक ऐसा जुर्म है जिसे कोई दुनियावी क़ानून भी गवारा नहीं कर सकता चे जायेकि इंसानियत की कामयाबी के ज़िम्मेदार वह खुदाई कानून जिसे इस्लाम के पवित्र नाम से याद किया जाता है?

इस सिलसिले में सही और क़ानूनी तरीक़ा यही हो सकता है कि बर्तानवी हुकूमत और अदालत को आगाह और मुतवज्जह करने के साथ साथ आलमी अदालत में सलमान रूशदी पर मुकद्दमा दायर करके उसे सज़ा दिलवाई जाये या फिर अगर वह हक़ीक़त में माफ़ी मांग ले तो इस्लामी कानून के लेहाज़ से उसे माफ़ कर दिया जाय।

यहां तक जो बात हुई वह इस लेहाज़ से कि खुमैनी को इस्लाम का तर्जुमान मान करके अगर उनके फतवे के मुताबिक़ सलमान रूशदी को मुतरद मान लिया जाये तो मुरतद की सज़ा क्या होगी और इस संदर्भ में इस्लामी शिक्षा क्या हैं?

और अब इस पलहू से बात होना भी ज़रूरी है कि खुमैनी

को इस किस्म का फतवा जारी करने का हक है भी या नहीं? और ख़ुमैनी के इस फतवे के पीछे कौन कौन लोग लगे हैं?

तो इस सिलसिले के पहले प्रश्न का बिल्कुल साफ़ उत्तर यह है कि खुमैनी पुरे विश्व में इस्लाम के ठेकेदार नहीं न ही उनको इस तरह के फ़तवे जारी करने का हक है, उनको पहले अपने गरीबान में झांक कर देखना चाहिए कि क्या अंबिया और आख़री नबी स० की तौहीन से उनका दामन पाक है? क्या उन्होंने अपनी पुस्तकों में इस्लाम और पैगम्बरे इस्लाम की शान में गुस्ताखाना हमले नहीं किये? आईये हम आपको दिखाऐं कि खुमैनी के बकवास से नबियों और सहाबियों के पाक दामन किस तरह दागदार हुए हैं।

ख़ुमैनी अपने अक़ीदा–ए–इमामत को अपनी पुस्तक अल हुकूमतुल इस्लामिया में बयान करते हुए अपने इमामों के संदर्भ में लिखत हैं :

لا نتصور فيهم الغفلة او السهو۔ (ص ۹۱)

तर्जुमा : हम अपने इमामों के सिलसिले में किसी गफलत या भूल का तसव्वुर भी नहीं कर सकते।

फिर अपने इमामों के स्थान को बयान करते हुए अपनी उसी पुस्तक में अल विलायतुत तकवीनीया के शीर्षक में लिखते हैं

فإن للإمام مقاماً محموداً و درجة سامية و خلافة تكوينية تخضع لولايتها و سيطرتها جميع ذرات الكون۔ (۵۲)

तर्जुमा : इमाम को ऐसा उच्च पद और ऐसी तकवीनी ख़िलाफ़त प्राप्त होती है कि विश्व का कोना कोना उसके हुकमों का मानने वाला और उस सत्ता के साये में होता है।

यही नहीं कि इमाम को ख़ुदाई इख़्तियारात सोंप दिये गये और उन्हें वह हुकूमत दे दी गई जो इस भूमि पर ख़ुदा ने अपने अलावा किसी को नहीं दी बल्कि इसी सिलसिले में बड़े जोश के साथ खुमैनी ने यह भी लिख दिया कि

ان من ضروريات مذهبنا ان لائمتنا مقاماً لا يبلغه ملك مقرب و لا نبی مرسل۔ (ص ۵۲)

तर्जुमा : हमारे धर्म के ज़रूरी अक़ीदों में से यह है कि हमारे इमामों को वह स्थान हासिल है जिस तक न किसी ख़ास फ़रिश्ते की पहुंच हुई है और न ही किसी भेजे हुए नबी की।

पाठको! खूद ही सोचिये कि ख़ुमैनी अपने इमामों की फ़ज़ीलत बयान करते हुए किस तरह खुदा के ख़ास फ़रिश्तों और नबियों की तौहीन कर रहे हैं कि नऊजुबिल्लाह उनके इमामों को वह स्थान हासिल है जो किसी फ़रिश्ते को हासिल हो सकता और न ही किसी नबी को और इसमें नबियों के इमाम हज़रत मुहम्मद स० भी दाख़िल हो गये।

खुमैनी का यह बयान अपने धर्म के अक़ीदे के बिल्कुल मुताबिक़ है और हकीकत में शिया इमामत को नबूवत से भी बुलन्द और ऊँचा स्थान देते हैं। चुनांचे खुमैनी से बहुत पहले उनके धर्म के एक बहुत बड़े प्रवक्ता मुल्ला बाकर मजलिसी अपनी पुस्तक हयातुल कुलूब में साफ तौर पर लिखते हैं :

امامت بالاتر از رتبۂ پیغمبری است۔ (ج ۳، ص ۱۰)

तर्जुमा : इमामत का स्थान पैगम्बरी के स्थान से भी ऊँचा है।

और खुमैनी के धर्म की सबसे ज़्यादा मोतबर और अहम पुस्तक उसूले काफ़ी में उनके एक इमाम मासूम का अपनी फ़ज़ीलत के सिलसिले में यूं बयान है :

لو كنت بين موسىٰ و الخضر لاخبرتهما انى اعلم منهما و لا نبأتهما ما ليس فى ايديهما لأن موسىٰ و الخضر عليهما السلام اعطيا علم ما كان و لم يعطيا علم ما يكون و ما هو كائن حتىٰ تقوم الساعة و قد ورثناه من رسول الله صلى الله عليه وآله وسلم وراثة۔ (ص ١٦٠)

तर्जुमा : अगर मैं मूसा और खिज़िर के सामने होता तो उनको ख़बर देता कि मैं उन दोंनों से ज़्यादा ज्ञान रखता हूं और उन दोनों को वह बताता जो उन दोंनों के पास नहीं है। इस लिए कि मूसा और खिज़िर अ० को केवल हो चुकी बातों का ज्ञान दिया गया था, जो कुछ होना है और कयामत तक जो कुछ होने वाला है उसका ज्ञान उन दोनों को नही दिया गया था और हमको वह ज्ञान रसूल स० की विरासत में मिला है।

अब गौर कीजिए कि ख़ुमैनी ख़ुद किन अकीदों के मानने वाले हैं? क्या वह अपने घरेलू इमामों को नबियों से बुलन्द मान कर और अपने आपको हज़रत मूसा और ख़िज़िर अ० जैसी महान व्यक्तियों से बड़ा ज्ञानी बताकर नबियों की तौहीन करने वाले नहीं हुए कया इस धर्म का प्रचार व प्रसार और ख़ुमैनी के कलम से इस किस्म के अक़ीदों का ख़ुल्लम ख़ुल्ला ऐलान विश्व के मुसलमानों के लिए तकलीफ़ देने का सबब नहीं बनता?

इसी तरह बल्कि इससे बढ़ कर ख़ुमैनी ने अपनी पुस्तकों में नबी के सहाबियों की शान में बुरा भाला कहा है चुनांचे वह अपनी पुस्तक कशफ़ुल असरार में हदीसे किरतास का ज़िक्र करते हुए यह लिखने के पश्चात कि हजूर अ० हज़रत अली रज़ि० को अपने बाद अपना ख़लीफ़ा चुन कर इसके बारे में

लिखवा देना चाहते थे और इसी लिए आपने काग़ज और कलम मांगा था, मगर हज़र उमर रज़ि० ने उससे रोक दिया? हज़रत उमर रज़ि० की बात लिखने के बाद इस पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं :

ایں کلام یاوہ کہ از اصل کفر و زندقہ ظاہر شدہ مخالفت است بآیاتے از قرآن کریم۔ (ص ١١٩)

तर्जुमा : यह बेहूदा बात जिसकी अस्ल कुफ़्र और ज़न्दक़ा से ज़ाहिर हुई है कुरआन करीम की आयतों के विरूद्ध है।

इस लेख में खुले तौर पर हज़रत उमर रज़ि० की ओर "कुफ़्र व ज़न्दक़ा" की निस्बत करते हुए एक आम बाज़ारी और गाली गलोच करने वाले व्यक्ति की तरह ख़ुमैनी ने हज़रत उमर फारूक रज़ि० जैसी महान सहाबी को काफ़िर व ज़िन्दीक़ कहा है।

इसी तरह इसी पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर हज़रत उस्मान गनी रज़ि० और हज़रत मुआविया रज़ि० पर खुल कर यूँ तबर्रा किया है।

ما خدائے را پرستش می کنیم و می شناسیم کہ کارہایش براساس عقل پائیدار و بخلاف گفتۂ عقل، ہیچ کارے نہ کند نہ آں خدائے کہ بنائے مرتفع از خدا پرستی و عدالت و دینداری بنا کند و خود بخرابی آں بکوشد و یزید و معاویہ و عثمان و ازیں قبیل چپاولچی ہائے دیگر را بمردم امارت دہد۔ (١٧٠)

तर्जुमा : हम ऐसे ख़ुदा को पूजते हैं और उसे जानते हैं कि जिसके कामों की बुनियाद मज़बूत बुद्धि पर हो और बुद्धि के ख़िलाफ़ वह कोई कार्य न करे न उस ख़ुदा की जो ख़ुदा परस्ती और अदालत और दीनदारी की बुलन्द इमारत बनाये और फिर ख़ुद ही उसको गिराने की कोशिश करे

और यज़ीद व मुआमिया और उस्मान और इसी
तरह के ज़ालिमों और बदकारों को सत्ता दे दे।

सोचिये कि किस तरह बे हयाई के साथ सहाबा रज़ि० की शान में गुस्ताखियां करके ख़ुमैनी ने अपने इस लेख द्वारा विश्व के मुसलमानों के मुसलमानों के दिलों को जख्मी किया है।

यह चन्द उदाहरण नमूने के तौर पर पेश किये गये जिनसे इस बात का अंदाज़ा बेहतर तरीक़े से हो सकता है कि आज ख़ुमैनी जिस जर्म के करने के सबब से सलमान रूशदी पर अपने गुस्से को उतार रहे हैं उसके कत्ल का हुकम दे रहे हैं वह वही जुर्म है जिसको वह स्वंय ही कर चुके हैं और ख़ुमैनी ने सलमान रूशदी से कम नबियों और उनके सहाबियों को बुरा भला नहीं कहा है बल्कि हक़ीक़त तो यह है कि रूशदी ने जो कुछ लिखा है उसे अफ़सानवी रंग में और एक ख्याली कहानी बना कर लिखा, जबकि ख़ुमैनी ने इसे धर्म की हैसियत से पेश करते हुए इस पर बा ज़ाब्ता बहस की है। इस तरह वह सलमान रूशदी से बड़ा मुजरिम है और अपने ही फतवे की रौशनी में खुद ख़ुमैनी सलमान रूशदी के पहले कत्ल करने के लायक है।

ऐसा भी नहीं कि ख़ुमैनी को इन लेखों का इंकेशाफ़ न हुआ हो और पूरी इस्लामी दुनिया में इसका कुछ विरोध न हुआ हो। बल्कि जब ख़ुमैनी की पुस्तक अल हकूमतुल इस्लामिया बड़े ज़ोर व शोर से प्रकाशित हुई तो इस्लमी दुनिया में खलबली मच गई और मराकश के धर्मगुरूओं ने इस पर नराज़गी ज़ाहिर करते हुए इस पर प्रदर्शन किया और इसकी खबर मराकश के सम्राट शाह हसन सानी और राब्ता आलिमे इस्लामी मक्का को दी। राब्ता के पूर्व ज० सिक्रेट्री मुहम्मद अली अल हरकान की

ओर से सारी दुनिया के समाचार पत्रों और पत्रिकाओं को खत प्रकाशित करने के लिए भेजे गये। अल बद्र के दिसम्बर १६८० के अंक में भी इस खत का तर्जुमा प्रकाशित हुआ है। इस पत्र में ख़ुमैनी की गुस्ताख़ाना और तौहीन आमेज़ इबारतों के कई पैराग्राफ अंकित किये गये हैं। पाठकों की जानकारी के लिए हम इस जगह केवल एक पैराग्राफ़ लिख रहे हैं जिससे अंदाज़ा हो जायेगा कि ख़ुमैनी की नबियों के सिलसिले में क्या ज़हनियत है और उन्होंने नबियों को अपने मिशन में किस तरह नाकाम माना है।

ان الانبیاء جمیعاً جاؤا من اجل ارساء قواعد العدالة
فی العالم لکنهم لم ینجحوا حتی النبی محمد صلی
الله علیه وسلم خاتم الانبیاء الذی جاء لاصلاح
البشریة و تنفیذ العدالة لم ینجح فی ذالك و ان
الشخص الذی سینجح فی ذلك و یرسی قواعد
العدالة فی جمیع انحاء العالم و یقوم الانحرافات هو
الامام المهدی المنتظر۔

तर्जुमा : तमाम नबी दुनिया में अदालत के नियम लागू करने के लिए आये थे लेकिन वह इस कार्य में विफल हो गये यहां तक अंतिम नबी हज़रत मुहम्मद स० भी जो मनुष्यों को सुधारने और अदालत को लागू करने के लिए आये थे वह भी इस कार्य में विफल हो गये और बेशक वह व्यक्ति जो आने वाले दिनों में इस कार्य में सफल होगा और पूरे विश्व में अदालती नियमों को सही ढंग से लागू कर देगा और खुराफ़ात को दूर करेग वह इमाम महदी मुंतज़र है।

पाठक! ठण्डे दिल से सोचें कि क्या नबियों की इससे बढ़

कर कोई तौहीन हो सकती है कि उनको अपनी बेसत के मक़्सद ही में विफल करार दे दिया जाये? क्या खुमैनी ने तमाम नबियों को यहां तक कि हज़रत मुहम्मद स० का नाम लेकर उनको अपने मक़्सद में विफल नहीं कह दिया? और फिर मज़े की बात यह कि नबियों के इस मिशन को पूरा करने और उनसे न हो सकने वाले कार्य को पूरा कर देने की जिम्मेदारी एक ऐसे फ़र्जी तिलस्मी व्यक्ति के ज़िम्मे कर रखा है जिसका दशकों से इंतज़ार ही हो रहा है और वह इस धर्ती पर आने का नाम नहीं ले रहा है।

मेरा सीधा प्रश्न यह है कि एक ऐसा व्यक्ति जो तमाम नबियों को यहां तक कि अंतिम नबी मुहम्मद स० और उनके सहाबियों की शान में बुरा भला कह चुका हो और आज तक अपने उन ही अक़ीदों पर जमा हुआ हो जिस पर वह खुल्लम खुल्ला इज़हार कर चुका है, उसे क्या हक़ बनता है कि वह दूसरों के गरेबानों में झांके? ऐसा व्यक्ति तो खुद ही इस्लाम से बाहर है चे जायेकि विश्व के कुल मुसलमानों का अकेला व तंहा प्रवक्ता बन कर वह इस्लामी कानून का मज़ाक उड़ाये।

इस बात की वज़ाहत एक बार फिर हो जाना चाहिए है कि सलमान रूशदी की इस गुस्ताख़ाना हिम्मत पर दुनिया के तमाम मुसलमानों की तरह लेखक का दिल भी जख़्मी हुआ और वह इस बात का यक़ीन भी रखता है कि खुदा तआला इस बदनामे ज़माना ज़िन्दीक को अपनी गिरफ्त यानी पकड़ में जरूर लेगा और इंशा अल्लाह इस दुनिया ही में वह बदबख़्त विफल और परेशान होगा। लेकिन इन तमाम बातों का हासिल यह है कि अगर पैग़म्बर स० को ज़लील करके सलमान रूशदी मुरतद हो गया है तो मुरतद की सज़ा इस्लामी कानून के हिसाब से

वह नहीं है जो खुमैनी ने तजवीज़ की है। खुमैनी ने पकड़ो और क़त्ल करो का फतवा देकर इस्लामी क़ानून की तर्जुमानी नहीं की है बल्कि यह एक सियासी पैंतरा है जिसके द्वारा खुमैनी अपने बदसूरत चहरे पर पुती हुई सियाही को साफ़ करने के ख़्वाहिशमन्द है खुमैनी की साख उखड़ चुकी है उसके इस्लामी नारों की क़लई खुल चुकी है उसके इस्लामी दुनिया के एकलौते बादशाह बनने का ख्वाब बिखर कर चकना चूर हो चुका है। उसके हरमे इलाही पर मुसल्लह हमले के मंसूबे ने सारी दुनिया के सामने उसकी इस्लामी दोस्ती की हक़ीक़त ज़ाहिर कर दी है। उसकी विदेश नीति विफल हो चुकी है। इराक के साथ ८ वर्ष से ज्यादा ज़माने तक जारी रखने वाली जंग के इबरतनाक और ड्रामाई एख़तताम ने उसके सियासी नारों का भरम खो दिया है वह एक बेबस क़ैदी की ज़िन्दगी गुज़ारने पर मजबूर है उसे देश के अन्दर एक मज़बूत सियासतदां और ईरानी पार्लिमेन्ट के स्पीकर हाशमी रफ़संजानी जैसे बलवान विरोधी से गुथ्थम मुथ्था करना पड़ रहा है। अवामी एतमाद धीरे धीरी समाप्त होता जा रहा है। पश्चिमी दुनिया की ओर से ईरान के झुकाव ने ईरान की पालीसियों में बहुत बड़ी तबदीली और ख़ुमैनी की गिरती हुई साख का एलान कर दिया है।

यह हैं वह हालात जिनमें खुमैनी ने सलमान रूशदी के कत्ल के उमूमी हुकम और फतवे को एक सियासी चाल के तौर पर प्रयोग किया है ताकि इस तरह विश्व को एक बार फिर धोखा दिया जा सके। और विश्व में मुसलमानों के जज़्बात से खेल कर उनसे खिराजे तहसीन प्राप्त किया जा सके।

हमारा यह कहना है कि सलमान रूशदी को उसके जुर्म की सज़ा मिलनी चाहिये। इस्लामी क़ानून अगर इजाज़त दे तो

उसे न केवल क़त्ल करना चाहिए बल्कि उसको बोटी बोटी का के चील कव्वों को दे देना चाहिए। लेकिन जोश में भी होश का दामन छोड़ने की इजाज़त नहीं है। पैग़म्बरे इस्लाम और उनका लाया हुआ निज़ामे रहमत अस्ल है और उसकी हदों में रहते हुए ही हम कोई कदम उठा सकते।

फिर अगर सलमान रूशदी को क़त्ल किया जाना ही ज़रूरी है तो उसका फ़ैसला बा क़ाइदा इस्लामी अदालत से होना चाहिए क्योंकि सज़ा के निफ़ाज़ का हक भी इस्लामी अदालत ही को है किसी और को नहीं।

इसके अलावा एक अहम बात यह है कि ख़ुमैनी को अपने मशहूर अक़ीदों की बिना पर इस्लाम की तर्जुमानी का किसी तरह हक नहीं है और अगर वह इस्लाम का नाम लेकर कुछ कहें तो मुसलमानों को उसकी बात नहीं माननी चाहिए क्योकि सलमान रूशदी ने आज जिस जुर्म को अंजाम दिया है ख़ुमैनी ऐसे जुर्म को कई बार अंजाम दे चुके हैं। अगर हक़ीक़त में ख़ुमैनी की नज़र में इस्लाम और पैग़म्बरे इस्लाम और उनके सहाबियों की तौहीन लायके गर्दन ज़दनी है तो सलमान रूशदी की गर्दन तलाश करने से पूर्व ख़ुमैनी को अपनी गर्दन पेश करना चाहिए। या फिर कम से कम अपने पिछले काले करतूतों पर खुले आम शर्मिन्दगी का ऐलान करना चाहिए और मुसलामनों से माफी मांगनी चाहिए। ताकि उनके जख़्मों का कुछ इलाज हो सके। वर्ना ख़ुमैनी के जज़बाती नारों का शिकार बन कर मुसलामन नाक़ाबिले तलाफ़ी नुक़्सान से दोचार होंगे।

हक तआला विश्व के मुसलामनों की हिफ़ाज़त फ़रमाये। आमीन।

ख़ुमैनी गिरोह को भी इस्लाम से निष्काशित किया जाये?

१५ से १७ रजब १४०६ हिजरी को बग़दाद में इस्लामी कान्फ्रेन्स की सभाऐं हुई इस सभा में ईरान और इराक के दरमयान बहुत दिनों से जारी रहने वाली जंग और इसके असरात पर खुसूसियत के साथ विश्व भर के उलेमा और बुद्धि जीवियों व्यक्तियों ने विचार विमर्श किया। हिन्दुस्तान की ओर से जमइयत उलेमा हिन्द के अध्यक्ष मौलाना स० असअद मदनी ने इस कान्फ्रेन्स में शिरकत की। इस कान्फ्रेन्स में जो १० तजवीज़ें पास हुईं उनका पूरा लेख दिल्ली से प्रकाशित होने वाली अरबी पत्रिका ''अल–किफाह'' दिनांक ६ रमज़ान १४०६ हिजरी यानी १६ मई १९८६ के अंक में प्रकाशित हो चुकी है।

निम्न में हम इस कान्फ्रेन्स की तजवीज़ स० ६ का उर्दू अनुवाद अपने पाठकों को प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें ख़ुमैनी गिरोह को उसकी इस्लाम दुश्मन गतिविधियों और ख़ुमैनी और उनके मानने वाले व्यक्तियों के इस्लामी अक़ाएद से खुल कर बगावत के कारण इस्लाम से निकले हुए एक नये गिरोह के रूप में मानने की शिफ़ारिस की गई है। इस तजवीज़ का तर्जुमा पेश करने से पहले इस बात को जानना ज़रूरी है कि ख़ुमैनी गिरोह को इस्लाम से निष्काशित करने के लिए ख़ुमैनी

के जिन अक़ाएद को ख़ुद उनकी अपने ही भाषणों और लेखों द्वारा एक अस्ल बनाया गया है वह अकाएद सिर्फ़ वेकल खुमैनी ही के नहीं हैं और न ही खुमैनी इन अकाएद को बनाने वाले हैं बल्कि हक़ीक़त यह है कि शिया इसना अशरी धर्म के बुनियादी अकाएद हैं जिनको खुमैनी ने अपने धर्म के एक ज्ञानी और आलिम की हैसियत से ईरानी आंदोलन से पहले और उसके बाद बयान किया है। और अपने धर्म की पुरानी पुस्तकों का विस्तार किया है। यही कारण है कि कोई भी जिम्मेदार शिया आलिम यह नहीं कह सकता कि खुमैनी ने अपने धर्म के बयान में किसी दोगले पन से काम लिया है और शिया अक़ाएद में किसी भी क़िसम की तबदीली है। ख़ुमैनी ने ठीक उन ही अक़ीदों का प्रचार व प्रसार किया है जो उनके पुर्वज दशकों पहले से बयान करते चले आ रहे हैं। इसके बा वजूद इस्लामी कान्फ्रेन्स की इस तजवीज़ में शिया गिरोह की जगह खुमैनी गिरोह का लफ़्ज़ बाज़ ''जानी बूझी मस्लिहतों'' की बुनियाद पर इस्तेमाल किया गया है हमें इस पर कुछ कहना भी नहीं है कि शियों के एतेक़ाद के लिए शिया का लफ्ज़ जरूर ही इस्तेमाल हो या किया जाये क्योंकि जिस तहर खत्मे नबूवत को न स्वीकार करने वाले मिर्ज़ा गुलाम अहमद कादयानी और उनके लोगों को काफिर होने को एक जुट होकर माना गया है। और क़ादयानी अपने को कादयानी न कह कर अहमदी कह कर काफ़िर होने से बच नहीं सकते इसी तरह ख़ुमैनी गिरोह को जिन अक़ीदों के कारण काफ़िर माना गया है उनके सिलसिले में वह अक़ीदे और उनको मानने वाले केवल ईरान ही में नहीं हैं कि उन्हें ''खुमैनी गिरोह'' कहना सही हो? दुनिया के अन्य हिस्सों में पाये जाने वाले इन्ही अक़ाएद के व्यक्तियों को शिया इस्ना अशरी के नाम से जाना जाता है यही कारण है कि

बग़दाद सभा के इस एकजुट तजवीज़ के ज़रिये खुमैनी फ़िरका के साथ साथ शिया फिरक़ा को भी इस्लाम से निकला हुआ माना गया है।

इस विस्तार के बाद हम इस तजवीज़ का उर्दू अनुवाद बगेर किसी टिप्पणी के प्रस्तुत कर रहे हैं।

तर्जुमा तजवीज़ न० (६)

कान्फ्रेंस को अपने इस तीसरे दौर में खुमैनी के उस अहम भाषण की भी जानकारी मिली जो उन्होंने ईरान में ईदुल मरअत के मौक़े पर २ मार्च १९८६ ई० दिन इतवार को दिया था और इरानी समाचार सूत्रों ने इसे पुरी ताक़त के साथ प्रसारित किया है। इस भाषण में इस्लाम के अकाएद से बिल्कुल अलग हट कर ऐसी ऐसी बातें कही गईं हैं जो इस्लाम के तमाम गिरोहों के अक़ाएद के सरासर खिलाफ हैं।

खुमैनी ने अपने इस भाषण में कहा कि हज़रत जिब्रईल अ० हज़रत मुहम्मद स० के देहान्त के बाद हज़रत फातिमा के पास वही लेकर आते रहे और यह सिलसिला उनकी पूरी जिन्दगी में यानी ७५ दिनों तक जारी रहा।

चुनांचे खुमैनी के शब्द यह हैं :

फ़ातिमा ज़हरा अपने पिता के देहान्त के बाद ७५ दिन ज़िन्दा रहीं यह दिन उन्होंने बड़े रंज और दु:ख के साथ गुज़ारे। और जिब्रईल अमीन अ० उनके पास ताज़ियत के लिए और उन मामलों की खबर देने के लिए जो भविष्य में पेश आने वाले थे आते रहे। रिवायत से इसकी भी वज़ाहत होती है कि जिब्रईल इन ७५ दिनों में बार बार हज़रत फ़ातिमा के पास आये थे और मैं इस किस्म की

रिवायत किसी दूसरे के लिए नबियों के अलावा के वारिद होने का अक़ीदा नहीं रखता हूं। और हज़रत जिब्रईल की ओर से जिन कार्यों की हज़रत फातिमा ज़हरा रज़ि० को खबर दी जाती थी उनको इमाम अली लिखते थे और इस बात का शाक है कि ईरान का मौजूदा मामला भी उन्हीं मामलात में से हो जिनकी हज़रत फ़ातिमा ज़हरा को इत्तेला दी गई थी।

हम इस बात को मुमकिन नहीं समझते कि इमाम अली उसी तरह वही के लिखने वाले थे जिस तरह वह रसूलुल्लाह स० की वही के लिखने वाले थे। जिब्रईल का किसी व्यक्ति पर उतरने का मामला आसान नहीं और न ही इसका एतबार किया जा सकता है कि जिब्रईल हर व्यक्ति पर उतरते हैं क्योंकि उस व्यक्ति की रूह के दरमियान जिस पर जिब्रईन उतरे हों और जिब्रईल के दरमयान जिनको रूहे आज़म कहा जाता है एक ख़ास किस्म की मुनासिबत ज़रूरी है और यह मुनासिबत जिब्रईल और नबियों मसलन रसूले आज़म स० और ईसा अ० और मूसा अ० और इब्राहीम अ० के दरमयान बेहतर तौर पर मौजूद थी। और जिब्रईल अमीन इन व्यक्तियों के अलावा किसी पर नहीं उतरे। यहां तक कि मुझे कोई भी ऐसी रिवायत नहीं मिली जिससे इस बात की ओर इशारा मिलता हो कि जिब्रईल इमामों पर उतरे हों ऐसी सूरत में यह एक ऐसी फ़ज़ीलत है कि जिसमें नबियों के अलावा फातिमा ज़हरा रज़ि० के सिवा कोई शामिल नहीं है। और यह चीज़ उन फ़जाइल मेंसे एक है जो सिद्दीक़ा फ़ातिमा ज़हरा के साथ ख़ास हैं। (खुमैनी की बात खत्म हुई)

इस तरह की बातें कहने वाला मुसलमानों के अलग

अलग सोच रखने वाले तमाम गिरोहों के हिसाब से इस्लाम से निकल जाता है इसी बुनियाद पर मज्लिस ने ख़ुमैनी के उन दूसरे अक़वाल (बातों) व लेख पर भी सोचा। जो उन्होंने अपने देश में पेश किये और जिनको फैलाया और पूरे मुस्लिम दुनिया को इस बात की ख़बर हुई मसलन :

१. तमाम नबियों और रसूलों ने जिनमें हमारे नबी स० भी हैं अदालत का हक अदा नहीं किया।
२. क़ुरआन छुपा और लिप्टा हुआ है और क़ुरआन की असल हक़ीक़त नापैद है यहां तक कि कोई भी व्यक्ति इस हक़ीक़त का पता नहीं लगा सकता।
३. रसूलुल्लाह स० इस्लामी निज़ाम और ख़ुदाई इंसाफ को क़ायम करने में नाकाम रहे यहां तक कि उसका कयाम नहीं हो सका है।
४. इमामों को ऐसा स्थान मिलता है जिस तक न किसी नज़दीक़ी फ़रिशते की पहुंच हो सकती है न ही किसी नबी की और उनकी ख़िलाफ़त तकवीनी होती है पूर विश्व की तमाम चीज़ों पर उन ही का हुक्म चलता है।

उर्पयुक्त बिन्दुओं के आधार पर और उलमा–ए–यूरप राब्ता आलिमे इस्लामी और राब्ता उलमा–ए–इराक़ के फतवों और इमाम अकबर शैख़ुल अज़हर के ख़ुमैनियत और उसकी हक़ीक़त के बारे में खबर पाने के बाद इस सभा के तमाम उलेमा का जम्हूर उलमा–ए–उम्मते इस्लामिया की पैरवी करते हुए यह खयाल है कि ख़ुमैनी और जो लोग उनकी सोच और फ़ासिद अक़ीदों की पैरवी करने वाले हैं वह सब पर चलने वाले तमाम इस्लाम से निकले हुए हैं। पस जो लोग ख़ुमैनी के अफकार और उनके गलत नज़रयात से धोखे में हैं चाहे वह ईरानी हों या उनके अलावा, उन पर लाज़िम है कि वह उन

गुमराहियों से बराअत ज़ाहिर करें और इससे बचें और खुदाई दीन को मज़बूती से पकड़े रहें।

उलेमा–ए–किराम और उन इस्लामी क़ायदीन यानी लीडरों की जिन पर अल्लाह तआला ने इस्लामी अक़ाएद की ग़लत उलट फेर और दज्जालों की झूठी बातों से हिफ़ाज़त की जिम्मेदारी डाली है यह अहम तरीन जिम्मेदारी है कि वह खुमैनियत और उसके गलत रास्ते को ज़ाहिर करें और यह कार्य निम्न तरीक़ों से हो सकता है :

क) दारूल इफ़ता और मजालिसे शरइया का कयाम हो जिसकी ओर से ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध जो रसूलुल्लाह स० की वफ़ात के बाद भी वही के सिलसिले को जारी रहने की बात करता हो, फ़तावा जारी किये जायें।

ख) खुमैनियत को कादयानियत, बाबियत, बहाइयत की तरह एक ऐसे नये गिरोह के तौर पर पेश किया जाये जो इस्लाम से निकला हुआ है क्योंकि यह गिरोह रसूलुल्लाह स० के बाद भी वही के उतरने का दावेदार है और इस्लामी संगठनों, इस्लामी मजलिसों और हकूमतों से इस बात का मुतालबा किया जाये कि वे इस गिरोह को इस्लाम से निकला हुआ करार देकर उसकी सोच को मुसलमानों के दरम्यान फैलाये जाने पर पाबन्दी लगायें।

ग) इस व्यक्ति (खुमैनी) और इसके पैरूकारों की इस्लाम से हटी हुई बातों पर मुसलमान गहरी निगाह रखें जो उसकी तकरीरों और तहरीरों के द्वारा सामने आती रहें।

घ) ख़तीबों, इमामों और वाइज़ों को रखा जाये जो मुसलमानों को उन गुमराहियों और इस्लामी अक़ीदों को ख़त्म करने वाले सोच के खतरों से आगाह करके उससे उन्हें बचायें।

☆☆☆

ख़ुमैनी का ईरान ख़ुमैनी के बाद?

ईरान के बेताज बादशाह और विश्व भर के इसना अशरी शियों के सबसे बड़े धर्म गुरू आयतुल्लाह रूहुल्लाह ख़ुमैनी का देहान्त हो गया। और उनके देहान्त के बाद ईरान से खुमैनी दौर समाप्त हो गया। इन १० वर्षों में ईरान की याद आते ही ख़ुमैनी की रूप इस तरह दिमाग में आ जाता है गोया ईरान और ख़ुमैनी एक ही चीज़ के दो नाम हों। ईरानी आन्दोलन के बाद ईरान की बिसात पर ख़ुमैनी इस तरह छाये कि उनके इस संसार से चले जाने और अपने आमाल नामे के साथ बरज़ख पहुंच जाने के बावजूद थके थके ज़हनों को जैसे यह यक़ीन ही नही आ रहा है कि ईरान से ख़ुमैनी का दौर समाप्त हो गया। हालांकि हकीकत यही है कि ईरान से ख़ुमैनी का दौर समाप्त हो गया।

मौत एक ऐसी अटल हक़ीक़त है कि जिसका सामना आगे पीछे सब ही को करना है इसी लिए किसी की मौत पर खुशियां मनाना हमारा धर्म नहीं है किसी की मृत्यु पर खुशियों के दिये जलाने और जले दिल के फफूले फोड़ने की रस्म को हम उन्हीं लोगों के साथ खास रखना मुनासिब समझते हैं जिनका धर्म व ज्ञान से बंधन टूट चुका है।

इस हक़ीक़त से किसी भी होशियार व बुद्धिमान व्यक्ति

को इंकार नही होगा कि १५ वीं सदी हिजरी के समाप्त हुए महीना व साल में विश्व के सब से बड़े निज़ाई व्यक्ति खुमैनी ही हैं जिनको अगर एक ओर इमाम–ए–वक्त, ईरान को नजात दिलाने वाला, इत्तेहाद का झन्डा उठाने वाला, मर्दे मुजाहिद माना गया तो दूसरी ओर ईरान की आर्थिक शक्ति को नष्ट करने वाला, वहां की हवाई ताक़त का दीवालिया निकालने वाला, हज़ारों कीमती जानों को बदले की भेंट चढ़ाने वाला और एक बे मक़सद जंग की आग में लाखों इंसानों को ईंधन बनाने वाला व्यक्ति भी कहा गया है। खुमैनी की जिन्दगी में उनकी दो भिन्न भिन्न तस्वीरों के नतीजे में उनकी मृत्यु की खबर पाकर दोनों समुदायों की ओर से अपने अपने नज़रिये के मुताबिक रद्दे अमल ज़ाहिर किया गया।

हम कोरी अक़ीदत या बे बुनियाद नफ़रत के इज़हार के सिलसिले में कोई राय नहीं देना चाहते लेकिन अपने देश की एक माकूलियत पसन्द जमातअ के अमीर के इस बचकाना बयान पर हैरत ज़ाहिर करना ज़रूरी समझते हैं जिसमें खुमैनी को इस्लामी कद्रों का अलमबरदार ज़ाहिर करते हुए उनकी मृत्यु को मिल्लते इस्लामिया के लिए एक बहुत बड़ा नुक़्सान बताया गया है।

बात अगर ज़ाती रिश्तों और बेतहर मेहमानी का याद तक महदूद रहती तो हमें इस पर ध्यान देने की कोई ज़रूरत नहीं थी और हम इस शुक्रिये को उनका खुश गवार अखलाकी फरीज़ा समझ लेते लेकिन जब मिल्लते इस्लामिया के दर्द में गिरिफ़्तार यह खुश फ़िक्र, खुश अक़ीदा और खुश पोश रहनुमा जान बूझ कर अंजान बनते हुए अपने ऊपर होने वाली नवाज़िशों को मिल्लत के खाते में डालने लग जाये तो चुप्पी साधे रखना अंधी तक़लीद कहलायेगी। जिसे हमारे रहनुमा

किसी भी क़ीमत पर पसन्द नहीं करते हैं।

ख़ुमैनी की इस्लाम पसन्दी और मुस्लिम एकता की ख़्वाहिश की बुनियाद किस चीज़ पर थी? शायद यह बात ''उपर्युक्त अमीरे जमाअत'' की नज़रों से भी छुपी न होगी। क्योंकि उनकी जानकारी में यह हक़ीक़तें ज़रूर आ गई होगीं कि

(१) खुमैनी ने ईरान के सुन्नी मुसलमानों को शिया इमामों की तकलीद में नमाज़े पढ़ने पर मजबूर किया ताकि मुसलामनों की बाहमी एकता ज़ाहिर हो जब कि किसी ज़िक्र के लाइक़ जगह किसी मस्जिद में सुन्नी इमाम को रख कर के शियों से उसकी तक़लीद में नमाज़े पढ़ने को नहीं कहा गया। और मुसलमानों के बीच एकता क़ायम करने के इस तरीक़े को प्रसिद्ध उपन्यासकार से मुंह मोड़कर यह सही नहीं जाना गया।

(२) खुमैनी ने तीनों ख़लीफा हज़रत अबू बक्र रज़ि. हज़रत उमर रज़ि०, और हज़रत उस्मान रज़ि. पर अपनी कई पुस्तकों में इन लोगों पर कीचड़ उछाला है और वह पुस्तकें अनेक ज़बानों में अनुवाद करके ईरान के ''इस्लामी हुकूमत'' की ओर से पूरे विश्व में बंट गया है।

(३) खुमैनी ने अल्लाह के घर की इज्ज़त को नष्ट करते हुए वहां के अम्न को खत्म करने के लिए अपने आदमियों को किराये पर भेजा हिन्होंने अल्लाह के घर के साथ साथ हाजियों की जान व माल को भी ख़तरे में डाला।

(४) ख़ुमैनी ने सिर्फ़ अपनी ज़िद से इराक के साथ ८ वर्ष तक बे नतीजा जंग जारी रख कर लाखों लोगों को मरने कटने पर मजबूर किया और विश्व के नक्शे में अंकित दो इस्लामी मुल्कों की आर्थिक स्थित को तबाही की आखरी

मंज़िल तक पहुंचा दिया और इस्लामी देशों के सरबराहों, इस्लामी विदेश मंत्रियों की कान्फ्रेन्स और अक्वामे मुत्तहिदा की सुलह की अपीलों और करारदादों को हिकारत से ठुकरा कर बे मिसाल अनानियत पसन्दी का सुबूत दिया और फिर थक हार कर इस तरह जंग बन्दी का एलान किया कि दुनिया हैरान रह गई।

(५) सबसे बड़ी इस्लामी ख़िदमत खुमैनी ने यह अंजाम दी कि सलमान रूशदी को मुरतद कह के न सिर्फ़ उसके क़त्ल का फ़तवा जारी किया बल्कि इस्लामी क़ानून से मुंह मोड़ कर यह दहशत पसन्दाना एलान आम भी कर दिया कि रूशदी जहां मिले उसे पकड़ कर कत्ल कर दो।

यूं तो हमारे सेकूलर देश की एक यह भी रिवायत रही है कि कोई भी बड़ा सियायी व्यक्ति जब इस इस संसार से कूच करता है तो उसकी आत्मा की शांती के लिए विभिन्न धर्मों और विभिन्न अकीदों के मुताबिक़ इंतेज़ाम करके दुआऐं की जाती हैं। चाहे दुनिया से जाने वाले का सम्बन्ध किसी भी धर्म से क्यों न हो और इस रिवायत का लेहाज़ रखने की खातिर इसी देश से ऐसे मुसलमान भी जमा हो जाते हैं जो एक मुश्रिक के ईसाल सवाब के लिए कुरआन ख़्वानी करके उसके हक में दुआए मग़फ़िरत कर दिया करते हैं। फिर अगर इसी देश के ''किसी अमीरे जमाअत'' ने इमाम खुमैनी के हक में दुआ–ए–मग़फिरत की तो इस पर न हमें हैरत हुई न ही कोई एतेराज़ है। .... बल्कि हैरत तो इस बात पर है कि जाती नवाज़िशों को मिल्लत पर एहसान से ताबीर किया गया जिसका सुबूत किसी भी तरह नहीं दिया जा सकता है।

जहां तक खुमैनी की सियासी ताक़त का मामला है तो ईरान तक तो वह वाक़ई न हारने वाले साबित हुए और उनके

सियासी विरोधियों में से कुछ को अपनी ज़िन्दगियों से हाथ धोना पड़ा कुछ को देश निकाला मिला और जो बचे खुचे उनको बे आवाज़ बनना पड़ा गोया खुमैनी के सामने किसी की दाल न गली।

इन हारे हुए व्यक्तियों में ईरान के पूर्व राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, और विदेश मंत्री और पार्लीमेन्ट के स्पीकर जैसे मुख्य पदाधिकारी शामिल हैं और जाहिर है कि इतने खास खास व्यक्तियों को किसी न किसी दर्जे में अवामी ताईद भी ज़रूर हासिल होगी। यह अलग बात है कि खुमैनी की सख्त गीर पॉलीसी के कारण यह लोग खुमैनी की ज़िन्दगी में बे बस रहे और उनको अपनी ताकत को ज़ाहिर करने का मौका न मिल सका। लेकिन अब जब कि खुमैनी दुनिया से जा चुके तो ईरान की सियासत में बदलाव होना अनिवार्य है और यही वह कारण है जिसमें ईरान के आने वाले रूख का फैसला होगा।

खुमैनी ने रज़ा शाह से छीन कर जिस ईरान पर कब्ज़ा किया था वह आज के ईरान से बिल्कुल अलग था। आज के ईरान का आर्थिक ढांचा चरमरा रहा है तमाम बड़े बड़े कारखाने बन्द हैं तेल के अलावा वहां कोई दूसरी चीज निंयात नहीं हो रही है और तेल की आमदनी भी खर्च से बहुत कम हो गयी है जिसके नतीजे में वहां की वार्षिक आमदनी कम हो चुकी है एक अंदाज़े के मुताबिक़ इस वक्त ईरान की मुद्रा की शरह् ८० प्रशित हो चुकी है। १०० डालर की सरकारी खरीद ७६० ईरानी रियाल है लेकिन ब्लेक मार्केट में इसकी क़ीमत १३०० रियाल ईरानी रियाल है। इन हालात का लाज़मी नतीजा कमर तोड़ गरानी की सूरत में ज़ाहिर हो रहा है जिसके कारण ईरान का गरीब बहुत परेशान है, दूसरी तरफ़ खुमैनी की विदेश नीति ने ईरान का रिश्ता सारी दुनिया से तोड़ रखा है यहां तक कि

इस्लामी देशों से भी ईरान के ताल्लुक़ात इंतेहाई ख़राब हो गये हैं। इन सब बातों के बा वजूद खुमैनी की पालेसियों से हटने का एलान करने की ईरान के किसी भी लीडर में अभी हिम्मत नहीं है। अगर्चे इराक़ी सत्ता के एक प्रवक्ता ने खुमैनी की मौत पर टिप्पणी करते हुए यह कहा था कि अब सुलह का रास्ता हमवार हो गया है लेकिन ईरान के मौजूदा विदेश मंत्री अली अकबर विलायती ने यही ऐलान किया है कि ईरान की पालीसियों में कोई तबदीली न होगी।

लेकिन अली अकबर विलायती के इस एलान को हम खुमैनी की ताज़ियत के अलावा किसी दूसरे नाम से नहीं याद कर सकते क्योंकि ईरान को खुमैनी की पालीसियों पर चलाने के लिए ईरान में खुमैनी ही जैसे किसी सत्ता के मालिक ज़िद्दी व्यक्ति का होना ज़रूरी है और यह सिफ़ात किसी और में तो किया खुद खुमैनी के इकलौते बेटे अहमद खुमैनी में भी नहीं पाई जातीं मौजूदा सूरते हाल तो यह है कि खुमैनी की जांनशीनी के कई दावेदार मौजूद हैं और उनमें से किसी को किसी से कम नहीं कहा जा सकता।

फिर यूं भी ईरान के भावी राष्ट्रपति इस समय के स्पीकर हाशमी रफ़संजानी होंगे। और खुमैनी की मौजूदगी में ख़ामनाई की अध्यक्षता और खुमैनी की गैर मौजूदगी में रफ़संजानी की अध्यक्षता में जो फर्क़ हो सकता है उसका असर ईरान की पालीसियों में ज़ाहिर होकर रहेगा इसी लिए हमने कहा कि ईरान से खुमैनी का दौर समाप्त हो गया।

☆☆☆

क्या ख़ुमैनी की तक़लीद होगी?

ईरान के पूर्व शासक और पंद्रवीं सदी हिजरी के सबसे ज़्यादा विवादित व्यक्ति आयतुल्लाह रूहुल्लाह खुमैंनी की ताज़ियत के सिलसिले में लखनऊ विश्व विद्यालय के फार्सी विभाग के पुर्व अध्यक्ष डा० वलीउल हक़ अंसारी का एक लेख ''अल–बद्र'' मासिक पत्रिका जुलाई १९८९ ई० के अंक में प्रकाशित हुआ था।

इससे अलग हट कर कि डा० साहब के इस विस्तार के बाद उनका मौक़फ सही माना जाये या उन पर टिप्पड़ी करने वाले का? डा० साहब ने अपने पत्र में खुमैंनी की जिन्दगी के जिन चन्द गोशों की ओर इशारा करते हुए उनके द्वारा अहले सुन्नत वल जमाअत के अक़ीदों के सही होने पर जो दलीलें दी है वह वास्तव में ध्यान देने के लाइक़ हैं। डा० साहब लिखते हैं कि

(१) शुरू में आयतुल्लाह ख़ुमैनी नायब इमाम कहे जाते थे, यह शिया धर्म के अक़ीदे के अनुसार बिल्कुल सही था लेकिन बाद में वह इमाम के नाम से पुकारे जाने लगे जिस पर उन्हें भी एतराज़ न था। शिया अक़ीदे के हिसाब से इमामत खत्म हो चुकी लेकिन सुन्नी समुदाय के हिसाब से कोई भी बड़ा धर्म गुरू इमाम के नाम से पुकारा जा सकता

है। मसलन इमाम राज़ी, इमाम ग़ज़ाली, और आख़िर में इमाम अहले सुन्नत हज़रत मौलाना अब्दुश्शकूर साहब।

उपर्युक्त लेख में डा० साहब ने खुमैनी और उनके मानने वालों की ओर से शऊरी या गैर शुऊरी तौर पर ''अक़ीदा–ए–इमामत'' के सिलसिले में अहले सुन्नत के दृष्टिकोण को सही मानने की जो बात कही है उससे कौन इंकार कर सकता है? क्योंकि शिया अक़ीदे के हिसाब से इमामत भी नबूवत ही की तरह ख़ुदा की जानिब से दिया गया एक ओहदा होता है और ख़ुदा तआला की ओर से जिन लोगों को इमाम बनाया गया उनके अलावा किसी दूसरे को इमाम कहना किसी भी तरह से जाइज़ नहीं हो सकता है।

इस सिलसिले में ख़ुद खुमैनी ने दो टोक अंदाज़ में अपने अक़ीदो को ब्यान करते हुए लिखा है कि :

ان من ضروريات مذهبنا ان لائمتنا مقاماً لا يبلغه ملك مقرب و لا نبی مرسل۔ (الحكومتة الاسلامية، ص٥٢)

तर्जुमा : हमारे धर्म के ज़रूरी अक़ाएद में से यह है कि हमारे इमामों को वह स्थान हासिल है जिस स्थान तक न किसी ख़ास फरिश्ते की पहुंच हो सकती है और न ही किसी नबी की।''

अंदाज़ा कीजिए कि खुमैनी के ब्यान के मुताबिक़ ''इमाम'' को कितना ऊँचा स्थान हासिल है? और किस तरह से खुमैनी ने विस्तार के साथ अपना यह मज़हबी अक़ीदा बयान कर दिया है कि इमाम तमाम नबियों और ख़ास फ़रिश्तों से भी अफ़ज़ल होता है?

इमामों के मक़ाम व मरतबे का विस्तार करते हुए खुमैनी

लिखते हैं :

فإن للإمام مقاماً محموداً و درجةً سامية و خلافة تكوينية تخضع لولايتها و سيطرتها جميع ذرات الكون۔ (حواله مذكوره بالا)

तर्जुमा : इमाम को वह मक़ामे महमूद और बुलन्द दर्जा और ऐसी तकवीनी ख़िलाफ़त हासिल होती है कि उसके हुक्म की दुनिया की तमाम वस्तुऐं पाबन्द होते हैं।

शिया अक़ीदे के हिसाब से १२ इमामों की नियुक्ति खुदा तआला की ओर से हुई है जिनमें के पहले अली और आख़िरी महदी (इमाम ग़ायब) है और यह ज़माना बारहवें इमाम की ''गैबूबते कुबरा'' का है, कयामत से पहले बारहवें इमाम ज़ाहिर जरूर होंगे जिनके आने का शियों को हर समय इंतेज़ार है और इसी लिए इनको ''इमामे मुंतज़र'' कहा जाता है।

शियई अक़ीदे के अनुसार इन १२ के बाद किसी तेरहवें इमाम का पाया जाना मुमकिन नहीं है क्योंकि नबूवत ही की तरह इमामत भी अल्लाह की ओर से समाप्त की जा चुकी है।

इसके मुक़ाबले में अहले सुन्नत की इमामत के सम्बन्ध में यह दृष्टिकोण है कि इमाम का चुना जाना वैसे ही उम्मत का हक़ है जैसे नमाज़ के लिए इमान चुनना मुक्तदियों का हक़ है और चूंकि वह कोई वैसा ओहदा नहीं है जैसा कि नबूवत है इस लिए सुन्नी किसी भी बड़े और मोतबर आलिमे दीन को इमाम के नाम से पुकारने को सही समझते हैं।

दोनों फ़रीक़ों की दलीलों से अलग हट कर ''इमाम महदी मुंतज़र'' के बाद किसी भी व्यक्ति को इमाम के नाम से पुकारना शिया अकीदे के हिसाब से किसी तरह भी दुरूस्त नहीं हो सकता और ख़ुमैनी को लगातार इमाम के नाम से पुकारा जाना

और ख़ुमैनी की ओर से उस पर रोक न लगाकर अपनी रज़ामन्दी देना क्या इस बात का ख़ुला सुबूत नहीं है कि शुऊरी या गैर शुऊरी तौर पर ख़ुमैनी और उनके मानने वालों ने इमामत के सिलसिले में शिई अक़ीदे के मुकाबले में सुन्नी अक़ीदे को सही मान लिया है।

डा० साहब ने ख़ुमैनी के ''हंगामा खेज़ फ़तवा'' इस अजीब व ग़रीब फ़तवे की ओर इशारा करते हुए कहा है कि

> (२) सलमान रूशदी के क़त्ल के फ़तवे के सिलसिले में एक सबब रसूल स० और उनकी पत्नियों की तौहीन है ..... यह भी सुन्नियों का नुकता–ए–निगाह है वर्ना मुरतद (इस्लाम से निकल जाने वाला) तो हज़ारों रहे हैं और आज भी हैं जिनमें शियों की भी काफी तादाद है लेकिन उनके कत्ल के लिए आज तक शिया सुन्नी किसी आलिम का फतवा सामने नहीं आया।

यानी ख़ुमैनी ने सलमान रूश्दी के वाजिबुल क़त्ल होने के जो अनेक सबब बताये हैं उनमें से एक यह भी है कि उसने अपनी रूसवा–ए–ज़माना किताब ''शैतानी कलिमात'' में रसूल स० और आपकी पत्नियों की तौहीन की है गोया ख़ुमैनी के नज़दीक यह जुर्म लायके़ कत्ल है और यह नुक़ता–ए–नज़र सुन्नियों ही का है क्योंकि शियों ने तो रसूल और उनकी पत्नियों की तौहीन को कोई जुर्म ही नहीं समझा। चे जायेकि इतना संगीन जुर्म!

ताज्जुब तो इस पर है कि ख़ुमैनी एक तरफ़ अपने धर्म के एक बड़े आलिम और प्रचारक होने के नाते खुले तौर पर नबियों, नबी की धर्मपत्नियों और उनके सहाबियों की तौहीन करते नज़र आते हैं दूसरी ओर इसी जुर्म के करने की वजह से

सलमान रूशदी को वाजिबुल क़त्ल क़रार देते हैं और अगर सलमान रूशदी पलट कर कह दे कि ''यह तो वही गुनाह है जो तुम्हारे शहर के लोग भी करते हैं'' तो ख़ुमैनी के मानने वालों के पास इसका कोई जवाब नहीं क्योंकि अभी पहले मसले के अन्तरगत ख़ुमैनी की पुस्तक ''अल–हकूमतुल इस्लामिया'' से जो लेख नक़ल किया गया है इसमें ख़ुमैनी ने खुले बन्दों अपने इमामों को तमाम नबियों से बुलन्द व बाला करार देकर नबियों की तौहीन की है और यह कोई ख़ुमैनी ही की बात नहीं है बल्कि शिया धर्म मे तो इमामत नबूवत से बुलन्द है चुनांचे शियों के सुप्रसिद्ध आलिम अल्लामा बाकर मजिलसी लिखते हैं कि

امامت بالاتر از رتبۂ پیغمبری است (حیات القلوب، ج۳، ص۱۰)

तर्जुमा : इमामत का मर्तबा पैगम्बरी से बहुत ज़्यादा बुलन्द है। (हयातुल कुलूब, जिल्द ३, स १०)

इसी तरह रसूल की पत्नियों की ज़ात पर नारवा हमले करना और उनको नऊज़ु बिल्लाह मुनाफ़िक़ा और काफ़िरा तक कहना भी शिया धर्म की अलामत है जिसके ख़ुमैनी ज़बरदस्त प्रचारक व प्रसारक थे। यही अल्लामा बाकर मजिलसी अपनी इसी पुस्तक में हज़रत आइशा रज़ि० और उनके पिता हज़रत अबू बक्र रज़ि० और हज़रत हफ़सा रज़ि० और उनके पिता हजरत उमर रज़ि० के सिलसिले में यह रीमाकर्स पास करते हैं

پس آں دو منافق و آں دو منافقہ با یکدیگر اتفاق کردند کہ آنحضرت را بزہر شہید کنند۔ (ص۷۴۵)

तर्जुमा : पस इन दोनों मुनाफ़िक़ों (अबू बक्र रज़ि० व उमर रज़ि०) और इन दोनो मुनाफ़िक़ात (आइशा व हफसा) ने मिलकर आपस में यह इत्तेफ़ाक़ कर लिया कि आंहुजूर (अलैहिस्सलाम) को ज़हर के द्वारा शहीद कर दें। (स० ७४५)

गौर कीजिए कि उम्मुल मोमिनीन आइश और हफ़सा रज़ि० और इन दोनों के बुजुर्गवार पिताओं को किन नामों से याद करके उन पर कितना संगीन इल्ज़ाम डाला गया है दूसरी तरफ इसी शातिर लेखक ने अपनी उसी पुस्तक में नामों के विस्तार के साथ अपने इमाम मासूम के हवाले से यही इलज़ाम यूं दोहराया है कि

عیاشی بسند معتبر از حضرت صادق روایت کردہ است کہ عائشہ وحفصہ آنحضرت را بزہر شہید کردند۔ ص ۸۷۰)

तर्जुमा : अय्याशी ने मोतबर सनद के द्वारा जाफ़र सादिक से रिवायत किया है कि आइशा और हफ़सा ने आंहज़रत स० को ज़हर देकर शहीद कर दिया।

इसी तरह आंहुजूर अलैहिस्सलाम और उनकी पाक धर्मपत्नियों और उनके साथियों की शिया धर्म में बहुत ज़्यादा तौहीन की गई है मगर इस बुनियाद पर न खुमैनी ने मजिलसी के मुरतद होने का फ़तवा दिया और न अपने किसी दूसरे तबर्राई के मुरतद होने का। क्योंकि उनके धर्म के मुताबिक़ यह काम तो अच्छा काम है फिर जब इसी काम को बुनियाद बनाकर सलमान रूशदी के कत्ल का फतवा दिया तो क्या उसे सुन्नियों के दृष्टि को सही मान लेना न करार दिया जायेगा? हालांकि यह सवाल अपनी जगह फिर भी बाक़ी रहेगा कि क्या रूशदी ने मजिलसी, ख़ुमैनी और दूसरे बड़े बड़े शियों से बढ़कर नबियों और उनकी धर्मपत्नियों और नबी के सहाबियों की तौहीन और तज़लील की है?

डा० साहब ने ख़ुमैनी की ओर से अहले सुन्नत के दृष्टिकोण को सही मानने की तीसरी दलील के तौर पर लिखा है कि

(३) इमाम ख़ुमैनी ने अपनी जांनशीनी के सिलसिलें में वही रवैया इख़्तियार किया जो सुन्नी हदीसों के मुताबिक़ रसूलुल्लाह ने इख़्तियार किया था। यानी अपना कोई नायब मुकर्रर नहीं किया बल्कि मुनासिब व्यक्ति की ओर सिर्फ इशारे करके मामला कौम के बुद्धिमान लोगों पर छोड़ दिया था। शियों के दृष्टिकोण से तो उन्हें वाक़ऐ ग़दीर पर अमल करते हुए अपने नायब का एलान करना चाहिये था। लेकिन उन्होंने वही किया जो सुन्नियों के दृष्टिकोण के मुताबिक़ रसूल स० ने किया था। इस सिलसिले में आकाइ रफ़सनजानी का लेख है कि आयतुल्लाह खुमैनी अपना जानशीन खुद चुन्ना पसन्द नहीं करते थे लेकिन इशारा दिया था कि अली ख़ामिनाई इस ओहदे के लिए मुनासिब हैं। (रहनुमा–ए–दकन, जि०३ अंक २३, प्रकाशित ७ ज़ीक़ादा १४०६ हिजरी, १८ जून १६८६ ई०)

डा० साहब का कहना है कि खुमैनी ईरान के हाकिमे आला और बादशाह थे। ईरान में अपने बाद अपनी जानशीनी के सिलसिलें में उनके सामने दो रास्ते थे या यह कि वह साफ साफ़ अपना जानशीन मुक़र्रर कर देते या यह कि मुनासिब व्यक्ति की ओर इशारा करके फ़ैसला अपने बाद के लोगों पर छोड़ देते, शियों के हिसाब से खुमैनी को पहला तरीक़ा अपनाना चाहिये था क्योंकि शिई अक़ीदे के मुताबिक़ रसूल स० ने यही किया था कि हज्जतुल विदा से वापसी में गदीर ख़ुम के स्थान पर **मन कुन्तु मौलाहु फ़ अलीय्युन मौलाहु** फ़रमाकर हज़रत अली की ख़िलाफ़त और अपने बाद उनकी जानशीनी का एलान फरमा दिया था जबकि इस सिलसिले में सुन्नियों का दृष्टिकोण

यह है कि आंहज़रत स० ने अपने बाद जानशीनी या ख़िलाफ़त के लिए मुकम्मल तौर पर किसी को नामज़द नहीं किया था। न गदीरे खुम में न ही किसी और जगह। लेकिन हज़रत अबू बक्र रज़ि की जानशीनी के सिलसिले में कई बार इशारा जरूर दिया मसलन हज़रत अली रज़ि और दूसरे तमाम असहाब की मौजूदगी में आपने हज़रत अबू बक्र रज़ि० को अमीरूल हज चुना और उनही की इक़्तेदा में सहाबा ने हज अदा किया, इसी तरह हज़रत अली और दूसरे असहाब की मौजूदगी में हुजूर स० ने अपने मर्ज़े वफ़ात में हज़रत अबू बक्र रिज़. को अपनी जगह नमाज़ों का इमाम बनाया और उनके साथ उनकी इक्देता में खुद हुजूर स० ने भी नमाज़ें अदा कीं और यह वह शर्फ यानी इज़्ज़त है जो तमाम उम्मतियों में अकेले हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ि० को ही हासिल हुआ कि नबी ने खुद उनकी इक्तेदा में नमाज़ें अदा कीं।

यह वह इशारे हैं जिनसे नबी की अपनी जानशीनी के सिलसिलें में ख्वाहिश और इंतेखाब का तो पता चलता है लेकिन खुले तौर से नबी अलैहिस्सलाम ने न अबू बक्र को जानशीन बनाया और न ही अली रज़ि० को और न ही किसी और को।

खुमैनी ने अपनी जानशीनी के सिलसिले में शियों की दृष्टिकोण को न मान कर वह तरीका अपनाया जो सुन्नियों के बयान के मुताबिक़ नबी स० का तरीका है कि उन्होंने भी ईरानी पार्लीमेन्ट के स्पीकर हाशमी रफ़संजानी के बयान के मुताबिक अपने बाद अपनी जानशीनी के लिए अली खामिनाई की तरफ इशारा तो कर दिया लेकिन खुलकर उनको या किसी दूसरे को नामज़द नहीं किया।

गोया आख़िर में खुमैनी ने अपनी ख़ामूश ज़बान से इस

बात का एतराफ़ कर ही लिया कि रसूल की सीरत वही है जो सुन्नी बयान करते हैं और उसे अपनाने में उन्होंने अपनी सआदत समझी।

डा० साहब ने खुमैनी की ओर से अहले सुन्नत के अक़ीदों को शुऊरी या गैर शुऊरी तौर पर सही मानने की चौथी और आख़िरी दलील के तौर पर लिखा है कि

> (४) इमाम खुमैनी ने अपने बेटे या दामाद या किसी अज़ीज़ करीब को इस्लामी हकूमत का हाकिमे आला या अपना जानशीन नहीं बनाया इसका मतलब क्या यह नहीं है कि वह इस सुन्नी दृष्टिकोण से इत्तेफाक करते थे कि इस्लामी हुकूमत ज़ाती जागीर नहीं होती जो विरासत में अहले खानदान को मिले बल्कि हुकूमत का हाकिम उसी व्यक्ति को होना चाहिए जिसे कौम के लोग सबसे ज़्यादा अच्छा समझें।

यह वह बुनियादी बात है जिस पर शियों के अकीद–ए–इमामत की बुनियाद है और इस सिलसिले में सुन्नी नुकत–ए–नज़र को मान लेने का मतलब यह है कि खुमैनी ने शऊरी या गैर शुऊरी तौर पर शीइयत की पूरी बिल्डिंग को हिलाकर रख दिया क्योंकि वह हज़रत अली रज़ि० की खिलाफत बिला फ़स्ल अक़ीदा हो या उनकी इमामते ऊला का सबके लिए बुनियाद हज़रत अली की रसूलुल्लाह स० से रिश्तेदारी ही है और खुमैनी ने अपने जानशीन की हैसियत से अपने इकलौते बेटे या दामाद या किसी और रिश्तेदार को न चुन करके साफ तौर पर इस बात को साफ कर दिया कि हुकूमत किसी की ज़ाती जागीर नहीं है कि बाप के बाद बेटा या दामाद या फिर उसका बेटा और फिर बेटे का बेटा मुक़र्रर

होता चला जाये।

इस सिलसिले में एक दिलचस्प बात यह भी है कि जिस तरह शियों के बयान के मुताबिक़ हज़रत अली रज़ि० को उनके हक़ और उनकी बहुत ज़्यादा ख़्वाहिश और कोशिश के बावजूद नबी अलैहिस्सलाम की जानशीनी हासिल न हो सकी और ख़लीफ़ा अव्वल सिद्दीक़ अकबर रज़ि० ही हुए। जबकि हज़रत अली रज़ि० अपनेको इसका हक़दार समझते थे। इसी तरह खुमैनी के बेटे अहमद ख़ुमैनी का मामला है कि वह ईरान के हाकिम बनने के ख़्वाहिशमन्द थे मगर उनकी यह ख्वाहिश पूरी न हो सकी।

चुनांचे खुमैनी की बेटी ज़हरा मुस्तफ़वी ने विदेशी पत्रकारों को बयान देते हुए अपने एक इंटरव्यू में इशारा करते हुए साफ तौर पर कहा कि

> उनके भाई अहमद ख़ुमैनी ईरान के सद्र बनना चाहते थे और वह खुद पार्लीमेन्ट की सदस्य होना चाहती थीं लेकिन आयतुल्लाह ख़ुमैनी ने इसकी मुख़ालिफ़त की और उन्हें इजाज़त नहीं दी। मरहूम रहनुमा ख़ुमैनी नहीं चाहते थे कि उनकी ज़िन्दगी में उनकी औलाद कोई सरकारी ओहदा हासिल करे। (रोज़नामा ''अज़ाएम'' लखनऊ, १ जुलाई १९८९)

यानी खुमैनी को अपनी ज़िन्दगी में भी इस बात पर इसरार रहा कि सुन्नी दृष्टिकोण के हिसाब से हकूमत कोई पैत्रिक चीज़ नहीं है और अपने बाद के लिए भी उन्होंने उसी तरीक़े पर अमल किया जो शियों के दृष्टिकोण के विरूद्ध और सुन्नी दृष्टिकोण के मुताबिक़ है।

अब खुमैनी के गीत गाने वालों और उनकी इमामत का एलान करने वालों के लिए यकीनन यह समय सोचने का है कि

उपर्युक्त चार मुद्दों में शियई अक़ाएद और शियई दृष्टिकोण का विरोध खुल्लम खुल्ला सुन्नी, दृष्टिकोण की पैरवी करने के बावजूद क्या खुमैनी इसी तरह एहतराम के लायक रहेंगे या फिर उनकी इन कार्यवाहियों को तक़िय्या के खाने में डाल कर छुट्टी कर ली जायेगी?

☆☆☆